मार्गदर्शक सूत्र-संहिता

(वैचारिक, संवैधानिक, राजनैतिक)

[भाग - 1]

बजरंग मुनि जी के 72 वर्षों तक अनवरत चलने वाले
शोध कार्यों का संक्षिप्त सूत्र-संकलन

MARGDARSHAK
मार्गदर्शक

मार्गदर्शक सामाजिक शोध संस्थान
42, मारूति लाइफ स्टाईल, कोटा रोड, रायपुर-492001

मार्गदर्शक सूत्र-संहिता

(वैचारिक, संवैधानिक, राजनैतिक)

[भाग-1]

बजरंग मुनि

प्रकाशक :
मार्गदर्शक प्रकाशन
42, मारूति लाइफ स्टाईल, कोटा रोड,
रायपुर-492001
मो. : 7869250001
E-mail : support@margdarshak.info

संस्करण : पहला
जून, 2024

प्रतियां : 500

मुद्रक : महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी-221010

सहयोग राशि : 101.00 (एक सौ एक)

भूमिका

विश्व व्यवस्था चार इकाइयों को मिलाकर बनती है—1. व्यक्ति, 2. परिवार, 3. राष्ट्र और 4. समाज। वर्तमान विश्व व्यवस्था की समीक्षा करें, तो हम पाते हैं कि दुनिया भौतिक विकास की ओर बहुत तेज गति से बढ़ रही है और उतनी ही तेज गति से नैतिक पतन की ओर। शिक्षा बहुत तेज गति से बढ़ रही है और उतनी ही तेजी से ज्ञान घट रहा है। दुनिया में निष्कर्ष निकालने में विचार-मंथन की भूमिका कम होती जा रही है और विचार-प्रचार की अधिक। दुनिया में धर्म और राज्य के नाम पर जितने अपराध और हत्याएं हो रही हैं, उतने अपराधियों के द्वारा नहीं। यदि हम भारत की आंतरिक व्यवस्था की समीक्षा करें, तो पाते हैं कि प्राचीन समय में भारत विचारों का निर्यात करता था, आज वैचारिक धरातल पर इतना कंगाल हो गया है कि वह हर मामले में विचारों का आयात कर रहा है। भारत के आम लोगों में समझदारी घटती जा रही है, जिसके कारण धूर्त लोग हर मामले में मजबूत होते जा रहे हैं और शरीफ लोग या तो असहाय हैं अथवा राज्य आश्रित। राज्य व्यवस्था के मामले में भी भारत विदेशों के घिसे-पिटे लोकतंत्र का अंधानुकरण कर लोक स्वराज्य की दिशा में कोई पहल नहीं कर पा रहा है। यदि हम परिवारों की समीक्षा करें, तो परिवार व्यवस्था लगातार टूट रही है।

पहले संयुक्त परिवार होते थे, अब माता-पिता, पति-पत्नी और बच्चे भी एक साथ नहीं रह पा रहे हैं। परिवारों में संपत्ति के झगड़े बढ़ रहे हैं। यदि हम व्यक्ति के स्वभाव का आकलन करें, तो दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति में हिंसा और स्वार्थ बढ़ता जा रहा है। इस हिंसा और स्वार्थ के कारण लगातार सभी क्षेत्रों में अराजकता का वातावरण बढ़ रहा है। इस तरह हम कुल मिलाकर समीक्षा करें, तो हमारी समाज व्यवस्था लगातार कमजोर होती जा रही है। इस कमजोर होती जा रही व्यवस्था को कलयुग कहकर भले ही हम खुद को संतुष्ट कर लें, किन्तु सच्चाई यह है कि हम इस मामले में बहुत पीछे गये हैं।

बजरंग मुनि जी ने बचपन से ही इन सब परिस्थितियों का अनुभव किया। उन्होंने इन परिस्थितियों के कारण भी खोजे और उनके समाधान पर भी चिंतन-मंथन किया। हमारी सामाजिक व्यवस्था धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत, वैश्विक सहित अनेक भागों में बंटी हुई है। इन सब भागों की समस्याएं भी अलग-अलग हैं और उनके समाधान भी अलग-अलग हैं। ये सभी समस्याएं अलग-अलग होते हुए भी समाधान के मामले में एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। इसलिए मुनि जी ने जो भी चिन्तन किया, जो भी प्रयोग किये और जो भी निष्कर्ष निकाले, उन सबको अलग-अलग स्वरूप में रखने के बाद भी एकाकार रूप देने का प्रयास किया है। उनके प्रयास के परिणामस्वरूप ही 'मार्गदर्शक सूत्र संहिता' का यह पहला भाग आपके सामने है। पुस्तक में कुल 9 विषयों के 3 भाग हैं। ये सभी अलग-अलग अस्तित्व रखते हैं, फिर भी लक्ष्य एक ही है और वह है वर्तमान विश्व की गिरती हुई

सामाजिक व्यवस्था। उसके कारण और उसका समाधान ही इसका सार तत्व है। समाज को कलियुग से सतयुग की दिशा देने में यह पुस्तक गिलहरी की भी भूमिका अदा कर सके, तो हम अपने प्रयास को सफल मानेंगे।

❒

संपादन एवं संकलनकर्ता

- *पंकज अग्रवाल, पुत्र श्री कन्हैयालाल अग्रवाल, अंबिकापुर (छत्तीसगढ़)*
  मो. 94252 55551
- *ब्रिजेश राय, पुत्र श्री राजेंद्र राय, ऋषिकेश (उत्तराखंड)*
  मो. 96274 84171
- *तारकेश्वर सिंह, पुत्र स्व. वीरेन्द्र प्रताप सिंह, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)*
  मो. 9450243008
- *राजपाल मिश्र, पुत्र स्व. राजेन्द्र मिश्र, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)*
  मो. 70076 67261
- *संजय तांती, पुत्र स्व. सत्यनारायन तांती, मुंगेर (बिहार)*
  मो. 83493 26292
- *मोहन गुप्ता पुत्र स्व. सरयू साव, रामानुजगंज (छत्तीसगढ़)*
  मो. 89594 99831
- *ज्ञानेन्द्र आर्य, पुत्र श्री केशवमुनि आर्य, अयोध्या (उत्तर प्रदेश)*
  मो. 8318621282
- *राकेश शर्मा, पुत्र श्री सीताराम शर्मा, जहानाबाद (बिहार)*
  मो. 93256 83604
- *प्रमोद केसरी पुत्र स्व. राम लखन केशरी रामानुजगंज (छत्तीसगढ़)*
  मो. 93408 90792
- *नरेन्द्र सिंह, पुत्र श्री रघुनाथ सिंह, सिरोही, मेरठ (उत्तर प्रदेश)*
  मो. 90124 32074

अनुक्रमणिका

1.	वैचारिक	7-88
2.	संवैधानिक	89-212
3.	राजनैतिक	213-368

❒

1

वैचारिक

100 वैचारिक

1000. किसी निष्कर्ष तक पहुंचने में परिभाषाएं बहुत उपयोगी होती हैं। परिभाषाएं विचार-मंथन से निकली किसी विश्वसनीय अनुसंधान इकाई द्वारा घोषित होनी चाहिए। यदि प्रचलित परिभाषा गलत हो, तो उस आधार पर निकले निष्कर्ष का गलत होना निश्चित होता है। वर्तमान विश्व में प्रचलित सामाजिक व्यवस्थाओं के लिए उत्तरदायी अनेक परिभाषाएं या तो असत्य हैं या विकृत हैं।

1001. समाज में प्रचलित विकृत परिभाषाओं में स्वराज्य, संविधान, मूल अधिकार, अपराध, धर्म, समाज, महंगाई, बेरोजगारी, समाजवाद, समानता, नागरिक संहिता, गरीबी आदि विषय प्रमुख हैं। परिभाषाओं को जानबूझकर योजनापूर्वक विकृत करने का कार्य अलग-अलग समय पर अलग-अलग विचारधाराओं ने किया, किन्तु इस कार्य में मुख्य भूमिका साम्यवादियों की रही है। पश्चिम के पूंजीवादियों ने भी आंशिक रूप से यह कार्य किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में विचार-मंथन की प्रक्रिया बंद हो जाने से

यहां भी ये विकृत परिभाषाएं पढ़ाई जाने लगीं और इसी आधार पर गलत निष्कर्ष भी निकलते चले गए।

1002. हर असामाजिक कार्य समाज-विरोधी नहीं होता, किंतु हर समाज-विरोधी कार्य असामाजिक भी होता है और समाज विरोधी भी।

1003. सकारात्मक चार दिशाएं होती हैं—(1) प्रशंसा, (2) समर्थन, (3) सहयोग, (4) सहभागिता। वर्तमान शासन व्यवस्था समस्याओं का समाधान कर पायेगी, ऐसे लक्षण दिख रहे हैं, किन्तु यह स्पष्ट नहीं दिखता कि समाज का अस्तित्व सदा-सदा के लिए राज्य में विलीन हो जायेगा अथवा राज्य शासक की जगह प्रबंधक की ओर बढ़ेगा। जब तक यह साफ नहीं दिखे कि भारत विचार-मंथन की दिशा में बढ़ रहा है, तानाशाही और लोकतंत्र की जगह लोकस्वराज्य की ओर जा सकता है, तब तक हमें राज्य से सहभागिता नहीं करनी चाहिए। प्रशंसा, समर्थन और कभी-कभी सहयोग भी किया जा सकता है, किन्तु सहभागिता नहीं।

101 वैचारिक परिभाषाएं

1010. विचारकों तथा मार्गदर्शकों द्वारा विचार-मंथन के माध्यम से निकाले गए निष्कर्ष यथार्थ होते हैं और उन निष्कर्षों को बिना विचारे लम्बे समय तक लगातार आचरण में लाना परम्परा।

1011. प्रकृति के अनसुलझे रहस्यों को भूत कहते हैं और सुलझ चुके रहस्यों को विज्ञान। जादू-टोना, प्रेत, तंत्र-मंत्र आदि सभी रहस्य इसी श्रेणी में आते हैं। 95 प्रतिशत ऐसी घटनाएं, असत्य, भ्रम-जाल या हमारे अज्ञान का लाभ उठाने का प्रयास होती हैं, अतः सामान्यतया ऐसी बातों या घटनाओं को असत्य मानना चाहिए। फिर भी प्रकृति के रहस्य असीम हैं और विज्ञान की अपनी सीमाएं

हैं, अतः किसी प्रत्यक्ष रहस्य को अस्वीकार करने की जिद नहीं करनी चाहिए। भ्रम और भूत एक-दूसरे के पूरक होते हैं। प्रत्येक एक-दूसरे की वृद्धि में सहायता करते हैं।

1012. सत्य और अहिंसा के मार्गदर्शन में तत्कालीन समस्याओं के समाधान का प्रयास ही गांधी मार्ग कहलाता है।

1013. किसी कार्य के परिणाम की सम्भावना और यथार्थ के बीच का अन्तर ही सुख या दुःख होता है और इस अंतर की मात्रा ही सुख और दुःख की मात्रा होती है। सुख और दुःख की उत्पत्ति मन से है। घटनाओं से इसका कोई संबंध नहीं होता। परिणाम की सम्भावना का गलत आकलन ही सुख और दुःख का कारण होता है। आकलन जितना यथार्थ परक होगा, सुख या दुःख उतना ही कम होगा या नहीं होगा। व्यक्ति को परिस्थितियों के अनुसार परिणामों के ठीक-ठाक आकलन की आदत डालनी चाहिए।

1014. सिद्धांत और व्यवहार के संतुलन से बने मार्गदर्शन से नीति बनती है।

1015. अपने मनोभाव और विचार दूसरे व्यक्ति तक ठीक उसी अर्थ में पहुंचाने के माध्यम को भाषा कहते हैं।

1016. भारतीय जीवन पद्धति अकेली ऐसी प्रणाली है, जिसमें कुछ विचारक सामाजिक विषयों पर अनुसंधान करते हैं और निष्कर्ष भावना प्रधान लोगों तक इस तरह पहुंचता है कि वह निष्कर्ष सम्पूर्ण समाज के लिए सामाजिक कर्तव्य बन जाता है। इस कार्य को हम धर्म भी कह सकते हैं।

1017. जिस इकाई में कानूनों की मात्रा जितनी अधिक होती है, उस इकाई के सदस्यों की समझदारी उतनी ही अधिक घट जाती है।

102 विचारधारा

1020. भारत में स्वतंत्रता के समय से ही दो विचारधाराएँ एक-दूसरे के विपरीत प्रतिस्पर्धा कर रही थी—(1) गांधी विचार, (2) नेहरू विचार। गांधी विचारधारा आर्य संस्कारों से प्रभावित थी, जिसे अब वैदिक, सनातन हिन्दू या भारतीय संस्कृति भी कहते हैं, तो नेहरू विचारधारा में आर्य संस्कारों को छोड़कर, पाश्चात्य, इस्लामिक, साम्यवादी तथा अन्य सबका मिलाजुला समावेश था। इसमें भी सर्वाधिक प्रभाव समाजवादी विचार धारा का था।

1021. अभी दुनिया में, विशेषकर भारत में दो विचारधाराएं एक-दूसरे के विपरीत काम कर रही हैं। पहली वह जो यह मानते हैं कि जो कुछ प्राचीन है, वह सब ठीक है और उसमें संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी विचारधारा यह मानती है कि जो कुछ प्राचीन है, वह पूरी तरह गलत है और उसमें आमूल-चूल बदलाव होना चाहिए। अब एक तीसरी विचारधारा बननी चाहिए, जो प्राचीन विचारधारा में संशोधन कर के नया मार्ग प्रशस्त करे।

1022. स्वतंत्रता के समय भारत में तीन विचारधाराएं लगभग समान रूप से सक्रिय थी। पहली गांधी विचारधारा जो किसी भी कीमत पर भारत को स्वतंत्र देखना चाहती थी, चाहे उसके लिए मुसलमानों के साथ समझौता ही क्यों न करना पड़े। दूसरी संघ विचारधारा, जो किसी भी स्थिति में मुसलमानों को मजबूत नहीं देखना चाहती थी, भले ही स्वतंत्रता देर से मिले। तीसरी इस्लामिक विचारधारा थी, जो हर हालत में हिन्दुओं को कमजोर करना चाहती थी।

1023. हमने आर्थिक विचारधारा बनाते समय पश्चिम के व्यक्तिगत सम्पत्ति, मार्क्स के सामूहिक सम्पत्ति तथा गांधी जी के ट्रस्टीशिप

के सिद्धांत के साथ इस तरह सामंजस्य स्थापित किया कि व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार समाप्त होकर, सम्पत्ति परिवार की सामूहिक होगी जिसमें प्रत्येक सदस्य का समान अधिकार होगा।

103 निरपेक्ष

1030. जब हम किसी विषय पर विचार, तर्क-वितर्क करते हैं, तो आमतौर पर लोग दो पक्ष में बंट जाते हैं। जो व्यक्ति दो विपरीत पक्षों में से किसी पक्ष के साथ प्रतिबद्ध न होकर न्याय का पक्ष लेता है, उसे तटस्थ या निष्पक्ष कह सकते हैं। ऐसा व्यक्ति चर्चा में शामिल रहता है तथा हस्तक्षेप भी करता है किन्तु अपनी पूर्व प्रतिबद्धता के आधार पर किसी पक्ष से नहीं जुड़ता। किन्तु यदि वह व्यक्ति उक्त विषय पर पक्ष-विपक्ष के बीच हो रही चर्चा से दूर रहता है अथवा चुप रहता है, तब उसे निरपेक्ष या निर्लिप्त कह सकते हैं।

104 पर्यावरण

1040. प्राचीन समय में आबादी बहुत कम थी। लोग अशिक्षित, अविकसित और गरीब थे। समाज में कई कुरीतियां थीं किन्तु लोग पर्यावरण के प्रति सजग थे। सामाजिक व्यवस्था में पानी को गंदा करना अनैतिक माना जाता था। वृक्षारोपण को बहुत महत्व दिया जाता था और पेड़ों तक की पूजा होती थी। वायु शुद्धि के लिए भी यज्ञ आदि करके एक भावनात्मक वातावरण विकसित किया जाता था। धीरे-धीरे हम विकास की दौड़ में आगे बढ़े, किन्तु इस दौड़ में भौतिक विकास की गति बहुत तेज रही और नैतिक पतन लगातार बढ़ता चला गया। फलस्वरूप इस दौड़ में विकास और नैतिकता का संतुलन बिगड़ गया। पर्यावरण के प्रति जो भावनात्मक श्रद्धा

थी उसे अंधविश्वास के नाम पर समाप्त कर दिया गया। पर्यावरण संरक्षण की प्राचीन व्यवस्था को अंधविश्वास के नाम पर छोड़ दिया गया। अब कोई गंगा नदी में तांबे का पैसा डाल दे तो अंध विश्वास कहा जायेगा, फलदार वृक्षों की पूजा भी अंधविश्वास, यज्ञ करना अंधविश्वास, पानी में गंदगी डालने को पाप मानना अंधविश्वास। यानी पर्यावरण संरक्षण विकास की अंधी दौड़ की भेंट चढ़ गया।

1041. पर्यावरण सुरक्षा समाजशास्त्र का विषय न रहकर पेशेवर पर्यावरणवादियों, मानवाधिकारवादियों का व्यवसाय बन गया। परिणाम हुआ कि भारत में भी पंचतत्व बहुत तेज गति से प्रदूषित हुए। सबसे ज्यादा प्रदूषित हुई वायु।

1042. पूरी दुनिया के वातावरण में लगातार तापवृद्धि हो रही है, जो एक चिन्ता का विषय है, और पूरी दुनिया के लोग इस चिन्ता का समाधान खोज रहे हैं। किन्तु मैं लम्बे समय से लिख रहा हूं कि इस पर्यावरणीय तापवृद्धि की अपेक्षा पूरी दुनिया के मानव स्वभाव में भी लगातार तापवृद्धि हो रही है और यह तापवृद्धि पर्यावरणीय तापवृद्धि से कई गुना अधिक खतरनाक है।

105 दया

1050. दया करना हमारा कर्तव्य है, आपका अधिकार नहीं। किसी भी व्यक्ति को किसी भी मामले में दया करने का व्यक्तिगत रूप से पूरा अधिकार है, किन्तु किसी भी व्यक्ति को किसी संवैधानिक व्यवस्था के माध्यम से किसी भी रूप में किसी के साथ विशेष दया करने का अधिकार नहीं है।

1051. जो लोग गाय को माता न समझ कर पशु समझते हैं, उनकी स्वतंत्रता में तब तक बाधा नहीं पहुंचाई जा सकती, जब तक समाज ने मान्य न किया हो।

1052. सब प्रकार के जीवों के बीच संतुलन होना चाहिए, जीव दया का सिद्धांत असंतुलन पैदा करता है। बंदर, कुत्ते और नील गायों की बढ़ती संख्या अव्यवस्था फैलाती है। बंदर हनुमान का भी प्रतीक हो सकता है और बाली का भी। दया या हिंसा करना व्यक्ति की स्वतंत्रता है, बाध्यता नहीं।

106 परम्परा और यथार्थ

1060. विचारकों तथा मार्गदर्शकों द्वारा विचार-मंथन के माध्यम से निकाले गए निष्कर्ष यथार्थ होते हैं और उन निष्कर्षों को बिना विचार किये आचरण में लाना परम्परा। वर्ण व्यवस्था का एक भाग निष्कर्ष निकालता है तो अन्य तीन परम्परा अनुसार पालन करते हैं। वर्तमान दुनिया में सामाजिक विषयों में विचार-मंथन बंद होने से निष्कर्ष निकलना बंद हो गया। समाज की व्यवस्थाओं में यथार्थपरक दृष्टिकोण के अभाव से या तो परम्पराएं रूढ़ होने लगीं या अपने आप टूटने लगीं।

107 सिद्धांत और व्यवहार

1070. सिद्धांत और व्यवहार के संतुलन से निर्मित दृष्टिकोण नीति कहलाती है। सिद्धांत मार्गदर्शक होते हैं, दीर्घकालिक होते हैं, तो व्यवहार अल्पकालिक, परिस्थितिजन्य, देश-काल-परिस्थिति अनुसार कर्ता द्वारा निकाले गये निष्कर्षों का क्रियान्वयन होता है। सिद्धांत निष्कर्ष निकालने में सहायक होते हैं। सिद्धांत और व्यवहार के बीच संतुलन होना चाहिए। उच्च आदर्शवादी नीतियां हमेशा अव्यवस्था का आधार बनती हैं। भारत में अधिकांश नीतियां उच्च आदर्शवाद पर आधारित होने के कारण अव्यावहारिक हैं।

1071. आपसी सहमति के आधार पर किये गये किसी कार्य की किसी

अन्य को समीक्षा नहीं करना चाहिए। किसी सौदेबाजी और सहमति के आधार पर वोट, दहेज, धर्म, शारीरिक सम्बन्ध या शरीर का अंग क्रय-विक्रय कोई अपराध नहीं होता। सरकार को इस सम्बन्ध में बने अनावश्यक कानून हटा लेना चाहिए। आत्महत्या कोई अपराध नहीं है। आत्महत्या के विरुद्ध कानून बनाना गलत है किन्तु इस संबंध में सिर्फ सामाजिक जागरूकता ही बढ़ायी जा सकती है। सक्रिय संलिप्तता उचित नहीं है।

1072. किसी दूसरे के व्यवहार के आधार पर आकलन की आठ स्थितियां उत्पन्न होती हैं—1. सहभागिता, 2. सहयोग, 3. समर्थन, 4. प्रशंसा, 5. समीक्षा, 6. आलोचना, 7. विरोध और 8. शत्रुता। आठों की अलग-अलग सीमाएं होती है।

110 हिंसा

1100. बल प्रयोग का सहारा लेने के पूर्व चार बातें अवश्य ध्यान रखें—(1) जब आपके मौलिक अधिकारों पर आक्रमण हो। (2) जब न्याय प्राप्ति का कोई अन्य मार्ग उपलब्ध न हो। (3) जब जीतने की पूरी संभावना हो। (4) जहां आप भावना प्रधान न हों। यदि यह चारों स्थितियां न हों, तो बल प्रयोग नहीं करना चाहिए।

1101. किसी भी सरकार को क्षत्रिय प्रवृत्ति का माना जाता है। अर्थात् न्याय और सुरक्षा के लिए उसे हिंसा को पहला शस्त्र मानने का अधिकार है।

1102. दूसरों को हिंसा के लिए प्रोत्साहित करना कोई अच्छी बात नहीं है। विशेषकर उसके लिए तो एकदम ही गलत है, जिसने जीवन में न तो कभी बल प्रयोग किया हो और न ही उसका दुष्परिणाम भुगता हो।

110 अहिंसा

1103. सत्य और अहिंसा की दिन-रात माला जपने वाले भी सत्य की ठीक से खोज किये बिना ही अपने गुट द्वारा फैलाये गये असत्य को सत्य के रूप में फैलाना शुरू कर दें, तो कष्ट होना स्वाभाविक है।

1104. अहिंसा की लड़ाई रणक्षेत्र में नहीं, हृदय क्षेत्र में होती है, लेकिन लड़ाई की तैयारी तो अहिंसा को भी चाहिए ही। सारे संसार में अहिंसा का प्रचार हो जाने के बाद भी तैयारी की जरूरत न रहे, ऐसी बात नहीं। एक बार का कमाया हुआ जन्म भर खाने की गुंजाइश न तो हिंसा में है और न ही अहिंसा में। अतः प्रतिकार-शक्ति सर्वदा जागृत रखनी ही चाहिए। अहिंसक जीवन के माने प्रासंगिक त्याग ही नहीं, वरन् निरन्तर त्याग है और निरात्याग ही नहीं, अपितु त्याग का आनन्द भी है।

1105. अहिंसक रचना करना किसी भी तरह असम्भव नहीं है। ऐसी अहिंसक रचना जितनी स्थायी होगी, उतनी दूसरी कोई भी व्यवस्था नहीं हो सकती।

1106. अहिंसा का अर्थ शत्रु से पराजित होने की सीमा तक नहीं जाना चाहिए था।

1107. अहिंसा सर्वश्रेष्ठ धर्म माना गया है। धर्म की रक्षा करना राज्य का दायित्व होता है न कि धर्म पर आचरण करना। शान्ति व्यवस्था बनाये रखने के लिए राज्य को कभी भी अहिंसा को अपना मार्ग नहीं मानना चाहिए। यदि राज्य ऐसी भूल करता है, तो उसके दुष्परिणाम होते हैं और समाज में हिंसा की आवश्यकता बढ़ती चली जाती है। स्पष्ट है कि धर्म की सुरक्षा राज्य की चिन्ता का विषय नहीं है।

1108. अहिंसा और कायरता में बहुत फर्क होता है। हर कायर अपने को अहिंसक मानने की भूल करता है। बुद्ध और महावीर ने हिंसा और अहिंसा के बीच के संतुलन को बिगाड़ा। इन्होंने अहिंसा को मार्ग की जगह लक्ष्य मान लिया और राज्य को भी अहिंसक होने की सलाह दे दी। इसका परिणाम हुआ कि राज्य में उचित-अनुचित का भ्रम पैदा हुआ और समाज में संतुलन की जगह कायरता का विकास हुआ। गांधीवादियों ने अपनी कायरता को छिपाने के लिए अहिंसा शब्द को ढाल बनाया। अहिंसा सिर्फ मार्ग या साधन होता है लक्ष्य नहीं। लक्ष्य या साध्य तो उचित सामाजिक व्यवस्था ही है।

1109. बुद्ध, महावीर और यीशु मसीह की कायरता प्रधान शिक्षाओं के परिणामस्वरूप इस्लाम और साम्यवाद सारी दुनिया में बहुत तेजी से आगे बढ़ा। क्योंकि इन तीनों की शिक्षाएँ अहिंसा को कायरता में बदल रही थी।

1110. स्वतंत्रता के समय गांधी हत्या के बाद गांधीवादियों ने भूल से अहिंसा को मार्ग की जगह लक्ष्य मान लिया। इसका अर्थ हुआ कि राज्य को भी उचित की जगह न्यूनतम हिंसा का उपयोग करना चाहिए। मार्ग को लक्ष्य मानने की गांधीवादी भूल का लाभ उठाया सावरकरवादियों ने, साम्यवादियों और कट्टरपंथी मुसलमानों ने। इन तीनों ने मिलकर समाज में हिंसा की आवश्यकता की भूख पैदा की। अहिंसा की पक्षधर गांधीवादी सरकारें अराजकता को नहीं रोक सकीं। परिणामस्वरूप समाज में अराजकता से निपटने के लिए एक ऐसे राज्य की आवश्यकता महसूस की गयी जो अहिंसा की सुरक्षा के लिए हिंसा को एक उचित मार्ग मानता हो।

1111. हर मजबूत हिंसा को उचित मानता है और हर कमजोर कायरता को उचित मानते हुए उसे अहिंसा कहता है।

111 हिंसा और अहिंसा

1112. मार्गदर्शक तथा पालक को हमेशा अहिंसक होना चाहिए। रक्षक हिंसक हो सकता है। सेवक जिसके साथ जुड़े उसी के अनुसार आचरण करे। लोकतंत्र में हिंसा रक्षक को छोड़कर पूरी तरह प्रतिबंधित होनी चाहिए। जब गुलामी हो तब मार्ग हिंसक भी हो सकता है। जो लोग लोकतंत्र में हिंसा का समर्थन करते हैं, वे भी गलत हैं और हिंसा करने वाले भी। हिंसा का समर्थन करने वाले धूर्त होते हैं और करने वाले मूर्ख। हिंसा समर्थक स्वयं हिंसा नहीं करते बल्कि दूसरों को प्रेरित करते हैं। नासमझ लोग प्रेरित होकर हिंसा करते हैं।

1113. हिंसा या अहिंसा कोई सिध्दांत नहीं होना चाहिए। यह तो मार्ग है जो देश-काल, परिस्थिति अनुसार बदलता रहता है। महावीर की अहिंसा एक सिद्धांत है, जबकि गांधी की अहिंसा एक मार्ग है।

1114. हिंसा के व्यापकतम और अधिकतम प्रयोग के बाद हिंसा त्याग कर अहिंसा को स्थान दे दे, इसके सिवा कोई अन्य उचित मार्ग नहीं है।

1115. एक की जीत यानी दूसरे की हार यह रीति हिंसा की है। अहिंसा में तो जो एक की जीत है, वह दूसरे की भी जीत है। अगर कोई वाद विषयक प्रश्न शेष रह ही जाय, तो अहिंसा का तरीका अत्यन्त सरल है।

1116. यदि पूरी तरह गुलामी हो और मुक्ति का मार्ग न दिखे, तब हिंसा या अहिंसा के मार्ग में से एक चुना जा सकता है। लोकतंत्र में अहिंसा के अतिरिक्त कोई अलग मार्ग नहीं है।

1117. मानव स्वभाव तापवृद्धि के पक्षधर संगठनों से जुड़े लोग, आपस

में हिंसक टकराव भी करते हैं तो हमें किसी एक पक्ष को जोर देकर शांत नहीं कराना चाहिए, क्योंकि यह कार्य उस पक्ष के साथ अन्याय हो जायेगा, किन्तु यदि किसी ऐसे समूह या व्यक्ति के साथ बल-प्रयोग होता है, जो किसी हिंसा समर्थक संगठन से नहीं जुड़ा है, तब हमें अपनी पूरी शक्ति लगाकर उसकी सुरक्षा करनी चाहिए।

1118. अहिंसा की सुरक्षा के उद्देश्य से राज्य द्वारा किसी भी सीमा तक हिंसा का प्रयोग किया जा सकता है। शांति व्यवस्था हमारा लक्ष्य होता है, हिंसा और अहिंसा मार्ग। भारतीय जीवन पद्धति में तीन वर्ण मार्गदर्शक, पालक और सेवक पूरी तरह अहिंसक होते हैं इसके विपरीत रक्षक अधिकतम हिंसक। इस तरह हिंसा और अहिंसा का सामाजिक तालमेल होता है।

1119. आज समाज में बढ़ती हिंसा का मुख्य कारण तो शासन की अहिंसा में ही छिपा है। गांधी ने राज्य को न्यूनतम हिंसा की सलाह नहीं दी, और यदि गांधी ने सलाह दी भी हो तो वह सलाह गलत है। राज्य को न्यूनतम नहीं बल्कि समुचित हिंसा का उपयोग करना चाहिए। वर्तमान समय में किसी भी नागरिक द्वारा किसी भी परिस्थिति में हिंसा का समर्थन अथवा इसका प्रयोग गलत है।

1120. कायरता उबाल खाती है तो क्षणिक हिंसा का आक्रोश प्रकट होता है। यह उबाल भावनात्मक तथा तात्कालिक होता है। उबाल समाप्त होते ही व्यक्ति में और अधिक कायरता आ जाती है।

1121. समाज में हिंसा और संगठन का कोई औचित्य नहीं है और राज्य व्यवस्था में अहिंसा का कोई औचित्य नहीं है।

1122. स्पष्ट है कि भारत की सामाजिक व्यवस्था अहिंसा की जगह कायरता के रूप में दिखती है। हिंसा समर्थक सभी संगठनों से एक

साथ निपटना समाज के लिए कठिन है। 'शत्रु का शत्रु मित्र होता है' इस आधार पर अल्पकाल के लिए वर्तमान समय में दो दिशाओं में ध्रुवीकरण हो रहा है। एक तरफ संघ परिवार के विरुद्ध संगठित इस्लाम और साम्यवाद है, तो दूसरी तरफ है संगठित इस्लाम और साम्यवाद के विरुद्ध संगठित हिन्दुत्व जिसे हम संघ परिवार कहते हैं। मैं तो पूरी तरह अहिंसा का पक्षधर हूं फिर भी मैं मानता हूं कि राज्य को अहिंसा से दूरी बनानी चाहिए। वैचारिक तथा सामाजिक धरातल पर किसी भी प्रकार की हिंसक विचारधारा का विरोध करना चाहिए और राजनैतिक धरातल पर हिंसक प्रवृत्तियों को कुचलने के लिए किसी भी सीमा तक राज्य को मजबूत होना चाहिए।

1123. अहिंसा या हिंसा परिस्थिति अनुसार मार्ग होता है, सिद्धांत नहीं। गांधी के बाद गांधीवादियों ने अहिंसा को सिद्धांत मान लिया तो सावरकरवादियों ने हिंसा को। ये दोनों ही गलत हैं।

1124. शक्ति प्रयोग और अहिंसा के प्रयोग का परिस्थिति के अनुसार निर्णय करना चाहिए न कि सिद्धांत के अनुसार। हिन्दू धर्म में व्याप्त एकपक्षीय हिंसा ने बुद्ध और जैन को पैदा किया तथा बुद्ध और जैन की एकपक्षीय अहिंसा ने भारत को गुलामी की ओर धकेल दिया। इसी तरह यहूदियों की एकपक्षीय हिंसा ने इसाईयत को जन्म दिया और इसाइयों की एकपक्षीय अहिंसा से इस्लाम पैदा हुआ। इस्लाम की एकपक्षीय हिंसा के परिणाम शीघ्र ही आने की सम्भावना है।

1125. गांधीजी की अहिंसा परिस्थितियों के कारण सफल हुई, न कि सिद्धांत से। यदि ब्रिटिश शासन के स्थान पर मुस्लिम या साम्यवादी देशों की गुलामी होती तो गांधीजी की अहिंसा सफल नहीं होती।

हिंसा का मार्ग अंतिम विकल्प है न कि प्रथम। स्वतंत्रता संघर्ष में गांधीजी का निर्णय उचित था और हिंसा के पक्षधरों का गलत। गांधी जी अहिंसा को कायरता के विरुद्ध शस्त्र के समान उपयोग करते थे, किन्तु वर्तमान में अहिंसा के पक्षधर अपनी कायरता को ढंकने के लिए अहिंसा को ढाल के रूप में उपयोग करते हैं।

112 धर्म के साथ हिंसा

1126. यदि धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा का आकलन किया जाये तो पूरी दुनिया में सर्वाधिक हिंसा साम्यवादी संगठनों ने की है। इस्लाम या इसाईयत में ऐसी हिंसा अपना वर्चस्व बनाने तक ही सीमित रही और वर्चस्व के बाद वे आन्तरिक हिंसा से हट गये किन्तु साम्यवाद ने तो वर्चस्व बनाने के बाद भी ऐसी अमानवीय हिंसा की कि उनके कत्लेआम की कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

1127. धर्म के साथ हिंसा हिन्दुत्व में सिर्फ क्षत्रिय वर्ण तक सीमित थी, अन्य तीन वर्ण हिंसा से दूर रहते थे। धर्म के साथ हिंसा को सर्वप्रथम इस्लामिक कट्टरपंथियों ने जोड़ा।

1128. यदि पूरे विश्व के धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचार तथा हिंसा का आकलन करें तो पूरे विश्व में जितना अत्याचार या हिंसा अपराधियों के द्वारा की जाती है उससे कई गुना ज्यादा अत्याचार और हिंसा धर्म के नाम पर होती रही है।

113 सामाजिक हिंसा और सरकारी हिंसा

1130. लोकतंत्र में हिंसा का समर्थन सिर्फ वही लोग करते हैं जो अपनी तानाशाही स्थापित करना चाहते हैं। इस्लाम, साम्यवाद और सावरकरवादियों का चरित्र कभी लोकतांत्रिक नहीं रहा।

1131. समाज को सुरक्षा के प्रति आश्वस्त रखने के लिए राज्य को संतुलित

हिंसा का मार्ग अपनाना चाहिए। यदि राज्य आवश्यकता से कम बल प्रयोग करता है, तो समाज में असुरक्षा की भावना पैदा होती है और ऐसी असुरक्षा की भावना ही समाज में हिंसा को प्रोत्साहन देती है। उसके परिणामस्वरूप समाज में अपराधियों के मन से भय और समाज के मन से कानून के प्रति विश्वास घट जाता है।

1132. यदि अहिंसा मार्ग रहे तब तो कोई दिक्कत नहीं। तानाशाही के विरुद्ध वह कई बार शस्त्र का काम करती है तो लोकतंत्र में व्यवस्था का। किन्तु यदि अहिंसा सिद्धांत बन जाए तो वह राज्य को संतुलित बल प्रयोग के स्थान पर न्यूनतम बल प्रयोग का संदेश देती है। इससे समाज में असुरक्षा का भाव पैदा होता है। जिससे समाज में अराजकता बढ़ने का खतरा पैदा हो जाता है।

1133. लोकतंत्र में समाज को हिंसा को छोड़ देना चाहिए और राज्य को आवश्यकतानुसार हिंसा मार्ग पकड़ना चाहिए। किन्तु हुआ ठीक उल्टा। राज्य ने आवश्यकता से कम हिंसा का मार्ग पकड़ा, जिसके परिणामस्वरूप समाज में हिंसा के प्रति समर्थन और विश्वास बढ़ा।

1134. यह मान्यता रही है कि हिंसा पर निर्मित राज्य पद्धति टिक सकती है। वस्तुतः अब तक के इतिहास के सारे तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि सभी ने राज्य पद्धति को स्थायी बनाने के लिए हिंसा का प्रयोग किया है किन्तु कोई भी राज्य पद्धति हिंसा के आधार पर टिक सकी हो, ऐसा कहीं भी नहीं हुआ।

1135. सामाजिक हिंसा का किसी भी परिस्थिति में, चाहे वह हिंसा किसी के भी द्वारा क्यों न की जाये, आलोचना तो होनी ही चाहिए, यदि सम्भव हो तो विरोध भी। लोकतांत्रिक व्यवस्था में भी सरकारी हिंसा का मैं समर्थक हूं, जब तक विरोध करने का कोई स्पष्ट कारण

न हो। सामाजिक हिंसा का समर्थन भी बहुत घातक है तथा सरकारी हिंसा का विरोध भी घातक है। यदि आप मानते हैं कि भारत में लोकतंत्र है, तो आपको सामाजिक हिंसा का विरोध करना ही चाहिए।

1136. बिना सोचे-समझे हिंसक उन्माद यदि हमेशा ही लाभदायक होता तो आज मुज्जफरनगर में इतनी बड़ी संख्या में मुसलमान नहीं मारे जाते।

1137. यदि भगत सिंह, सुभाषचंन्द्र बोस अथवा चन्द्रशेखर आजाद आज जीवित होते तो वे भी किसी तरह हिंसा का समर्थन नहीं करते। वे साम्यवाद अथवा इस्लाम का तो समर्थन बिल्कुल करते ही नहीं। सावरकरवादियों की उग्रवादी नीतियों का भी समर्थन नहीं करते।

1138. (1) तानाशाही से मुक्ति के लिए हिंसा या अहिंसा के मार्ग का विकल्प होता है। लोकतंत्र में किसी भी रूप से सामाजिक हिंसा का सर्मथन उचित नहीं है। लोकतंत्र में हमारे पास हिंसा या अहिंसा विकल्प के रूप में मौजूद नहीं होते। (2) यदि भारत किसी लोकतांत्रिक देश का गुलाम न होकर किसी साम्यवादी देश का गुलाम होता, तो गांधी की अहिंसा सफल नहीं होती। इन परिस्थितियों में तो हिंसा का ही मार्ग एकमात्र कारगर होता है। (3) भारत को स्वतंत्रता क्रांतिकारियों के मार्ग से मिली या अहिसंक मार्ग से, यह बहस अनावश्यक है। स्वतंत्रता के बाद समाज में एक ही मार्ग है और वह है अहिंसा का मार्ग। (4) सुभाष बाबू का भारत की स्वतंत्रता के लिए हिंसक या अहिंसक मार्ग में से एक चुनने का विकल्प था, किन्तु हिटलर जैसे तानाशाहों से हाथ मिलाना उचित नहीं था। सुभाष बाबू का यह कहना तो और भी गलत था कि

स्वतंत्रता के बाद भी दस-बीस वर्षों तक भारत में तानाशाही होनी चाहिए।

116 सत्य, असत्य और भ्रम

1160. सत्य और असत्य का उपयोग अपनी योग्यता और आवश्यकता के आधार पर करना चाहिए, किसी सिद्धांत के आधार पर नहीं। किसी कसाई की गाय भाग गई और वह आपसे पूछता है, आप मार्गदर्शक हैं तो न झूठ बोल सकते हैं, न सच बता सकते हैं, न बल प्रयोग कर सकते हैं। आप सिर्फ उसका हृदय परिवर्तन मात्र कर सकते हैं। इसी तरह रक्षक केवल शक्ति के भय का उपयोग कर सकता है। पालक झूठ बोलकर उसे विपरीत दिशा में भेज सकता है और सेवक नहीं देखने का झूठ बोलकर बच सकता है।

1161. यदि पूरी ताकत से प्रचार किया जाय तो भारत में असत्य को सत्य और सत्य को असत्य सिद्ध करना कोई कठिन काम नहीं। सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध करने में सहायता करने के लिए आपको बड़ी मात्रा में ऐसे पेशेवर लोग भी मिल जायेंगे जो आपसे कुछ धन लेकर आपकी बात को पूरी तरह प्रमाणित करने के लिए तैयार हैं। अन्य कोई ऐसी इकाई नहीं है जो या तो समाज में विश्वसनीय हो या ऐसे मामलों में सत्य को स्थापित करने के लिए मैदान में कूद पड़े। सत्य-असत्य के बीच निर्णय करने में प्रचार माध्यम बहुत बड़ी बाधा बन गया है। लोग समझ ही नहीं पा रहे हैं कि किस पर विश्वास करें।

1162. सत्य-असत्य का निर्णय मस्तिष्क का विषय है, हृदय का नहीं। मस्तिष्क तर्क के आधार पर निर्णय करता है। हृदय उस निष्कर्ष के आधार पर आगे बढ़ता है।

1163. भारत में जान-बूझकर यह असत्य फैलाया जा रहा है कि तर्क निष्कर्ष निकालने में बाधक है। मैं इस असत्य को चुनौती देता हूं। मैं इस बात से संतुष्ट हूं कि मैंने कुछ सीमित मान्यताओं को विश्व स्तर पर चुनौती दी है। आज तक दुनिया के विद्वानों ने जिनमें भारत और अमेरिका भी शामिल हैं उन्होंने संविधान, मूल अधिकार या अपराध जैसे शब्दों को परिभाषित नहीं किया है। दुनिया या तो मेरी व्याख्या को ठीक कहेगी या गलत। यदि मेरे जीवनकाल में ठीक और गलत का फैसला नहीं हुआ, तब मेरे बाद भी बहस तो समाप्त नहीं ही होनी है। मैं अपने भारत की उस पुरानी अस्मिता का वाहक बनना चाहता हूं, जो विश्व को विचार देता था। मुझे अपने विचार को न धरातल पर प्रयोग करने की क्षमता है न इच्छा। क्योंकि चिन्तन मैं कर रहा हूं और व्यावहारिकता की कसौटी पर आप कसेंगे।

1164. उस व्यक्ति के द्वारा सत्य नहीं पाया जा सकता, जिसमें प्रचुर मात्रा में विनम्रता न हो। यदि आप सत्य के समुद्र के बीच तैरना चाहते हैं तो स्वयं को शून्य तक ले जाना होगा। विनम्रता और सत्य एक साथ बहुत कठिन है, किंतु आवश्यक है।

1165. समाज में जब सच बोलने वालों का अभाव हो जाये तो सत्य खोजने में भी बहुत कठिनाई होती है, वही कठिनाई मेरे सामने है। वर्तमान समय में दुनिया में सत्य बोलने वालों की संख्या लगातार घटती जा रही है, भारत में तो लगभग नगण्य तक चली गयी है।

1166. कोई भी बात कभी अंतिम रूप से सत्य नहीं कही जा सकती, चाहे वह किसी के द्वारा भी कही जाये, कभी भी कही जाये। सत्य तो हमेशा वर्तमान के साथ जुड़ा होता है तथा अपनी अपनी

क्षमतानुसार वर्तमान में निकाला गया निष्कर्ष होता है। इसके पूर्व की कही बातें मार्गदर्शक होती हैं, सत्य शोध में सहायक होती हैं, अक्षरशः सत्य भी हो सकती है, किन्तु अंतिम सत्य नहीं। पूर्व में कही गयी किसी बात को अन्तिम सत्य कहना उचित नहीं है। किसी भी यथार्थ को अंतिम सत्य कभी न मानना चाहिए और न कहना। प्रकृति में अंतिम सत्य होता ही नहीं। किसी विचार को अंतिम सत्य कहकर प्रचारित करने वाले लोग या तो बुरी नीयत के होते हैं या भ्रम के शिकार।

1167. असत्य बोलना या धोखा देना विचारकों के लिए पूरी तरह वर्जित है चाहे वह धोखा जनहित में ही क्यों न हो। प्रायः हर आदमी अपने किये गये अनैतिक कार्य को नैतिक सिद्ध करने का प्रयास करता है। किन्तु समाज के विचारक वर्ग का कर्तव्य है कि वह ऐसी अनैतिकता को नैतिक स्वरूप प्रदान न होने दे, जब तक आपातकालीन परिस्थितियां ना हों।

117 सिद्धांत नीति एवं नीति निर्धारण

1170. मेरा स्पष्ट मत है कि नीतियों का प्रभाव चरित्र पर पड़ता है और चरित्र का प्रभाव नीतियों के कार्यान्वयन पर। नीतियां विधायिका बनाती है और कार्यान्वयन कार्यपालिका करती है। इस आधार पर विधायिका के संबंध में नीतियों का महत्व अधिक है। सिद्धांत और नीति का अंतर स्पष्ट है। सिद्धांत दीर्घकालिक नीति होती है जबकि नीति सिर्फ अल्पकालिक ही होती है। मैं लोक स्वराज्य तथा अपराध नियंत्रण को सिद्धांत मानता हूं और अहिंसा को नीति। मैं कट्टर हिन्दुत्व को श्रेष्ठतम विचारधारा मानता हूं तथा साम्यवाद को निकृष्टतम।

118 दान, चंदा और भीख

1180. (1) स्वेच्छा से तथा अपनी क्षमता के अनुसार, लेने वाले का पूरा अधिकार, बिना मांगे दिए जाने को दान कहते हैं। दान देने के बाद वापस नहीं लिया जा सकता। (2) मिलकर इकट्ठा करने, देने वाले का पूरा अधिकार, आपसी विचार विमर्श के आधार पर देने को चन्दा कहते हैं। चन्दे का पूरा हिसाब, चंदा देने वाला पूछ सकता है तथा परिस्थिति अनुसार तथा खर्च होने के पूर्व तक वापस भी ले सकता है। (3) स्वेच्छा से तथा लेने वाले की आवश्यकता को देखते हुए लेने वाले का पूरा अधिकार, मांगने पर दिए जाने को भीख कहते हैं। भीख का न तो हिसाब लिया जा सकता है और न ही इसे वापिस लिया जा सकता है।

1181. चंदा एक ऐसा धंधा है, जिसमें कभी घाटा नहीं होता है। यदि आर्थिक लाभ न भी हो तो सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़नी तो निश्चित है। अनियन्त्रित हड़तालें और अनियन्त्रित चन्दे के माध्यम से ही समाज विरोधी तत्व सामाजिक कार्यों की ओर लगातार सक्रिय होकर शक्तिशाली होते जाते हैं। ऐसी हड़तालों और चन्दों को समाज में नियन्त्रित करना चाहिए।

1182. कुपात्र को दिया गया दान, दाता के लिए घातक होता है। बिना सोचे-समझे दान देने की अपेक्षा दान न देना अच्छा है। वर्तमान सामाजिक स्थितियों में दान, चंदा और भीख के मामले में भावना की तुलना में बुद्धि का अधिक उपयोग करना चाहिए।

1183. वर्ण व्यवस्था के अनुसार वैश्य को छोड़कर शेष तीन वर्ण के लोग आर्थिक दृष्टि से अक्षम माने जाते हैं। दान-चंदा और भीख इन तीन वर्णों की व्यवस्था के आधार होते हैं। वर्तमान समय में दान, चंदा

और भीख का निरंतर दुरूपयोग हो रहा है। इसलिए इस पर नये तरीके से सोचने की आवश्यकता है। इन तीनों में भी चंदा अधिक बड़ा व्यवसाय बनता जा रहा है।

1184. दान, चंदा और भीख अलग-अलग अर्थ और प्रभाव रखते हैं। दान स्वेच्छा से और अपनी क्षमतानुसार दिया जाता है। दान पर दान लेने वाले का पूरा अधिकार होता है। देने के बाद देने वाले का कोई अधिकार या हस्तक्षेप नहीं होता। यहां तक कि देने वाला उसका कोई हिसाब भी नहीं पूछ सकता। दान बिना मांगे दिया जाता है और देने के बाद किसी भी परिस्थिति में वापस नहीं लिया जा सकता। किसी भी प्रकार का दान देने वाला कर्तव्य भावना से देता है।

1185. चंदा और दान में बहुत फर्क होता है। चंदा दिया और लिया नहीं जाता बल्कि इकट्ठा किया जाता है। चंदे पर देने वाले का पूरा अधिकार होता है। वह कभी भी हिसाब मांग सकता है और विशेष परिस्थिति में वापस भी ले सकता है। चंदा एक आपसी समझौता है जिसे हम सहभागिता भी कह सकते हैं।

1186. भीख एक भिन्न प्रकार की प्रक्रिया है, जो मांगने पर दी जाती है। आवश्यकता का आकलन करके दी जा सकती है तथा भीख पर देने वाले का कोई अधिकार नहीं होता। भीख आमतौर पर दया की भावना से दी जाती है। भीख भी दान की तरह स्वेच्छा से दी जाती है, जिसका न कभी हिसाब लिया जा सकता है, न ही वापस मांगा जा सकता है।

1187. यदि हम भारत की पुरानी व्यवस्था का आकलन करें तो दान, चंदा और भीख एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था के रूप में माना जा

सकता है। ब्राह्मण मुख्य रूप से दान का, क्षत्रिय चंदे का तथा शुद्र भीख का उपयोग करते हैं। प्रत्येक सक्षम व्यक्ति अपना कर्तव्य समझता है कि वह परिस्थिति अनुसार तीनों का सहयोग करे।

1188. चंदा मांगना तो एक धंधा ही बन गया है। चंदे के नाम पर अधिकांश धूर्त अपनी दुकानदारी चला रहे हैं। वास्तविक भिखारी तो अब शायद ही दिखते हैं। अधिकतरपेशेवर भिखारी ही मिलते हैं, यहां तक कि शारीरिक दृष्टि से पूरी तरह अक्षम और कुछ सक्षम लोग भी इसे व्यवसाय बना लिए हैं।

1189. धर्म और समाज सेवा के नाम पर दान मांगना फैशन बन गया है। सिद्धांत रूप से दान मांगा नहीं जाता किन्तु वर्तमान समय में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दान मांगने वालों की समाज में भीड़ लगी हुई है।

1190. किसी महापुरुष ने कहा था कि जो मांगने जाता है वह तो एक प्रकार से मर ही जाता है किन्तु जो मांगने पर भी नहीं देता उसकी मृत्यु मांगने वाले से भी पहले हो जाती है। आदर्श स्थिति में इस कहावत का बहुत महत्व है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में यह कहावत बहुत अधिक हानिकारक है। हर धूर्त इस कहावत का पूरा-पूरा दुरूपयोग करता है। इसलिए किसी अन्य महापुरुष को यह सलाह देनी पड़ी कि कुपात्र को दिया गया दान दाता को भी नर्क में ले जाता है। दान, चंदा या भीख न देना उतना हानिकरक नहीं है जितना गलत व्यक्ति को देना।

1191. वोट न तो दान है और न ही भीख है। उसे आप चंदे की श्रेणी में रख सकते हैं।

1192. मेरा सुझाव है कि दान बहुत सोच-समझकर दिया जाना चाहिए। दान और भीख की तुलना में चंदा लेना-देना अधिक घातक सिद्ध

हो रहा है। चंदे का धंधा दान की प्रवृत्ति को भी निरूत्साहित कर रहा है।

1193. यदि किसी कार्य के लिए धन-संग्रह आवश्यक है और उसमें कोई घपला नहीं करना है तो उसे अधिकतम पारदर्शी होना चाहिए। साथ ही ऐसा धन-संग्रह सिर्फ सहमत और सम्बद्ध लोगों के बीच ही हो सकता है। दूसरे लोगों से नहीं मांगा जा सकता।

119 निर्वाचक मंडल

1194. निर्वाचक मंडल उस मतदाता समूह को कहते हैं जो जनप्रतिनिधि को चुनता है। वर्तमान में भारत के आम मतदाताओं का समूह ही निर्वाचक मंडल है।

120 भावना और बुद्धि

1200. दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति में भावना और बुद्धि का समिश्रण होता है। किन्तु किन्हीं भी दो व्यक्तियों में बुद्धि और भावना का प्रतिशत समान नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति पर भावना और बुद्धि का बिल्कुल अलग-अलग प्रभाव होता है। भावना व्यक्ति को या तो शराफत की ओर ले जाती है अथवा मूर्खता की ओर। बुद्धि व्यक्ति को या तो ज्ञान की ओर ले जाती है या धूर्तता की ओर।

1201. जब बुद्धि और भावना के बीच दूरी निरंतर बढ़ती रहे, शरीफ और धूर्त एक साथ इकट्ठे होने लगे, विचार-मंथन की जगह विचार-प्रसार को अधिक महत्व दिया जाने लगे, विपरीत विचारों के लोग एक साथ बैठकर विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए सहमत न हों तथा ज्ञान विस्तार के महत्वपूर्ण अंग परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था को योजनापूर्वक कमजोर करने का कुचक्र रचा जाये तो वह कालखंड आपातकाल माना जाना चाहिए।

1202. जब व्यक्ति में बुद्धि और भावना का संतुलन गड़बड़ होकर किसी एक दिशा में बढ़ने लगता है तब समाज पर भी उसका प्रभाव पड़ना निश्चित है। बुद्धि प्रधान व्यक्ति समूह संचालक की दिशा में और भावना प्रधान संचालित की दिशा में बढ़ते जाते हैं। बुद्धि प्रधान लोग प्रचार माध्यमों का उपयोग करते हैं और भावना प्रधान ऐसे प्रचार से प्रभावित होते रहते हैं।

1203. भावनाओं पर चोट लगने से प्रभावित व्यक्ति के दूर होने का खतरा बना रहता है। इसलिए तर्क के साथ-साथ भावनाओं का भी ख्याल रखना उचित है।

1204. विचार प्रधान लोगों को समझाने के लिए मृत महापुरुषों को आधार बनाना घातक होता है क्योंकि उक्त महापुरुष ने अपने जीवन काल में कई प्रकार की विपरीत बातें भी कही या लिखी होंगी या यह भी हो सकता है कि उन्होंने उस समय की परिस्थितियों से प्रभावित होकर कुछ लिखा हो।

1205. भावना प्रधान नेतृत्व न तो समस्याओं का समाधान कर सकता है, न ही समस्याएं बढ़ाता है। विचार प्रधान नेतृत्व ही समस्याओं का विस्तार भी कर सकता है और समाधान भी। किसी इकाई का प्रमुख जितना ही अधिक भावना प्रधान होता है, उस इकाई की असफलता के खतरे उतने ही अधिक बढ़ते जाते हैं। दूसरी ओर जिस इकाई का संचालक जितना ही अधिक विचार प्रधान होता है उस इकाई की सफलता के अवसर उतने ही अधिक होते हैं। भावना प्रधान व्यक्ति का नेतृत्व अपनी इकाई को नुकसान पहुँचाता है तथा अन्य इकाईयों को लाभ। विचार प्रधान नेतृत्व अपनी इकाई को तो लाभ पहुंचाता है, किन्तु अन्य इकाइयों के लिए लाभदायक भी हो सकता है और हानिकारक भी।

1206. भावना प्रधान व्यक्ति हमेशा शरीफ होता है और बुद्धि प्रधान आमतौर पर चालाक या धूर्त। बुद्धि और भावना का समन्वय ही समझदारी मानी जाती है।

1207. विचार और भावना का संतुलन आवश्यक है। यदि समाज में किसी एक का संतुलन खो जाये तो कठिनाई होती है। वर्तमान समय में विचारकों का अभाव हो गया है। परिणामस्वरूप धूर्त लोग विचारक बनकर भावना प्रधान लोगों का नेतृत्व करना शुरू कर देते हैं। भावना प्रधान स्वयं तो उचित-अनुचित का निर्णय नहीं कर पाते तथा ऐसे धूर्तों के प्रभाव में आकर उनके नेतृत्व में चलना शुरू कर देते हैं।

1208. यदि असत्य विचारों को चुनौती देने की बारी आएगी तो भावना प्रधान सफल नहीं होगा, बल्कि विचारक ही सफल होगा। किंतु यदि त्याग की आवश्यकता होगी तो वह विचारक नहीं कर सकता। त्याग भावना प्रधान ही कर सकता है। वह त्याग समाज हित में भी सम्भव है और विरोध में भी। आज समाज में जान देने वालों की कमी नहीं है। आवश्यकता है ऐसे लोगों के सही मार्गदर्शन की।

1209. वर्तमान समय में आवश्यकता यह है कि बुद्धि प्रधान लोगों को धर्म और नैतिकता की बात समझायी जाय तथा भावना प्रधान लोगों को तर्क का प्रशिक्षण देकर धर्म और भावनात्मक प्रभाव से बचाया जाय।

121 बुद्धि और तर्क

1210. जब तर्क से कोई बात सिद्ध नहीं हो पाती, तब भावनात्मक नारे या प्रचार का सहारा लिया जाता है। जब कोई व्यक्ति तर्क से अपनी बात नहीं समझा पाता, तब अपने कथन के साथ किसी महापुरुष का नाम जोड़ देता है। इस प्रकार के लोगों से बचना चाहिए।

1211. श्रद्धा और विचार बिल्कुल अलग-अलग होते हैं। ब्राह्मण प्रवृत्ति के लोग विचार प्रधान होते है तो अन्य तीन प्रवृत्तियों के लोग श्रद्धा प्रधान। दोनों को व्यवस्था के लिए एक-दूसरे का पूरक होना चाहिए। विचार विहीन श्रद्धा व्यक्ति को मूर्खता की ओर बढ़ा सकती है तो श्रद्धा विहीन विचार धूर्तता की ओर।

122 भावना और विवेक

1220. मनुष्य के कार्यों में भावना और विवेक का समन्वय अनिवार्य होना चाहिए। भावना त्याग का प्रतीक होती है और विवेक ज्ञान का। भावना की प्रधानता संतुलित निर्णय में बाधक होती है। भावना प्रधान व्यक्ति संतुलित निर्णय नहीं कर सकता। अच्छी भावनाएं व्यक्ति को शरीफ बनाती है। विवेक व्यक्ति को समझदार बनाता है। समाज में स्वार्थी तत्व भावनाओं का लगातार विस्तार चाहते हैं क्योंकि विवेक उनके स्वार्थ में बाधक होता है। धर्म, जाति, भाषा, राष्ट्र, लिंग, उम्र आदि भावनात्मक मुद्दे इनके हथियार होते हैं। अधिकांश सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाएं भावना विस्तार में निरन्तर लगी हुई हैं।

1221. विचार और बुद्धि भी अलग-अलग होते हैं। विचार निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है तो बुद्धि के निकाले गए निष्कर्ष को क्रियान्वित करने में सहायक होती है।

123 विचार से संस्कार तक

1230. विचार और साहित्य एक-दूसरे के पूरक होते हैं। विचार आत्मा है और साहित्य शरीर। विचार अपंग होता है तो साहित्य अंधा। विचार बीज है तो साहित्य हवा, पानी, खाद और दवा। विचार मक्खन रूपी तत्व होता है तो साहित्य मट्ठा। विचार मस्तिष्क को

प्रभावित करता है, तो साहित्य हृदय को। विचार तर्क प्रधान होता है तो साहित्य कला प्रधान। विचारों का प्रभाव बहुत देर से शुरू होता है और देर तक रहता है, तो साहित्य का प्रभाव तत्काल और अल्पकालिक होता है। यदि साहित्य और विचार को एक-दूसरे का सहारा न मिले, तो अलग-अलग रहकर दोनों अपना महत्व खो देते हैं।

1231. विचार पूरी तरह स्वतंत्र होता है। विचार कभी प्रतिबद्ध नहीं हो सकता और न ही होता है। विचार-विहीन साहित्य एक मृत शरीर है, जो आत्मा के अभाव में समाज के लिए घातक प्रभाव डालना शुरू कर देता है। ऐसा साहित्य विचारों के अभाव में प्रचार से प्रभावित हो जाता है तथा असत्य को ही समाज में सत्य के समान स्थापित कर देता है। वर्तमान समय में लगभग यही हो रहा है। यह स्थिति भारत की ही नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण विश्व की है।

1232. विचारों से नीतियां बनती हैं। नीतियों से व्यवस्था बनती है, व्यवस्था से चरित्र बनता है। चरित्र का व्यवस्था पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है और व्यवस्था का चरित्र पर बहुत अधिक, क्योंकि नीतियां विचारों से बनती हैं।

1233. भावना प्रधान व्यक्ति विचार प्रधान की तुलना में त्याग और बलिदान अधिक कर सकता है, लेकिन सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि वह किसी मामले में संतुलित निर्णय नहीं ले पाता। विचार प्रधान व्यक्ति ही परिस्थिति अनुसार निर्णय कर पाता है। इसीलिए वीर सावरकर के प्रति सम्मान व्यक्त किया जा सकता है, कृतज्ञता भी प्रकट की जा सकती है किन्तु किसी भी स्थिति में अनुकरण नहीं किया जा सकता। मैं जहां तक समझ सका हूं कि

सावरकर भावना प्रधान होने के कारण एक ऐसे व्यक्ति रहे हैं, जिनके कंधे पर रखकर अन्य लोग बंदूक चलाने का काम करते रहे। मैं तो सावरकर को अब तक ऐसे ही राष्ट्र भक्तों में मानता रहा हूं।

124 विचार-मंथन

1240. विचार का संबंध तर्क से है और संस्कार का भावना से। विचार मस्तिष्क का विषय है और संस्कार हृदय का। दोनों का एक-दूसरे से संबंध तो होता है किन्तु निर्णायक संबंध नहीं होता।

1241. विचार निष्कर्ष निकालता है। यह निष्कर्ष यदि क्रिया में बदलता है तो आदत बन जाती है। ऐसी आदत बिना सोचे-समझे ही लगातार व्यवहार में शामिल हो जाये, तब संस्कार बन जाती है।

1242. 'ज्ञानयज्ञ' योजना सभी समस्याओं का एकमात्र अच्छा समाधान है, क्योंकि यह विध्वंसक परिणामों पर नियंत्रण के साथ-साथ सार्थक परिणाम भी देती है। यह श्रद्धा, तर्क और आत्मविश्वास का अद्भुत संगम है। इससे प्रत्येक व्यक्ति का विवेक जागृत होता है, आत्मस्वाभिमान मजबूत होता है और इन दोनों का जागरण व्यक्ति के चरित्र पर व्यापक प्रभाव डाल सकता है।

1243. विचार-मंथन के माध्यम से व्यक्ति शराफत की तुलना में समझदारी की ओर बढ़ता जाता है। आमतौर पर देखा गया है कि हर धूर्त यह प्रयास करता है कि सामान्य व्यक्ति अधिक से अधिक शराफत की ओर बढ़े, समझदारी की ओर नहीं, क्योंकि समझदारी धूर्त के लिए बहुत बाधक होती है।

1244. बौद्धिक व्यायाम करने वाला किसी अन्य व्यक्ति से जल्दी ठगा नहीं जाता क्योंकि उसमें बौद्धिक व्यायाम के कारण भावना और बुद्धि का समन्वय होता रहता है। दूसरी बात यह भी है कि वह

किसी अन्य से बिना सोचे प्रभावित नहीं होता, क्योंकि उसके अंदर निरंतर समझदारी बढ़ती चली जाती है।

1245. भारत ब्राह्मण प्रवृत्ति का देश रहा है, इसलिए भारत में विचार-मंथन सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता था। भारत विचारों का निर्यात करता था। जब से भारत में विचार-मंथन बंद कर संस्कृति की नकल किया जाना शुरू हुआ, तब से भारत में गुलामी आनी शुरू हुई।

1246. जिस तरह शरीर को स्वस्थ्य रखने के लिए शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता होती है, ठीक उसी तरह व्यक्ति को अपनी बौद्धिक क्षमता बढ़ाने के लिए बौद्धिक व्यायाम की आवश्यकता है, जिसे हम विचार-मंथन कहते हैं। विचार-मंथन का अर्थ समान विचारधारा के लोगों के बीच चर्चा का नहीं बल्कि विपरीत विचारों के बीच मंथन का है।

1247. यह हमारा दायित्व है कि विचार-मंथन तथा निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया अनवरत जारी रहना चाहिए। इस विषय पर 'ज्ञानयज्ञ परिवार' पूरी तरह स्पष्ट है।

1248. हमारी अपनी व्यक्तिगत मान्यताएं हैं, निष्कर्ष है, जीवन पद्धति है। 'ज्ञान तत्व' में हमारी चर्चाएँ सूचनार्थ हैं, ताकि विचार-मंथन का क्रम आगे बढ़े। सम्भव है कि मंथन काल में हमारी सोच बदले। यह भी सम्भव है कि मंथन से हमको पता चले कि हमारी सोच अपूर्ण है या गलत है।

125 वर्तमान परिस्थिति और विचार-मंथन

1250. आज सम्पूर्ण विश्व में प्रचार करने की होड़ मची हुई है। अनेक असत्य सत्य के समान स्थापित हो गये हैं तथा लगातार होते जा रहे हैं। भावनाओं का विस्तार किया जा रहा है तथा विचार-मंथन

को कमजोर या किनारे किया जा रहा है। आज समाज में विचार-मंथन तथा विचारकों का अभाव हो गया है और प्रचार के माध्यम से तर्क को निष्प्रभावी बनाया जा रहा है।

1251. ज्ञान व्यक्ति को आत्म-निर्भर बनाता है और सुविधा बनाती है आश्रित। राजनेता नागरिक को स्वावलम्बी बनने में सहायक न होकर उसे ऐसी सुविधाएं दे रहा है कि वह हमेशा राज्य का मुखापेक्षी बना रहे। धार्मिक गुरु भी अपने शिष्यों को कर्मकाण्ड तक ही सीमित रखना चाहते हैं। यही कारण है कि हर गुरु या राजनेता समाज में विचार-मंथन को निरूत्साहित करके विचार-प्रचार को बढ़ावा देता है।

1252. समाज सेवा पूरी तरह निःस्वार्थ होने से उसे राजनीति या व्यवसाय की अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त था। जब अंग्रेजों ने भारतीय व्यवस्था में प्रवेश किया तो उन्होंने व्यवसाय के माध्यम से राज्य पर कब्जा किया। इसलिए राज्य व्यवस्था और व्यापार को एक साथ जोड़कर पूंजीवाद शुरू हुआ। पूंजीवाद में राज्य व्यवस्था व्यवसाय के अंतर्गत हो गई। उसके बाद कुछ देशों में साम्यवाद आया तो उसने तानाशाही शासन की स्थापना की। अर्थात् सम्पूर्ण व्यवसाय भी राज्य व्यवस्था के अधीन हो गया।

1253. वर्तमान दुनिया का संकट विश्वव्यापी है। समाधान कठिन है। यदि गंभीरता से विचार करें तो समस्याएं जितनी व्यापक और प्रभावशाली है, उनके समक्ष हमारी शक्ति बहुत कम है, किन्तु दूसरी ओर यह बात भी सच है कि समाधान करना ही होगा और इस समाधान में जितना विलम्ब होगा, समस्या उतनी ही बढ़ती जाएगी। इसलिए हमें इस समस्या का कोई ऐसा प्रतीकात्मक

समाधान करना होगा जिसमें संगठन बनाने की आवश्यकता न हो, प्रचार की भी आवश्यकता न हो, किसी व्यक्ति विशेष की विशेष पहचान भी न बनानी पड़े और लोगों के बीच किसी प्रकार की विशेष सक्रियता की भी आवश्यकता न हो। धर्म, समाजसेवा या राजनीति का चोला पहने कौन व्यक्ति हमारे बीच गुमराह कर रहा है? इसकी पहचान जब तक नहीं होती, तब तक उस दिशा में बढ़ने की आवश्यकता ही नहीं है। इसलिए वर्तमान संकट काल में 'ज्ञानयज्ञ' ही एकमात्र समाधान है।

1254. जो भारत पूरे विश्व में विचारों का निर्यात करता था, वही भारत विदेशी विचारों का आयात क्यों करने लगा? इसका प्रमुख कारण था भारत की चिन्तन धारा का अवरुद्ध होना। मौलिक विचारों के अभाव में भारत विदेशी प्रचार से प्रभावित हो गया।

1255. समाज के संतुलित संचालन में विचारों का सर्वाधिक महत्व होता है। पिछले कुछ हजार वर्षों से भारत में विचारकों का भी अभाव हुआ तथा विचारों का भी। प्राचीन समय में भारत दुनिया में विचारों का निर्यात करता था, किन्तु धीरे-धीरे भारत विचारों का आयात करने के लिए मजबूर हो गया। हमें व्यक्तियों से प्रभावित न होकर विचारों से प्रभावित होना चाहिए।

1256. हम गलत विचारों का मुकाबला सही विचारों से ही करें न कि गलत विचारों को कानून से रोककर। वर्तमान समय में विचारों का अभाव होने से गलत विचारों को रोकने के लिए कानून का सहारा लिया जा रहा है।

126 बुद्धि प्रधान एवं भावना प्रधान

1260. यदि हम वर्तमान भारत की समीक्षा करें, तो भारत में भावना प्रधान

लोगों का प्रतिशत भी बढ़ रहा है तथा बुद्धि प्रधान लोगों का भी। किन्तु ज्ञान घट रहा है। शरीफ लोग भी बढ़ रहे हैं और चालाक भी बढ़ रहे हैं किंतु समझदार जो उचित-अनुचित का ठीक-ठीक निर्णय कर सकें, ऐसे लोग घट रहे हैं।

1261. भावना प्रधान और बुद्धि प्रधान में फर्क होता है। हिन्दू आमतौर पर भावना प्रधान, मुसलमान भी अधिकांश भावना प्रधान तथा वामपंथी आमतौर पर बुद्धि प्रधान होता है। बुद्धि प्रधान मोटिवेटर तथा भावना प्रधान मोटिवेटेड होता है। भावना प्रधान पीछे-पीछे चलता है और बुद्धि प्रधान चलाता है। संपूर्ण भारत में सबसे ज्यादा भावना प्रधान संघ परिवार में तथा सबसे अधिक बुद्धि प्रधान साम्यवाद में पाये जाते हैं।

1262. बुद्धि प्रधान व्यक्ति मौलिक सोच रख सकता है, जबकि भावना प्रधान व्यक्ति मात्र अनुकरण ही कर सकता है, मौलिक सोच नहीं रखता। बुद्धि प्रधान व्यक्ति संचालन कर सकता है। जबकि भावना प्रधान सिर्फ संचालित होता है। बुद्धि प्रधान व्यक्ति के किसी भी काम में असफल होने की संभावना कम होती है, क्योंकि वह सोच समझकर निर्णय करता है। भावना प्रधान यदि स्वतंत्र निर्णय करे, तो असफल होने के अवसर ज्यादा होते हैं।

1263. बुद्धि प्रधान व्यक्ति यदि सिर्फ परिवार की लाइन में बढ़े, तो समाज का अधिकतम शोषण भी कर सकता है और त्याग भाव की ओर बढ़े तो समाज को शोषण से बचा भी सकता है। भावना प्रधान लोग न शोषण कर सकते हैं, न शोषण से बचा सकते हैं। ये तो मात्र अनुकरण ही कर सकते हैं। ऐसे लोग इस बात की चिन्ता नहीं करते कि उनके त्याग का फायदा अच्छे लोग उठा रहे हैं या धूर्त लोग।

1264. हर बुद्धि प्रधान धूर्त प्रयास करता है कि समाज में भावनाओं का विस्तार हो, क्योंकि भावनाओं का विस्तार उसके शोषण में सहायक होता है। बुद्धि प्रधान अच्छा आदमी चाहता है कि भावना और बुद्धि का समन्वय हो। भावना घटे और बुद्धि बढ़े।

1265. बुद्धि प्रधान व्यक्ति का कला से कोई प्रेम नहीं होता। भावना प्रधान व्यक्ति कला प्रेमी होता है। बुद्धि प्रधान व्यक्ति व्यसन से भी कम चिपकता है। भावना प्रधान व्यसन से अधिक चिपकता है। बुद्धि प्रधान व्यक्ति यदि व्यसन मुक्त हो, तो व्यसनी भावना प्रधान की अपेक्षा कई गुना अधिक शक्तिशाली हो सकता है, चाहे वह शक्ति शोषण में लगे या सामाजिक कल्याण में।

1266. गांधी जी बुद्धि प्रधान व्यक्ति थे, जिन्होंने मौलिक सोच प्रस्तुत की। जयप्रकाश जी बुद्धि और भावना का समन्वय रखते थे। विनोबा जी भावना प्रधान अधिक थे, बुद्धि प्रधान कम।

1267. वर्तमान समय में साम्यवादी बुद्धि प्रधान माने जाते हैं और सर्वोदयी या संघ परिवार के लोग भावना प्रधान। यही कारण है कि सर्वोदय और संघ परिवार के लोग ठगे जाते हैं, जबकि साम्यवादी ठगे नहीं जाते।

1268. भावना प्रधान मरने या मारने में हमेशा आगे रहता है। बुद्धि प्रधान दोनों में पीछे रहता है। यदि परिवार या समाज के लिए जान देने की जरूरत हो, तो बुद्धि प्रधान पीछे हट जायेगा और भावना प्रधान आगे आ जायेगा।

1269. प्रत्येक व्यक्ति को भावना और बुद्धि के समन्वय का मार्ग ही चुनना चाहिए। जहां तक सम्भव हो भावना की अपेक्षा बुद्धि को अधिक महत्व देना चाहिए। न तो कोई व्यक्ति भावना शून्य हो सकता है, न

बुद्धि शून्य। फिर भी हमें चाहिए कि हम भावना प्रधान होने से बचें और बुद्धि पर भी विवेक को मजबूत करें।

127 विचार-मंथन और मानवीय स्वभाव

1270. समस्याओं से मुक्ति के प्रयास होते रहेंगे तथा समस्याओं के समाधान के प्रयत्न भी होते रहेंगे, किन्तु इसके साथ-साथ हमें भारत की चिन्तन शक्ति को भी जागृत करना होगा।

1271. हिन्दू विचारधारा आमतौर पर विचार-मंथन को प्राथमिकता देती है, तो इस्लाम संगठन को।

1272. जिस समय दुनिया में विश्वस्तरीय मानव स्वभाव में तापवृद्धि हो रही हो, ऐसे समय भारत को किसी वैचारिक समाधान का मार्ग खोजना चाहिए, न कि मानव स्वभाव तापवृद्धि को प्रोत्साहित करने का।

(1) जो लोग मान्यता में कट्टरवादी हैं तथा कार्यप्रणाली में उग्रवादी, उन्हें नष्ट कर देना चाहिए।

(2) जो लोग मान्यता में शान्तिप्रिय है तथा परिस्थितिवश कट्टरवादी अथवा उग्रवादी, उन्हें नियंत्रित करना चाहिए।

(3) जो लोग मान्यता में उग्रवादी हैं तथा कार्यप्रणाली में शान्तिप्रिय हैं उन्हें समझाना चाहिए। उनसे विचार-मंथन करना जारी रखना चाहिए।

(4) जो लोग मान्यता में भी शान्तिप्रिय है तथा कार्यप्रणाली में भी, उनका अनुसरण करना चाहिए।

1273. मेरे विचार से भारत में अभी ऐसी परिस्थिति नहीं आई है कि हम हिन्दुत्व की मूल अवधारणा को छोड़कर इस्लामिक अवधारणा अर्थात् जैसे को तैसा का अनुसरण करें। उचित तो यह होगा कि हम

हिन्दू सावधानी और सतर्कता से परिस्थितियों पर कड़ी और पैनी नजर बनाये रखें और परिस्थिति अनुसार निर्णय लें। नरेन्द्र मोदी के आने के बाद वातावरण बिल्कुल बदल गया है।

1274. विचार तो वह होता है, जो विचार-मंथन के बाद निकला हुआ निष्कर्ष हो, और उस विचार-मंथन में भावनाओं की जगह तर्क का सहारा लिया जाये।

1275. कोई व्यक्ति यदि चालाक हो, तो उसके पागल होने का खतरा न के बराबर होता है, किन्तु ईमानदार अतिपरिश्रमी, कुशाग्रबुद्धि भावना प्रधान के लिए यह खतरा बहुत बढ़ जाता है। असम्भव को सम्भव करने का स्वप्न देखने वाले ही या तो उच्च शिखर तक पहुँच पाते हैं अथवा असफल होने पर या तो आत्महत्या करते हैं या पागल हो जाते हैं।

128 विचार प्रचार

1280. मैं विचार-मंथन पर जोर देता हूं, विचार प्रचार पर नहीं। मंथन का अर्थ होता है गुण-दोष के आधार पर विषय की समीक्षा। मैं पुनः स्पष्ट कर दूँ कि मैं किसी विचार-प्रचार का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहा। मैं तो सिर्फ विचार-मंथन का प्रतिनिधित्व कर रहा हूं।

1281. चालाक लोग आगे चलने में सिद्धहस्त होते हैं, तो भावना प्रधान लोग अनुकरण करने में। एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि शराफत के कंधे पर चढ़कर ही धूर्तता प्रगति किया करती है। यह भी एक सिद्धांत है कि चालाकी सीमा से आगे बढ़ती है, तो धूर्तता में बदल जाती है और शराफत सीमा से आगे बढ़कर मूर्खता में बदल जाती है।

1282. भारत में कई विषयों पर शोध की परिपाटी कई सौ वर्षों से बंद

है। परिणामस्वरूप हमारी मजबूरी है कि या तो हम बिना बिचारे पश्चिम की सभ्यता की नकल करें या अपने पूर्वजों की। दोनों ही नकल घातक है, क्योंकि जिस समय वे विचार दिये गये, उनमें और आज के देश-काल-परिस्थिति में बहुत फर्क है और इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम या आप उन निष्कर्ष की व्यवहारिकता के अनुसार संशोधन करके ही धरातल पर उतारें।

1283. चिन्तन गौण हो गया है और प्रचार महत्वपूर्ण हो गया है। यहां तक कि संसद में भी चिन्तन का वातावरण कभी नहीं बनता। भारत संसदीय लोकतंत्र की आंख मूंदकर नकल कर रहा है, जबकि उसे भारतीय परिवेश में नई व्यवस्था के प्रारुप पर चिन्तन करना चाहिए था।

1284. विचार-मंथन और विचार प्रचार अलग-अलग होते हैं। वर्तमान समय में विचार-मंथन और उससे प्राप्त निष्कर्ष की तुलना में विचार प्रचार की मात्रा और महत्व बहुत बढ़ गया है।

1285. विचारों से निकले निष्कर्ष के प्रचार-प्रसार के लिए संगठन की आवश्यकता होती है।

1286. मैं एक विचारक हूं, जिसे प्रचार से अधिकतम दूरी बनाकर रखनी चाहिए, क्योंकि प्रचार विचार विस्तार में सहायक होता है, विचार-मंथन में बाधक। इसलिए मैं जीवनभर विचार-मंथन में लगा रहा और प्रचार-प्रसार से पूरी तरह दूर रहा। मैंने संन्यास के मार्ग पर चलने की राह पकड़ी है, तो उसका उद्देश्य मुक्ति की कामना नहीं है। उसका उद्देश्य तो है कि सब काम छोड़कर ऐसे प्रबल जनमत जागरण में अपनी सारी शक्ति लगाई जाए, जो सारी दुनिया की प्रमुख समस्याओं के समाधान में सहायक है।

129 विचार-मंथन और निष्कर्ष

1290. निष्कर्ष निकालने और क्रिया करने के बीच संतुलन होना चाहिए। बिना निष्कर्ष निकाले कार्य करने की जल्दबाजी घातक होती है, तो निष्कर्ष निकालने में अधिक विलम्ब भी कार्य की सफलता में बाधक होता है। वर्तमान समय में विचार-मंथन का अभाव है और सक्रियता बहुत बढ़ गई है। हर आदमी कोई न कोई निष्कर्ष लेकर प्रचार में संलग्न है, जबकि उसने निष्कर्ष निकालने में कभी विचार-मंथन नहीं किया। चिन्तन और चिन्ता दोनों ही अलग-अलग गुण होते हैं। चिन्तन आवश्यक है और चिन्ता घातक। चिन्तन निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया होती है जबकि चिन्ता, चिन्तन में बाधक।

1291. निष्कर्ष निकालने और उन्हें क्रियान्वित करने में देश-काल, परिस्थिति की भी भूमिका हुआ करती है। यदि वे महापुरुष जीवित रहते, तो देश-काल, परिस्थिति अनुसार अपने निष्कर्ष की समीक्षा भी करते और संशोधन भी।

1292. निष्कर्ष निकालने का सर्वश्रेष्ठ माध्यम विचार है और विचारों को ठीक दिशा देने का आधार है विचार-मंथन। बहुत प्राचीन काल में सामाजिक विषयों पर भी निष्कर्ष निकालने में विचार-मंथन की अग्रणी भूमिका रही है। नितान्त पारिवारिक या व्यक्तिगत मामलों में भी यह प्रक्रिया जारी रही है। किन्तु सम्पूर्ण विश्व में निष्कर्ष निकालने में विचार-मंथन की प्रकिया समाप्त हो रही है और विचारों का स्थान भावना ले रही है। विचार निष्कर्ष निकालता है और भावनाएं प्रचार से प्रभावित होकर निष्कर्ष निकालती हैं।

130 विचार-मंथन और आधुनिक दुनिया

1300. यदि हम पूरे विश्व का आकलन करें, तो पूरे विश्व की हालत भारत

जैसी तो नहीं है, किन्तु पूरे विश्व में भी कुछ अंशों में भारत जैसी हालत बन रही है। पूरी दुनिया में भौतिक उन्नति हो रही है, किन्तु सुरक्षा और न्याय कमजोर हो रहे हैं। आम लोगों का चरित्र गिर रहा है, आतंकवाद बढ़ रहा है, सामाजिक व्यक्तियों का मनोबल टूट रहा है और समाज विरोधियों का मनोबल बढ़ रहा है। राज्य व्यवस्था असफल होती जा रही है।

1301. पूरे विश्व में तेजी से विचार-मंथन का स्थान विचार-प्रचार ने ग्रहण कर लिया है। पिछले दो-तीन हजार सालों से यह बीमारी शुरू हुई और अब तक तो इसने महामारी का रूप धारण कर लिया है। मृत महापुरुषों के विचार बिना स्वयं मंथन किये ही यथावत समाज तक पहुंचाने की घातक परंपरा निरंतर फल-फूल रही है।

1302. आधुनिक भारतीय महापुरुषों के रूप में स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी या श्रीराम शर्मा ने अपना सम्पूर्ण निष्कर्ष विचार-मंथन प्रकिया से निकाला था और उन्हीं के शिष्यों ने विचार-मंथन की प्रकिया को त्याग कर सिर्फ विचार-प्रचार को ही अपना उद्देश्य मान लिया है। लोग यह नहीं सोचते कि निष्कर्ष निकालने और उन्हें क्रियान्वित करने में देश-काल, परिस्थिति की भी भूमिका हुआ करती है। यदि वे महापुरुष जीवित रहते, तो देश-काल, परिस्थिति अनुसार अपने निष्कर्षों की समीक्षा भी करते और संशोधन भी किन्तु उनके जाते ही हम विचार-मंथन को रोककर सिर्फ प्रचार में लग गये हैं।

1303. राजनेताओं ने जन कल्याण के नाम पर नागरिक के अधिकतम धन और अधिकारों को अपने पास समेट लिया है। दूसरी ओर धार्मिक गुरुओं ने भी ट्रस्ट या ईश्वर के नाम पर अपनी आर्थिक शक्ति बहुत

मजबूत कर ली है। संचालक और संचालित के बीच एक संबंध और बन रहा है कि हर संचालक संचालित को ज्ञान न देकर या तो सुविधाएं दे रहा है या शिक्षा।

131 विचारक

1310. पिछले कई सौ वर्षों से भारत में विचार-मंथन का स्तर लगातार नीचे जा रहा है। वर्तमान समय में गांधी के बाद कोई गंभीर विचारक स्थापित नहीं हो पाया। नए स्वतंत्र और गंभीर विचारक निकल नहीं पा रहे हैं। यदि अपवादस्वरूप कोई निकलता भी है, तो उसका स्तर पिछले विचारकों की तुलना में बहुत कमजोर होता है, क्योंकि न तो ऐसे विचारकों को साहित्य का कोई सहारा मिल पाता है, न ही समाज का। ज्यों ही किसी बालक में स्वतंत्र चिन्तन की प्रतिभा दिखती है, त्यों ही स्थापित संगठन उनका ब्रेनवाश करके अपने साथ जोड़ने का भरपूर प्रयत्न करने लगते हैं।

1311. विचार-मंथन तथा सक्रियता ये दोनों भिन्न-भिन्न गुण होते हैं। अपवाद स्वरूप ही किसी में विचार-मंथन भी होता है और सक्रियता भी, किन्तु सामान्यतया ऐसे नहीं होता। विचारक कभी एक नहीं होते, यह स्वाभाविक है। किसी बिंदु पर कोई विचारक एक तरह का निष्कर्ष निकालता है, तो दूसरा बिल्कुल विपरीत। यदि विचारकों को एक करने का प्रयास होगा, तो वह एक संगठन बन जाएगा और संगठन स्वतंत्र विचारों में बाधक होता है। यही कारण है कि किसी भी संगठन में स्वतंत्र विचारों का अभाव है जिसके परिणाम स्वरूप वर्तमान में समस्याएं तथा टकराव जैसी बातें पैदा हो रही हैं। संगठन में क्रिया की एकरूपता तो होती है, किन्तु देश-काल, परिस्थिति अनुसार संशोधन या सुधार के अवसर नहीं होते।

1312. स्वतंत्र विचारकों को स्वतंत्रतापूर्वक विचार-मंथन करने का अवसर दीजिए, निष्कर्षों पर अमल करने का कार्य विचारक का नहीं, समाज का होता है। ऐसा करने वालों का समाज में अभाव नहीं है। समाज में अभाव है, स्वतंत्र विचार-मंथन का।

1313. दार्शनिक और विचारक तत्कालीन परिस्थितियों में दीर्घकालिक समाधान खोजने का प्रयास करते रहते हैं। जो भी व्यक्ति काल्पनिक कहानी को सत्य के समान स्थापित करे, वह विचारक नहीं हो सकता। जो भी व्यक्ति श्रोताओं को जनहित की जगह जनप्रिय भाषा का उपयोग करके मोहित कर ले, वह विचारक नहीं हो सकता।

1314. दो विचारक कभी एक नहीं होते और दो विचारकों के विचार भी पूरी तरह एक होना सम्भव नहीं है। विचारक बिरले ही होते हैं, कभी-कभी ही सफल होते हैं, करोड़ो की आबादी में एकाध होते हैं।

1315. किसी विचारक की अपनी सीमाएं भी होती हैं तथा स्वतंत्रताएँ भी। किसी विचारक को कभी किसी संगठन का न तो सदस्य होना चाहिए न बनाना चाहिए। वे किसी संस्था के साथ जुड़ सकते हैं लेकिन किसी संगठन के साथ नहीं क्योंकि संगठन का एक अनुशासन होता है, जो विचारक की स्वतंत्रता में बाधक होता है।

1316. विचारक की भूमिका उस प्रकार से सतर्क रहनी चाहिए, जैसे नदी में डूबते हुए को निकालने की सतर्कता। यदि बचाने वाला सतर्क नहीं रहा, तो दोनों को डूबना निश्चित है।

1317. विचारक के विचार को समाज ही कार्य रूप में परिणीत करता है।

1318. भारतीय मान्यता के अनुसार जो व्यक्ति जितना गंभीर विचारक

होता है, वह उतना ही बड़ा अपरम्परावादी, खोजी, तार्किक, कर्मकांड विरोधी या नास्तिक भी हो सकता है। विचारक पूजा-पाठ अथवा भक्ति और उपासना की अपेक्षा चिन्तन पर अधिक जोर देते है।

1319. विचारक वह होता है, जो किसी विषय पर उस समय प्रचलित धारणाओं पर चिन्तन करके कुछ निष्कर्ष निकालता है। विचारक के निष्कर्ष देश-काल, परिस्थिति आधारित होते हैं तथा देश-काल, परिस्थिति बदलते ही बदल भी सकते हैं। विचारक सामान्यतः वर्तमान परिस्थितियों से प्रभावित होकर उनका समाधान समाज हित में करना चाहता है, जो परिस्थिति बदलने से संशोधन हेतु तैयार भी रहता है।

1320. सामाजिक निष्कर्ष निकालने के मामलों में विचारकों की भूमिका या तो शून्यवत् हो गई है अथवा नगण्य। विचारकों का अभाव समाज के समक्ष एक खतरनाक संकट है। सच्चाई यह है कि समाज तो भावना प्रधान होता है, वह तो अनुकरण जानता है। विचारकों के अभाव में समाज इन नकली विचारकों या राजनेताओं के निष्कर्षों को ही सच मानकर उसका अनुकरण करने लगता है।

1321. मैं एक विचारक हूं। मेरा विचार आँख मूंदकर मानिये, मेरा यह कथन नहीं, क्योंकि इन विचारों में से कितने व्यावहारिक हैं और कितने नहीं, यह आप सबके प्रयोग के द्वारा ही पता चलेगा। मेरा यह भी कथन है कि आप निर्णय करने के पूर्व मेरी भी बात सुनिये। बिना ठीक से विचार किये हवा में उड़ते चले जाना ठीक नहीं।

1322. प्रायः प्रत्येक विचारक चिन्तन करता है, समीक्षा करता है, संशोधन करता है और यदि आवश्यक हो तो अपने पूर्व विचारों

को तर्कसंगत तरीके से बदल भी देता है। किन्तु बाद के लोग उक्त महापुरुष के विभिन्न परिस्थितियों तथा विभिन्न संदर्भों को बिना विचारे ही ऐसे भिन्न-भिन्न विचारों को उद्धरित करके महापुरुष के चिन्तन को ही विवादास्पद बना देते हैं।

132 चिन्तक

1323. जो व्यक्ति विश्व में प्रचलित सामाजिक परिभाषाओं में से किन्हीं दो या दो से अधिक परिभाषाओं को असत्य प्रमाणित कर दे तथा उसके स्थान पर सत्य परिभाषाओं को स्थापित कर दे, वह मौलिक चिन्तक कहा जा सकता है। चिन्तक हमेशा आत्म-केन्द्रित होता है तथा देश-काल, परिस्थिति अथवा विभिन्न स्थापित विचारों की समीक्षा न करके कोई मौलिक निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। ऐसे व्यक्ति के कार्य को ही अनुसंधान या रिसर्च भी कह सकते हैं।

1324. मैंने राष्ट्रीय स्तर पर अनेक नये निष्कर्ष दिये हैं, जो देश-काल, परिस्थिति अनुसार ग्राह्य हो सकते हैं जो भले ही विश्वस्तरीय न होकर स्थानीय स्तर के हों, किन्तु यह अवश्य है कि दो-तीन निष्कर्ष विश्वस्तरीय मान्यता प्राप्त कर सकते हैं। कम से कम तीन विश्वस्तरीय ऐसे निष्कर्ष हैं, जो पहली बार प्रस्तुत किये गये हैं तथा जिन्हें आज तक न तो किसी ने चुनौती दी है, न ही पूर्व स्थापित बताया है।

1325. मैं यह समझता था कि जब से भारत की चिन्तनधारा अवरूद्ध हुई है, तब से दुनिया के अनेक तथाकथित विद्वानों के कुछ अधकचरे निष्कर्ष भारत सहित दुनिया के अन्य देशों में प्रचारित हो गये हैं।

1326. मैं स्वयं इन परिस्थितियों से गुजर चुका हूं। जब संघ परिवार तक ने पूरी ताकत से विरोध किया। कभी-कभी तो हिंसक प्रयत्न भी

हुए। यहां तक कि गांधीवादियों के एक समूह ने भी मुझे अपमानित करने और नुकसान पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यदि ठाकुर दास जी बंग चट्टान की तरह मेरे साथ नहीं खड़े होते, तो तथाकथित गांधी का नाम लेने वाले व्यापारी मेरी बहुत दुर्दशा करते। अब मैं इन सारे संकटों से उबर चुका हूं।

1327. हमें विचारकों के समान पूर्व के महापुरुषों के विचारों की समीक्षा करके ही समाज को दिशा देनी चाहिए।

1328. मैंने राष्ट्रीय स्तर पर भी विद्वानों को चुनौती दी है कि महंगाई, महिला-उत्पीड़न आदि असत्य तथा कपोल-कल्पित अवधारणा है। स्वार्थी लोग इसे समझा-समझा कर भ्रम फैला रहे हैं। मैंने यह भी चुनौती दी है कि सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व है तथा अन्य जनकल्याणकारी कार्य राज्य के स्वैच्छिक कर्तव्य।

133 विचारक और साहित्यकार

1330. न कोई विचारक साहित्य से शून्य होता है, न कोई साहित्यकार विचार से। विचारक का मुख्य लक्ष्य सामाजिक होता है और व्यक्तिगत या पारिवारिक सहायक लक्ष्य। साहित्यकार का मुख्य लक्ष्य व्यक्तिगत या पारिवारिक होता है और सामाजिक लक्ष्य सहायक।

1331. विचारक आमतौर पर प्रवृत्ति से ब्राह्मण के समान माना जाता है और साहित्यकार प्रवृत्ति में वैश्य के समान माना जाता है। विचारक को अपने सम्मान से सन्तुष्ट होना चाहिए और धन या सत्ता की इच्छा बिल्कुल नहीं रखनी चाहिए। साहित्यकार धन और सुविधा की इच्छा रख सकता है।

1332. विचारक चाहे जितना गंभीर निष्कर्ष निकाल ले, किन्तु जब तक

उसे साहित्य का सहारा नहीं मिलता, तब तक वह आगे नहीं बढ़ पाता। या तो वह वहीं पड़ा-पड़ा सड़ जाता है या साहित्य से संयोग की प्रतीक्षा करता रहता है। इसी तरह साहित्य को जब तक विचार न मिले, तब तक वह निष्प्राण निष्प्रभावी प्रदर्शन मात्र करता रहता है।

1333. स्वतंत्र विचारक और सत्ता-लोलुप बिल्कुल भिन्न-भिन्न होते हैं। विचारक जिस कार्य को मार्ग मानते हैं, उसे सत्ता-लोलुप लक्ष्य मान लेते हैं।

1334. विचार और साहित्य अलग-अलग होते हैं। विचार करने तथा साहित्य सृजन का गुण एक ही व्यक्ति में भी हो सकता है और पृथक-पृथक भी। विचार, चिन्तन से निकला हुआ निष्कर्ष होता है, बुद्धि प्रधान होता है, बिना साहित्य के आगे नहीं बढ़ सकता, कठिनाई से ग्रहण होता है। साहित्य, निष्कर्ष को समाज तक पहुँचाने का आधार होता है, कला प्रधान होता है, भावनाओं को मजबूत करता है, आसानी से ग्रहण हो जाता है। विचार और साहित्य एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं और एक-दूसरे पर निर्भर भी।

1335. जब विचारकों का अभाव हो जाता है, तब निष्कर्ष निकालने का काम साहित्यकार, राजनीतिज्ञ, समाजसेवी अथवा प्रवचनकर्ता करना शुरू कर देते हैं। इससे साहित्य की दिशा भी गलत हो जाती है और समाज पर उसका प्रभाव भी गलत पड़ता है। वर्तमान समय में यही हो रहा है। भिन्न विचारों के मंथन के बाद निकला हुआ निष्कर्ष ही अनुकरणीय होता है। कुम्भ की परम्परा सम्भवतः इसी मंथन के लिए शुरू हुई होगी। पुराने समय में सूचना प्रौद्योगिकी का अभाव होने से आम नागरिक ऐसे निष्कर्ष समाज तक पहुँचाने हेतु इकट्ठे होते होंगे।

1336. यदि किसी अपवाद को छोड़ दें, तो साहित्यकार और विचारक भी अलग-अलग ही होते हैं। न कोई विचारक साहित्य से शून्य होता है न कोई साहित्यकार विचार से। किन्तु साहित्यकार और विचारक में कोई एक गुण प्रधान होता है और दूसरा आंशिक। प्रधान गुण ही उसे विचारक या साहित्यकार होने की पहचान दिलाता है। विचारक को अधिकतम सम्मान तथा न्यूनतम सुविधाएं मिलती हैं, जबकि साहित्यकार को सामान्य सम्मान तथा सामान्य सुविधाएं। विचारक आमतौर पर व्यावसायिक मार्ग में नहीं जा पाता, जबकि साहित्यकार आम तौर पर व्यावसायिक दिशा में बढ़ता है।

1337. प्रतिबद्ध साहित्यकार किसी विचारधारा का दलाल या प्रचारक तो हो सकता है, किन्तु साहित्यकार नहीं। साहित्यकार तो पूरी तरह स्वतंत्र होता है। वह सरकार से भी नहीं डरता।

134 सहित्य और विचार

1340. साहित्य विचारों को रुढ़ बनाता है। साहित्य विचारों को रुढ़ बनाकर लम्बे समय तक के लिए सुरक्षित रखता है, दूसरी ओर साहित्य विचारों को देश-काल, परिस्थिति के आधार पर होने वाले नये-नये संशोधनों से भी दूर कर देता है। विचार व्यक्ति के ज्ञान का विस्तार करता है तो साहित्य भावना का। दोनों का प्रभाव समाज पर अलग-अलग होता है।

1341. कितनी बचकानी बात है कि राजनेताओं ने दहेज, आबादी वृद्धि, महिला अत्याचार, कन्या भ्रूणहत्या, महंगाई जैसे अस्तित्वहीन, अप्राथमिक अथवा अल्प प्राथमिक मुद्दों को सर्वोच्च प्राथमिक बोल दिया और साहित्यकारों, कलाकारों ने पूरी ईमानदारी से इन मुद्दों को समाज के सामने सर्वोच्च प्राथमिकता के रूप में स्थापित

कर दिया। आज देश के किसी अच्छे से अच्छे स्थापित विचारक की भी हिम्मत नहीं कि वह इन विषयों पर अपने अलग विचार रख सकें।

1342. भले ही साहित्य अपनी स्वतंत्रता खो दे, किन्तु विचार अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करता रहेगा क्योंकि यदि विचार अपनी स्वतंत्रता को बचाने में सफल रहा, तो साहित्य उसका साथ दे सकता है और तब स्वतंत्र साहित्य तथा स्वतंत्र विचार मिलकर समाज के बीच बढ़ते अंधेरे को घटाने में सहायक हो सकते हैं। वर्तमान समय में साहित्य, कला, मीडिया, राजनीति आदि की विश्वसनीयता तो संदिग्ध हो ही चुकी है, किन्तु विचार, जो इन सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है, उसे तो संगठित समूहों के आक्रमणों से बचाये रखना आवश्यक है।

1343. यदि साहित्य प्रतिबद्ध गुलाम या भयभीत हुआ तो आंशिक क्षति है, यदि राजनीति हुई तो कुछ विशेष क्षति है, यदि समाज सेवा हुई तो अपूरणीय क्षति है, किन्तु यदि विचार ही प्रतिबद्ध, गुलाम, व्यावसायिक या भयग्रस्त हुआ तो बचा ही क्या? आइये और विचार अभिव्यक्ति पर आये संकट का सामना करने को सब एकजुट हो जायें।

1344. धन अथवा सुख-सुविधाएं भले ही साहित्यकार को अधिक है, किन्तु सम्मान के मामले में वह विचारक से नीचे ही रहेगा।

1345. भारत में यह प्रथा रही है कि साहित्यकार, विचारक या अन्य सम्मानित लोगों को राजनैतिक पद या सम्मान देकर, उनसे अपनी तथा अपनी राजनैतिक व्यवस्था की प्रशंसा करायी जाये।

1346. साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। यदि साहित्य में कोई

विकृति दिखती है, तो वह समाज की विकृति है, साहित्य की नहीं, क्योंकि साहित्य तो समाज का दर्पण होता है, जो समाज के चेहरे को स्पष्ट मात्र करता है। दूसरी ओर ऐसा भी माना जाता है कि साहित्य ही समाज के स्वरूप का निर्माण करता है। साहित्य वह कारीगर है, जो समाज रूपी मूर्ति को निरंतर काट-छांटकर उसे समझने योग्य स्वरूप देने में लगा रहता है।

1347. साहित्यकारों में कई लोग मूल रुप से साहित्यकार नहीं होते, बल्कि संस्थाएं ऐसे लोगों की पहचान करके उन्हें दीक्षित करती हैं और धीरे-धीरे साहित्य के क्षेत्र में स्थापित कर देती हैं। कई विदेशी एजेंट भी ऐसे प्रतिबद्ध लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान देकर उन्हें और बड़ी पहचान दिलाते हैं। वामपंथ ने साहित्यकारों के गुट खड़े कर लिए हैं। साहित्यकार की स्वतंत्रता पूरी तरह प्रतिबद्ध हो गई। इन साहित्यकारों ने ऐसा ताना-बाना बुना कि धर्मनिरपेक्षता, अमेरिका विरोध आदि विचार इनके बंधक बन गए।

1348. भारत का साहित्यिक परिवेश दो विचारधाराओं के साहित्य युद्ध में फंस गया है। अब तक साहित्य पर वामपंथियों का कब्जा रहा, किन्तु महाश्वेता देवी को नारंग जी के माध्यम से चुनाव में हराकर दक्षिण पंथ ने वामपंथी साहित्य को चुनौती दी तथा अब जेएनयू टकराव के माध्यम से हार-जीत का खेल चल रहा है, जो न साहित्य के लिए शुभ लक्षण है न विचारों के लिए। स्वतंत्र साहित्यकार को किसी राजनैतिक, धार्मिक विचारधारा का गुलाम नहीं होना चाहिए। वामपंथ पूरी तरह राजनैतिक उद्देश्यों के लिए साहित्य का उपयोग कर रहा है। अब दक्षिण पंथ भी उसी रास्ते पर चलकर वामपंथ को टक्कर दे रहा है।

1349. सम्मान वापसी में साहित्य का प्रश्न गौण था और नई राजनैतिक व्यवस्था में बढ़ते साम्प्रदायिक हिन्दुत्व के सशक्तिकरण के विरोध में अधिक था। मैं इस मामले में स्पष्ट हूं कि भारत में तीन खतरनाक शक्तियों का सशक्तिकरण घातक है-1. वामपंथी संगठन और 2. साम्प्रदायिक इस्लामिक विचारधारा 3. संगठित सावरकरवादी परिवार।

135 साहित्य की दिशा

1350. साहित्य समाज का दर्पण होता है। यदि साहित्य में कोई विकृति दिख रही है, तो वह समाज की विकृति है, साहित्य की नहीं। साहित्य ही समाज का स्वरूप निर्माण करता है। साहित्य वह कारीगर है, जो मूर्ति को निरंतर कांट-छांट कर उसे समझने योग्य स्वरूप देने में लगा रहता है।

1351. साहित्य और विचार एक-दूसरे के पूरक होते हैं। एक के अभाव में दूसरे की शक्ति का प्रभाव नहीं होता। विचार, तत्व होता है, मंथन का परिणाम होता है, मस्तिष्क ग्राह्य होता है। साहित्य, विचारक के निष्कर्षों को आधार बनाता है, मंथन का अभाव होता है, हृदय ग्राह्य होता है, कला प्रधान होता है। विचार यदि घी है, तो साहित्य मट्ठा और विचार लंगड़ा है तो साहित्य अंधा। बिना साहित्य के विचार की स्थिति एक वस्त्रहीन नारी के समान है और बिना साहित्य के विचार के साहित्य की वस्त्रालंकृत मिट्टी की मूर्ति।

1352. विचार कठिनाई से ग्रहण हो पाता है, तो साहित्य आसानी से। विचार मस्तिष्क को प्रभावित करता है, तो साहित्य हृदय को। विचार तर्क प्रधान होता है, तो साहित्य कला प्रधान। विचारों का प्रभाव बहुत देर से शुरू होता है और देर तक रहता है, तो साहित्य का प्रभाव तत्काल होता है और अल्पकालिक होता है।

1353. साहित्य विचारों का समाज में स्थापित करता है। साहित्य विचारों को समाज में स्थापित करके लम्बे समय तक के लिए सुरक्षित रखता है, दूसरी ओर साहित्य विचारों को देश-काल, परिस्थिति के आधार पर होने वाले नये-नये संशोधनों से भी दूर कर देता है। विचार व्यक्ति के ज्ञान का विस्तार करता है, तो साहित्य भावना का। दोनों का प्रभाव समाज पर अलग-अलग होता है।

1354. मानविकी के अनुसार विचार का जन्म पहले होता है और वह बढ़ते-बढ़ते विचारक का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। विचार विहीन साहित्य एक मृत शरीर है जो आत्मा के अभाव में समाज के लिए घातक प्रभाव डालना शुरू कर देता है। ऐसा साहित्य विचारों के अभाव में प्रचार से प्रभावित हो जाता है तथा असत्य को ही समाज में सत्य के समान स्थापित कर देता है।

1355. कथाकार भी विचारक न होकर साहित्यकार की ही श्रेणी में होते हैं, क्योंकि कथाकार आमतौर पर कला का उपयोग करते हैं। जो भी व्यक्ति काल्पनिक कहानी को सत्य के समान स्थापित कर दे, वह विचारक नहीं हो सकता। जो भी व्यक्ति श्रोताओं को जनहित की जगह जनप्रिय भाषा का उपयोग करके मोहित कर ले, वह विचारक नहीं हो सकता।

1356. भले ही साहित्य अपनी स्वतंत्रता खो दे, किन्तु विचार अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करता रहेगा, क्योंकि यदि विचार अपनी स्वतंत्रता को बचाने में सफल रहा, तो साहित्य उसका साथ दे सकता है और तब स्वतंत्र साहित्य तथा स्वतंत्र विचार मिलकर समाज के बीच बढ़ते अंधेरे को घटाने में सहायक हो सकते हैं।

1357. विचार की स्थापना के लिए साहित्य अनिवार्य है और साहित्य के

मार्गदर्शन के लिए विचार। विचार को यदि साहित्य का सम्बल न मिले, तो विचार अंकुरित नहीं हो पायेगा और साहित्य को विचार की दिशा न मिले, तो वह झाड़-झंखाड़ के रूप में अनावश्यक विस्तार कर लेगा।

136 साहित्य की दशा

1360. विचारकों द्वारा गंभीर विचार-मंथन के बाद निकाले हुये निष्कर्ष को समाज तक पहुंचाने का दायित्व साहित्यकार का है। आदर्श स्थिति वह होती है, जब विचारक और साहित्यकार दोनों ही स्वतंत्र हों। अब विचारकों का अभाव हो गया है, मंथन प्रक्रिया मृतप्राय है, निष्कर्ष नहीं निकल रहे हैं, राजनेता ही विचारक बन बैठे हैं, राजनेता जो निष्कर्ष निकालते हैं, वही साहित्यकार के लिए विचार बन जाता है।

1361. प्रतिबद्ध साहित्कारों में कई लोग मूल रूप से साहित्यकार नहीं होते, बल्कि संस्थाएँ ऐसे लोगों की पहचान करके उन्हें दीक्षित करती हैं और धीरे-धीरे साहित्य के क्षेत्र में स्थापित कर देती हैं। ये लोग साहित्य के लिए विचारों का चयन नहीं कर पाते, बल्कि साहित्य की विधा का अपने लिए उपयोग करते हैं। ये वामपंथी साहित्यकार धीरे-धीरे साहित्य पर इस तरह छा गये कि स्वतंत्र साहित्य तो दिखना ही बंद हो गया और धीरे-धीरे दक्षिणपंथी साहित्कारों ने भी वही मार्ग चुना है, अब संस्कृति और राष्ट्रीयता शब्द इनके गुलाम बन रहे हैं।

1362. साहित्य समाज में विचारों का संवाहक बने रहे, किन्तु वह किसी पेशेवर दुकान का ट्रेड मार्क बनने से बचे अन्यथा साहित्य भी उसी तरह दलदल में फंस जायेगा जिस तरह धर्मनिरपेक्षता या भारतीय संस्कृति।

1363. दिल्ली में किसी रात किसी बड़ी दावत में चले जायें, जहां लगभग सभी पार्टी के राजनेता, पत्रकार, बुद्धिजीवी, बड़े व्यापारी, बड़े कलाकार, बड़े अफसरान आदि यानी वे लोग आते हैं, जो भारत की सरकार सीधे या परोक्ष रूप से चलाते हैं तो शराब के साथ-साथ अनेक असामाजिक कारनामे आपको देखने-सुनने को मिल जाएंगे।

1364. विचार तो पूरी तरह स्वतंत्र होता है। न तो विचार कभी प्रतिबद्ध हो सकता है, न होता है। वैसे तो साहित्यकार भी नैतिक रूप में स्वतंत्र ही होता है और यदि कोई कवि या लेखक विचार प्रतिबद्ध न होकर सत्ता प्रतिबद्ध हो जाता है, तो वह चारण या भाट तो कहा जा सकता है, किन्तु साहित्यकार नहीं।

1365. प्रतिबद्धता की बीमारी वामपंथ से शुरू हुई। वामपंथियों ने अपनी आवश्यकतानुसार लेखक, साहित्यकार, कवि, नाटककार आदि तैयार किये, उन्हें बढ़ाया, स्थापित किया तथा उपयोग किया। प्रगतिशील लेखक संघ आदि के नाम से ऐसे ही प्रतिबद्ध संगठन खड़े किये गये, जो हमेशा-हमेशा के लिए गुलाम होते हुए भी स्वयं को स्वतंत्र कहते रहे। इन सबके संगठन बने, जो एक-दूसरे के साथ जुड़कर काम करते रहे। अब दक्षिण पंथ भी वामपंथियों के मार्ग पर चल कर वामपंथी साहित्य को चुनौती दे रहा है।

137 विचार और क्रिया

1370 विचार और क्रिया का संतुलन होना चाहिए। विचारहीन क्रिया अव्यवस्था पैदा करती है और क्रियाहीन विचार असफलता की दिशा में ले जाता है, इसलिए क्रिया और विचार को एक साथ जुड़ना ही चाहिए।

1371. भारत मुख्य रुप से दो अलग-अलग विचारधाराओं पर चलता रहा है—1. पश्चिम की भौतिक प्रगति की विचारधारा, 2. भारत की आध्यात्मिक प्रगति की विचारधारा जिसे धार्मिक या नैतिक भी कहा जा सकता है। आमतौर पर भारतीय विचारधारा लगातार कमजोर हो रही है तथा पाश्चात्य भौतिक विचारधारा आगे बढ़ रही है। आवश्यकता है कि वर्तमान परिवेश में भारतीय विचारधारा के मजबूत करने के लिए नई वैश्विक और राष्ट्रीय परिस्थिति के अनुसार नीतियों की नैतिकता और आदर्शवाद को पुनः परिभाषित करने एवं धर्म, जाति, कर्मकाण्ड की रूढ़ियों से मुक्ति के बीच संतुलन बनाया जाय।

140 उपदेश प्रवचन, भाषण और शिक्षा

1400. उपदेश :- गूढ़, तात्विक, कथनी और चरित्र की एकरूपता, मस्तिष्क ग्राह्य तथा उपदेशक के अपने विचार होते हैं। उपदेश पूरी तरह सत्य, तत्व, विचार प्रधान तथा अपने स्वतः के ज्ञान से ओत-प्रोत होता है। उपदेशक अपने आचरण में भी असत्य का सहारा नहीं ले सकता और न ही अपने प्रवचन में असत्य बोल सकता है, न ही अपने विचारों के लिए पूर्व महापुरुषों के उद्धरण दे सकता है।

1401. उपदेशक का अनुभवी होना तथा उसकी बातें बुद्धिग्राह्य, गुण तथा तर्क प्रधान, तात्विक और गंभीर होनी चाहिए। उसकी कथनी और करनी में एकरुपता होनी चाहिए। उपदेशक का हर वाक्य सत्य होना चाहिए, स्पष्ट होना चाहिए, द्विअर्थी नहीं।

1402. उपदेशक की यह विशेषता होती है कि वह उपदेश देते समय हाथ नहीं हिलाता, न ही श्रोताओं की प्रतिक्रिया की अपेक्षा करता है। उसके चेहरे में उतार-चढ़ाव नहीं होता। निर्लिप्त भाव से विचार प्रकट

करता है। अपने विचारों की स्थापना के लिए अन्य महापुरुषों का नाम नहीं जोड़ता और प्रायः उपदेशक का अपना मौलिक चिन्तन होता है।

1403. उपदेश और प्रवचन व्यक्ति के चरित्र निर्माण में सहायक होते हैं। उपदेश और शिक्षा व्यक्ति की तर्क-शक्ति जागृत करते हैं।

1404. प्रवचन :- कलात्मक, कथनी और चरित्र की एकरूपता, बुद्धिग्राह्य तथा अपने विचार प्रधान होते हैं। अपना अनुभव, बुद्धिग्राह्य, कलाप्रधान, सुपाच्य, कथनी-करनी में एकरुपता तथा काल्पनिक प्रस्तुति प्रवचन होता है। प्रवचन में विचार और भावना का मिश्रण होता है।

1405. प्रवचन व्यक्ति को संस्कारित करते हैं। विचार तथा तर्क शक्ति पर खराब प्रभाव डालते हैं।

1406. भाषण :- कलात्मक, बुद्धिग्राह्य तथा अपने विचार प्रधान होते हैं, किन्तु चरित्र आवश्यक नहीं।

1407. शिक्षा :- तत्व और कला का समन्वय, हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय होता है, किन्तु चरित्र और अपने विचार आवश्यक नहीं। सामान्यतया दूसरों के निकाले गये निष्कर्ष किसी अन्य तक पहुंचाने का माध्यम शिक्षा होती है।

1408. भाषण :- बंधन रहित, बुद्धिग्राह्य, कला प्रधान, ज्ञान-शिक्षा मुक्त, कथनी-करनी की एकरुपता से मुक्त होता है। प्रवचन बंधन रहित, बुद्धिग्राह्य, कला प्रधान, शिक्षा से ओत-प्रोत तथा कथनी-करनी की एकरूपता का होता है।

1409. न कोई व्यक्ति सम्पूर्ण रुप से ज्ञानी हो सकता है, न ही पूरी तरह ज्ञान शून्य।

1410. भाषण और शिक्षा व्यक्ति की क्षमता बढ़ाते हैं, किन्तु चरित्र-निर्माण नहीं करते।

141 गुरु-शिष्य परम्परा

1411. मेरा एक सुझाव है कि वर्तमान सामाजिक वातावरण में गुरु और शिष्य परम्परा को पूरी तरह छोड़ दिया जाये। जब योग्य गुरु मिलते ही नहीं और धूर्त गुरुओं की संख्या बहुत अधिक है, तो इस परम्परा को पूरी तरह छोड़ ही देना चाहिए। अब इस विचार को बढ़ाना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति भी परिस्थिति के अनुसार गुरु भी हो सकता है और शिष्य भी। शराफत को समझदारी की दिशा देनी चाहिए।

1412. शिक्षक और गुरु में फर्क होता है। गुरु अपने अनुभव साझा करता है, उसमें नैतिकता होती है और कर्म से ब्राह्मण माना जाता है। शिक्षक दूसरों के अनुभव उसी रूप में दूसरों तक पहुँचा देता है।

142 ज्ञान, शिक्षा, बुद्धि और विवेक

1420. ज्ञान और शिक्षा अलग-अलग होते हैं।

ज्ञान :- प्रत्येक व्यक्ति का अपने व्यक्तिगत अनुभव का निष्कर्ष होता है, सकारात्मक होता है तथा समझदारी की दिशा देता है।

शिक्षा :- हमेशा दूसरों से प्राप्त होती है, नकारात्मक भी हो सकती है, क्षमता विस्तार में सहायक होती है, लेकिन मार्गदर्शन में नहीं। शिक्षा सूचना भी देती है और यही सूचना ज्ञान में सहायक होती है।

1421. बुद्धि और विवेक अलग-अलग होते हैं। विवेक, उचित-अनुचित को अलग-अलग बांट कर उचित दिशा में प्रेरित करता है। बुद्धि ऐसे निष्कर्ष को सफल बनाने का मार्ग बताती है। बुद्धि का उचित-अनुचित का निर्णय करने में योगदान नहीं होता।

1422. विवेकशील व्यक्ति न धूर्त हो सकता है न समाज विरोधी। बुद्धिमान व्यक्ति सामाजिक भी हो सकता है और धूर्त या समाज विरोधी भी।

143 शिक्षा और ज्ञान में अन्तर

1430. ज्ञान और शिक्षा बिल्कुल अलग-अलग होते हैं। ज्ञान घट रहा है और शिक्षा बढ़ रही है। पीएचडी की डिग्री शिक्षा के लिए एकमात्र मापदण्ड है, ज्ञान का मापदण्ड नहीं। कबीर दास बिना पीएचडी वाले अशिक्षित ज्ञानी थे और अम्बेडकर जी उच्च शिक्षित अल्प ज्ञानी। कबीर दास को समाजशास्त्र का अधिक ज्ञान था, कानून का कम। अम्बेडकर को कानून का अधिक ज्ञान था, समाज व्यवस्था का कम। संविधान के मूल तत्व समाजशास्त्रियों को बनाना चाहिए था और भाषा कानूनविदों को देनी थी, किन्तु हुआ इसका ठीक उलटा।

1431. शिक्षा का चरित्र से कोई भी रिश्ता नहीं है। यदि शिक्षा का चरित्र पर कोई प्रभाव पड़ता होता, तो एक ही गुरु से साथ-साथ पढ़कर पांडव व कौरव ठीक विपरीत चरित्र के न निकले होते। शिक्षा न नैतिक होती है न अनैतिक। वह तो व्यक्ति की क्षमता का विकास करती है, नैतिकता का नहीं।

1432. ज्ञान और चरित्र दोनों के तीन स्रोत होते हैं—1. जन्म पूर्व के संस्कार, 2. पारिवारिक वातावरण और 3. सामाजिक परिवेश। परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को कमजोर करने के कारण पूरी दुनिया में और विशेषकर भारत में ज्ञान तेजी से घट रहा है और चरित्र भी घट रहा है, भले ही शिक्षा तेजी से बढ़ रही है। क्योंकि ज्ञान से चरित्र सुधरता है जबकि शिक्षा क्षमता में विस्तार करती है।

1433. ज्ञान हमेशा सकारात्मक दिशा में निष्कर्ष निकालता है, तो बुद्धि

दोनों दिशाओं में चलायमान रहती है। ज्ञान स्वयं का अनुभव होता है। परिवार और समाज व्यवस्था को कमजोर करके राज्य व्यवस्था का हावी होना ज्ञान घटने का मुख्य कारण है। परिवार और समाज सशक्तिकरण करके ही ज्ञान का विस्तार सम्भव है।

1434. प्रश्न उठता है कि हम आगे गये हैं या पीछे। शिक्षा बढ़ी और ज्ञान घटा, धन-सम्पत्ति बढ़ी तो उससे कई गुना ज्यादा चरित्र गिरा, भौतिक संसाधन बढ़े तो भ्रष्टाचार और ज्यादा तीव्र गति से बढ़ा।

1435. फारवर्ड-बैकवर्ड की पहचान की पहली शर्त होनी चाहिए शराफत और दूसरी संसाधन। फारवर्ड की पहचान में शिक्षा की जगह ज्ञान, संसाधनों की जगह नीयत को शामिल करने की जरूरत है।

1436. शिक्षा तत्व और कला, सत्य-असत्य के बंधन से मुक्त, आचरण से मुक्त, दूसरों के विचार होते हैं। शिक्षा में न सत्य-असत्य का बंधन है, न आचरण की आवश्यकता, न ज्ञान से कोई संबंध। शिक्षा दूसरों के विचार तीसरे तक पहुँचाने के माध्यम तक सीमित है।

1437. शिक्षा दूसरों के विचार, मस्तिष्कग्राह्य, विचारप्रधान, तथ्यात्मक, संक्षिप्त और स्पष्ट होती है, किन्तु शिक्षा देने वाले की कथनी-करनी में एकरुपता आवश्यक नहीं है।

1438. हर बुद्धिजीवी समाज के समक्ष यह सिद्ध करता है कि शिक्षा का चरित्र-निर्माण पर प्रभाव पड़ता है, किन्तु यह बात गलत है। शिक्षा को योग्यता और कार्यक्षमता विस्तार के माध्यम तक सीमित होना चाहिए था, किन्तु भारत में शिक्षा योग्यता की जगह रोजगार के अवसर का माध्यम बन गयी है।

1439. सम्पूर्ण समाज में स्वार्थ, हिंसा तथा अनैतिकता का विस्तार हो रहा है। शिक्षा व्यक्ति की क्षमता का विकास करती है, नैतिकता मात्र

का नहीं। शिक्षा का चरित्र-निर्माण से कोई संबंध नहीं। ज्यों-ज्यों भारत में शिक्षा का तेज गति से विस्तार हो रहा है, उतनी ही तेज गति से स्वार्थ, हिंसा तथा अनैतिकता भी बढ़ रही है। चरित्र गिरे और शिक्षा बढ़े, तब समाज में अपराध बढ़ते हैं, किंतु चरित्र सुधरे और शिक्षा बढ़े, तब अपराध घटते हैं।

1440. आज की शिक्षा ने हमारा नैतिक पतन कराया है। वर्तमान शिक्षा मात्र भौतिकवादी कर दी गई है। आज व्यक्ति का कोई विश्वास या मूल्य नहीं रह गया है।

144 शिक्षा व्यवस्था

1441. संसाधन के अभाव में पढ़ने वाले बच्चे अगर मजबूत इच्छाशक्ति वाले हुए तो ही वो कमाल कर पाते हैं, वरना वो ऐसे रास्ते चुन लेते हैं, जो उनकी जरूरतों को पूरा कर सके।

1442. शिक्षा से सरकार का संबंध पूरी तरह समाप्त करके शिक्षा को समाज का विषय बनाया जाना चाहिए। शिक्षा पर सरकार न कोई खर्च करे, न नीति बनाये। श्रम और बुद्धि को स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए। शिक्षा के माध्यम से श्रमजीवियों का बुद्धिजीवियों में अधिक रूपान्तरण असंतुलन और समस्या को बढ़ायेगा।

1443. शिक्षा प्रगति का माध्यम है, किन्तु कुछ लोगों की प्रगति कुछ अन्य भूखे, बेरोजगारों की कीमत पर उचित नहीं हो सकती। गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, कृषि उत्पादन तथा उनके उपभोग की वस्तुओं पर भारी कर लगाकर शिक्षा पर खर्च करना उचित नहीं है। बुद्धिजीवियों ने पूरे भारत में यह बात प्रचारित कर दी कि शिक्षा का विस्तार विकास का उचित माध्यम है। शिक्षा ने रोजगार के अवसर पैदा न करके रोजगार में छीना-झपटी की। शिक्षा ने अशिक्षितों का रोजगार छीना।

1444. शिक्षा रोजगार का सृजन नहीं कर सकती, केवल उलटफेर कर सकती है। रोजगार का सृजन तो शारीरिक श्रम ही कर सकता है। यदि प्रारम्भ में ही शिक्षा की जगह श्रम को रोजगार का आधार बनाया जाता, तो आज भारत में शिक्षा का स्तर कई गुना अधिक होता। किन्तु बुद्धिजीवियों के षड्यंत्र ने ऐसा नहीं होने दिया। आज भी यदि शिक्षा का खर्च शिक्षा प्राप्त करने वालों पर डालकर वह सारा धन ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना में डाल दें, तो शिक्षा का स्तर स्वयमेव ऊंचा हो सकता है और सामान्य जीवन स्तर भी सुधर सकता है।

1445. शिक्षा का अपना महत्व है, किन्तु शिक्षा विस्तार के लिए अशिक्षितों पर टैक्स लगाना अमानवीय भी है और अत्याचार भी। सरकार शिक्षा पर करोड़ों खर्च करे या अरबों यह प्रश्न नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या शिक्षा पर बजट बढ़े और श्रमजीवियों के श्रम पर टैक्स लगे। मेरी आपत्ति शिक्षा पर नहीं है। मेरी आपत्ति शिक्षा पर बजट बढ़ाने और रोटी कपड़ा, मकान, दवा जैसी चीजों से कर वसूलने पर है।

1446. सशक्त बुद्धिजीवियों ने सरकार पर दबाव डालकर शिक्षा का बजट बढ़वाया। यहां तक कि बुद्धिजीवियों ने गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी एवं उत्पादकों की भी कोई परवाह नहीं की और उनके उत्पादन, उपभोग की वस्तुओं पर भारी कर लगाकर अपना वेतन, सुविधा, शिक्षा का बजट बढ़वाते रहे। निरंतर हो रही किसान आत्महत्या तथा उपभोक्ता वस्तुओं का लगातार सस्ता होना, यह प्रमाणित करता है कि बुद्धिजीवियों का षड्यंत्र सफल हो रहा है।

1447. शिक्षा किसी भी रूप में रोजगार का सृजन नहीं करती। वह तो

रोजगार का रूपांतरण मात्र कर सकती है। शिक्षा श्रम शोषण का माध्यम बन गई है। बुद्धिजीवियों ने आर्थिक व्यवस्था पर पूरा नियंत्रण कर लिया है।

1448. प्रश्न उठता है कि शिक्षा, शोषण और अत्याचार का हथियार है या चरित्र निर्माण का साधन। भारत में स्वतंत्रता के बाद लगातार तेजी से शिक्षा का भी विस्तार हुआ तथा भ्रष्टाचार, चरित्रपतन, साम्प्रदायिकता, हिंसा आदि का भी उतनी ही तेजी से विस्तार होता गया। मैं नहीं कह सकता कि इन दोनों का क्या संबंध है, किन्तु इतना अवश्य है कि ज्ञान लगातार घट रहा है और शिक्षा बढ़ रही है।

1449. शिक्षा समाज का विषय है, राज्य का नहीं। जो राज्य सुरक्षा और न्याय नहीं दे पा रहा है, वह यदि शिक्षा के प्रति इतना संवेदनशील है, तो उसकी नीयत खराब है। शिक्षित बेरोजगारी शब्द भी बुद्धिजीवियों का षड्यंत्र मात्र है। बुद्धिजीवियों ने श्रम का शोषण करने के उद्देश्य से शिक्षित बेरोजगारी नामक एक नया शब्द बनाकर नया वर्ग पैदा कर लिया। अब उन्हें शिक्षित बेरोजगारी के नाम पर श्रम-शोषण का वैधानिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त हो गया है।

145 ज्ञान और त्याग

1450. पुराने समय में ''ज्ञान और त्याग'' को सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। कालान्तर में धन और पद भी इस प्रतिस्पर्धा में शामिल हो गए। धूर्तता और गुण्डागर्दी के सम्मिलित हो जाने के बाद सर्वोच्च सम्मान की प्रतिस्पर्धा से ''ज्ञान और त्याग'' तो बाहर हो चुके हैं, धन और पद भी पिछड़ते जा रहे हैं। धूर्तता और गुंडागर्दी निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं।

150 व्यवस्था क्या है?

1500. समाज विरोधी तत्वों पर समाज के नियंत्रण तथा समाज के सुचारू रूप से संचालन हेतु बनाई गई प्रक्रिया को व्यवस्था कहते हैं। किसी अच्छी से अच्छी व्यवस्था से भी अपनी व्यवस्था अच्छी होती है। यदि व्यवस्था करने वाले की नीयत संदेहास्पद हो, तो ऐसी व्यवस्था को एक क्षण भी स्वीकार करना हमारी गुलामी का प्रतीक है।

1501. किसी कार्य के परिणाम से प्रभावित व्यक्ति और कर्त्ता के बीच दूरी जितनी अधिक होगी, कार्य की गुणवत्ता उतनी ही घटती जाएगी। इस दूरी को न्यूनतम करना और प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता ही लोक स्वराज्य है।

1502. किसी इकाई के अपने अधिकार किसी अन्य इकाई को प्रयोग के लिए इस तरह दिए जाते हैं कि उक्त अधिकार के सम्बन्ध में मूल इकाई के नियंत्रण का अधिकार शून्य हो जाए, तो उक्त अधिकार (Right) नई इकाई की शक्ति (Power) बन जाता है और इस प्रक्रिया को केन्द्रीयकरण कहते हैं। ऐसी शक्ति जब उक्त इकाई द्वारा मूल इकाई को छोड़कर किसी अन्य नीचे की इकाई को प्रयोग के लिए दी जाती है, तो उसे सत्ता का विकेन्द्रीकरण कहते हैं, किन्तु यदि उक्त शक्ति पुनः उसी मूल इकाई को वापस कर दी जाती है, तो उसे अधिकार का विकेन्द्रीकरण या अकेन्द्रीकरण कहते हैं।

1503. स्वयं विकसित, दीर्घकालिक नियम पालन से प्रतिबद्ध व्यक्तियों के समूह को सामाजिक कहते हैं। समाज के नियमों के विपरीत आचरण करने वाले व्यक्ति को समाज विरोधी कहते हैं।

1504. व्यवस्था चार प्रकार की होती है—1. सुव्यवस्था, 2. कुव्यवस्था,

3. अव्यवस्था, 4. स्वव्यवस्था। स्वव्यवस्था सबसे अच्छी मानी जाती है और कुव्यवस्था सबसे खराब। कुव्यवस्था से अव्यवस्था, अव्यवस्था से सुव्यवस्था और सुव्यवस्था से स्वव्यवस्था अच्छी होती है।

1505. व्यवस्थाएं तीन तरह की होती हैं—1. परिवार की, 2. राष्ट्र की और 3. समाज की। चाहे व्यवस्था व्यक्तिगत हो, पारिवारिक हो अथवा सामाजिक, व्यवस्था प्रमुख को हमेशा भावना और बुद्धि के बीच समन्वय करने वाला होना चाहिए।

1506. कोई भी व्यवस्था चार इकाईयों के तालमेल से चलती है—1. व्यक्ति, 2. परिवार, 3. समाज और 4. राज्य। व्यवस्था पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक होती है। तीनों व्यवस्थाएं अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे की पूरक होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति किसी व्यवस्था से संचालित होता है और व्यवस्था व्यक्ति समूह से, जिस समूह में वह स्वयं शामिल होता है।

1507. व्यवस्था व्यक्ति समूह अर्थात् समाज के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होती है और व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति बाध्य होता है। व्यक्ति और व्यक्ति समूह के बीच अंतर करना आवश्यक है।

1508. व्यवस्था से चरित्र बनता है, चरित्र से व्यवस्था नहीं। जो लोग व्यवस्था में चरित्र को महत्वपूर्ण मानते हैं, वे गलत हैं। क्योंकि व्यवस्था व्यक्ति से नहीं, व्यवस्था से व्यक्ति संचालित होता है। क्या करना चाहिए इसका निर्णय व्यक्ति के चरित्र पर निर्भर करता है। न करने योग्य कार्य करने से रोकने का काम व्यवस्था का है। चरित्र व्यक्तिगत होता है और व्यवस्था सामूहिक होती है।

1509. व्यवस्था चार के संतुलन से चलती है—(1) सामाजिक, (2)

संवैधानिक, (3) आर्थिक, (4) धार्मिक। यदि संतुलन न हो तो अव्यवस्था निश्चित है। वर्तमान समय में संवैधानिक व्यवस्था ने अन्य दो को गुलाम बना कर अव्यवस्था पैदा कर दी है।

151 राष्ट्र और राज्य

1510. राष्ट्र स्वयं में कोई स्वतंत्र इकाई नहीं बल्कि समाज का एक अंग होता है। राष्ट्र भौगोलिक सीमाओं से घिरे भू-भाग की व्यवस्था है, जबकि समाज की ऐसी कोई सीमा नहीं होती। समाज व्यवस्था के टूट जाने से समाज की गलत परिभाषा बन गई और राष्ट्र समाज से बड़ा बन बैठा है। व्यवस्था में राष्ट्रीयता सहायक है और राष्ट्रवाद बाधक। राष्ट्रवाद विश्व व्यवस्था बनने में भी बाधक है। राष्ट्रवाद, न्याय और अपनत्व, हिंसा और अहिंसा, राष्ट्र और विश्व के बीच संतुलन नहीं रख पाता है।

1511. भारत में तो राज्य ही राष्ट्र बन बैठा है। सरकारीकरण को राष्ट्रीयकरण कहा जाता है, जबकि राष्ट्र, समाज का भाग है और राज्य, समाज का सहायक। राज्य की एक सरकार होती है, जबकि राष्ट्र की एक व्यवस्था।

152 वैश्विक संदर्भ

1520. वर्तमान विश्व में लोकतांत्रिक देशों में आंशिक रूप से स्वव्यवस्था है। वर्तमान भारत में आंशिक सुव्यवस्था है। मनमोहन सिंह के समय अव्यवस्था थी, चीन में पूरी तरह सुव्यवस्था है। मुस्लिम देशों में कहीं भी स्वव्यवस्था नहीं है। कहीं अव्यवस्था है, तो कहीं सुव्यवस्था और कहीं कुव्यवस्था। उत्तरी कोरिया में कुव्यवस्था है।

1521. किसी सफल व्यवस्था की पहचान जिस शब्द के साथ हो जाती है, उसकी नकल करके अर्थ बदलने का प्रयास होता है। धर्म के

साथ भी यही हुआ और समाज शब्द के साथ भी। दुनिया में अनेक परिभाषाएं बदली गयी हैं और ऐसे बदली हुई परिभाषाएं पूरी दुनिया में भ्रम पैदा करती हैं।

153 संवैधानिक व्यवस्था

1530. संवैधानिक व्यवस्था का कार्य तो तब प्रारम्भ होता है, जब पारिवारिक, सामाजिक व्यवस्था न्याय न दे सके। प्राकृतिक और स्वाभाविक व्यवस्था में अनावश्यक छेड़छाड़ और हस्तक्षेप करना लाभदायक नहीं होता।

1531. यदि कोई सरकार अनावश्यक टैक्स वसूल करती है, तो विश्व व्यवस्था उसे इसलिए रोक सकती है, क्योंकि व्यक्ति विश्व व्यवस्था का सदस्य है, राष्ट्र का नहीं। राष्ट्र के लिए तो व्यक्ति सिर्फ नागरिक मात्र होता है।

1532. लोकतंत्र में व्यक्ति व्यवस्था के अनुसार कार्य करता है। व्यक्ति चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, व्यवस्था नहीं बनाता। व्यवस्था तो लोक बनाता है, जिसके अनुसार व्यक्ति संचालित होता है। व्यक्ति किसी भी स्थिति में संचालक नहीं हो सकता।

154 शासन, शासन व्यवस्था

1540. व्यवस्था के तीन तरीके माने गये हैं—1. तानाशाही, 2. लोकतंत्र, 3. लोक स्वराज्य। तानाशाही व्यवस्था में सत्ता तथा अधिकारों का केन्द्रीकरण, लोकतंत्र में सत्ता का विकेन्द्रीकरण और लोक स्वराज्य प्रणाली में अधिकारों का विकेन्द्रीकरण होता है, जिसे हम सत्ता का अकेन्द्रीकरण भी कह सकते हैं।

1541. अव्यवस्था में आम नागरिकों के चरित्र में गिरावट निश्चित है। शेष तीन में आम नागरिकों का चरित्र पतन नहीं होता। यह अलग बात

है कि तानाशाही में गुलामी होती है और लोकतंत्र में स्वतंत्रता या स्वच्छंदता।

1542. यदि कोई शासन व्यवस्था अपराध नियंत्रण में अक्षम हो, तो पहले उसे उचित मार्गदर्शन देना चाहिए। यदि उससे कोई अच्छा परिणाम न निकले, तो दूसरे कदम के रूप में सत्ता परिवर्तन का मार्ग पकड़ना चाहिए। यदि सत्ता परिवर्तन के बाद भी स्थिति ठीक न हो, तो समाज को चाहिए कि वह राजनैतिक आपातकाल घोषित करके सम्पूर्ण शासन व्यवस्था अपने हाथ में लेकर तब तक रखनी चाहिए जब तक नई राजनैतिक व्यवस्था न बने।

1543. यदि शासन अधिकतम निजीकरण कर दे तथा स्वयं को न्याय और सुरक्षा तक सीमित कर ले, तो भ्रष्टाचार रोकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, बल्कि वह अपने आप लगभग नियंत्रित हो जाएगा।

1544. जो व्यक्ति हमारे गाल पर थप्पड़ मारता है, उसे बदले में थप्पड़ मारने का हमें कोई औचित्य नहीं है, बल्कि उसे दण्ड देने का दायित्व शासन का है।

1545. सुशासन और स्वशासन में बहुत फर्क होता है। स्वशासन आदर्श लोकतंत्र है, सुशासन विकृत लोकतंत्र होता है। सुशासन लोकतंत्र में भी सम्भव है और तानाशाही में भी। स्वशासन लोकस्वराज्य की दिशा में एक कदम है, जबकि सुशासन तानाशाही की दिशा में अधिक जाता है। सुशासन स्वशासन का परिणाम होता है, कारण नहीं।

1546. शासन दो प्रकार के होते हैं—1. तानाशाही, 2. लोकतंत्र। तानाशाही में शासक जनता की दया पर निर्भर नहीं होता, इसलिए उसे वर्ग-निर्माण की जरुरत नहीं पड़ती। तानाशाही में वर्ग-संघर्ष होता ही नहीं है।

1547. शासक यदि चालाक नहीं हो, तो वह न तो कभी अनुशासन कायम कर सकता है, न ही वह सफलता की ओर बढ़ सकता है। शासक को सफल कूटनीतिज्ञ अवश्य होना चाहिए।

1548. स्वतंत्रता, अनुशासन और शासन का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है। स्वतंत्रता व्यक्ति की व्यक्तिगत होती है, किसी अन्य से जुड़ते ही वह अनुशासन में बंध जाती है। स्वतंत्रता शासन व्यवस्था से नियंत्रित होती है।

1549. शासन व्यवस्था व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों का उल्लंघन करने लगे या ऐसे उल्लंघन के लिए संविधान संशोधन या कानून बनाने लगे, तब न्यायपालिका अपने विशेष अधिकार से ऐसे संशोधन या कानून को संविधान के मौलिक स्वरूप का उल्लंघन मानकर संविधान विरोधी घोषित कर सकती है।

1550. व्यक्ति पर अनुशासन स्थापित करने का दायित्व परिवार और समाज का होता है और शासन का दायित्व सरकार का। जो व्यक्ति न स्वशासन को माने, न अनुशासन को माने, उस व्यक्ति को नियंत्रित करने के लिए जिस इकाई को दायित्व दिया जाता है, उसे शासन या सरकार कहते हैं।

1551. सत्ता या शासन का दायित्व तो सुरक्षा और न्याय तक सीमित होता है, अन्य सभी कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तव्य होते हैं।

1552. भारत की राजव्यवस्था को भी न्यूनतम बल प्रयोग द्वारा गलत दिशा दिया गया। उसका परिणाम हुआ कि भारत की शासन व्यवस्था न्याय और सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने के स्थान पर जन कल्याण के कार्यों को उच्च प्राथमिकता देने लगी।

156 वैश्विक व्यवस्था

1560. पूरी दुनिया में चार प्रकार की शासन व्यवस्थाएं पाई जाती हैं। पश्चिम का लोकतंत्र, जिसमें व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है तथा राज्य, धर्म या समाज गौण। साम्यवाद, जिसमें राज्य सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न होता है तथा व्यक्ति, धर्म, समाज गौण। इस्लाम का धर्म तंत्र जिसमें धर्म सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है तथा व्यक्ति, राज्य, समाज गौण। वैदिक काल की समाज व्यवस्था, जिसमें समाज सर्वशक्तिमान था तथा राज्य, व्यक्ति धर्म गौण।

1561. दुनिया के शासन तंत्र की तीन ही प्रणालियां पिछले सौ वर्षों से काम करती रहीं- 1. लोकतंत्र, 2. साम्यवाद, 3. इस्लामिक व्यवस्था। चौथी व्यवस्था लोक स्वराज्य के रूप में अभी तैयारी काल तक सीमित है। न तो अब तक इसका कहीं परीक्षण हुआ, न ही स्थापना।

1562. पश्चिम के देशों में संविधान का शासन है, किन्तु संविधान निर्माण या संशोधन में लोक और तंत्र की मिली-जुली भूमिका होती है। भारत में संविधान निर्माण या संशोधन में जनता की कोई भूमिका नहीं होती।

1563. ट्यूनीशिया और मिश्र के परिवर्तन को साफ तौर पर जनक्रांति कहने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। इन दोनों देशों में न कोई पूर्व तैयारी थी, न कोई नेतृत्व था और न ही कोई मुद्दे थे। सब कुछ पूरी तरह शान्त था, किन्तु एकाएक इतनी तेज गति से परिवर्तन हुआ कि इन्हें न सोचने-समझने का मौका मिला, न सम्हलने का।

1564. विश्व में चार प्रकार की व्यवस्थाएं हैं—1. राज्य नियंत्रित, 2. राज्य विहीन, 3. राज्य रक्षित, 4. राज्य मुक्त। राज्य विहीन व्यवस्था की तुलना में राज्य मुक्त व्यवस्था अच्छी होती है।

1565. अब तक पूरी दुनिया में दो ही प्रकार की शासन व्यवस्थाएं प्रचलित हैं—1. तानाशाही, 2. लोकतंत्र। दोनों के अलग-अलग गुण-दोष है। भारत में यह बात तो आम नागरिक महसूस करता है कि लोकतंत्र भारत में तो समाधान न होकर समस्या ही बना हुआ है। तानाशाही में शासक का संविधान होता है और लोकतंत्र में संविधान का शासन। तानाशाही में गुलामी होती है और लोकतंत्र में स्वतंत्रता। तानाशाही में उच्छृंखलता शून्य होती है और लोकतंत्र में उच्छृंखलता के खतरे बने रहते हैं। तानाशाही में व्यक्ति को कोई मौलिक अधिकार नहीं होता।

1566. अब तक दुनिया में दो प्रकार की शासन व्यवस्था अस्तित्व में हैं— 1- तानाशाही, 2- लोकतंत्र। तानाशाही शासन व्यवस्था में या तो सुव्यवस्था होती है या कुव्यवस्था। किन्तु तानाशाही में अव्यवस्था या स्वव्यवस्था नहीं होती। लोकतंत्र में न तो कुव्यवस्था सम्भव है न ही सुव्यवस्था। लोकतंत्र में या तो अव्यवस्था होगी या स्वव्यवस्था। अव्यवस्था सबसे खराब व्यवस्था मानी जाती है और स्वव्यवस्था सबसे अच्छी। स्व-व्यवस्था को ही लोकस्वराज्य या आदर्श लोकतंत्र कहते हैं।

157 शासन और समाज

1570. अहिंसा समाज में चलनी चाहिए व्यवस्था में नहीं। शासन को न्याय और सुरक्षा के लिए आवश्यकतानुसार बल प्रयोग करने की छूट होनी चाहिए, किन्तु ऐसी हिंसा व्यवस्था के दायरे के बाहर न हो।

1571. शासक और शासित के बीच संबंधों की व्याख्या होनी चाहिए। आज स्थिति यह है कि शासक अपने अधिकारों की भी सीमा

स्वयं तय कर रहा है और समाज के अधिकारों तथा कर्तव्यों की भी।

1572. भारत की शासन व्यवस्था में जो भी लोग बैठे, उनमें प्रारम्भिक काल में बैठने वाले अधिकांश लोग चालाक न होते हुए भी समाज व्यवस्था से डरते थे।

1573. सब जानते हैं कि चोरी, डकैती, लूट, बलात्कार, मिलावट, कमतौल, जालसाजी, धोखाधड़ी, हिंसा, आतंकवाद आदि आपराधिक और वास्तविक समस्याएं हैं और छुआछूत, बालविवाह, हेरोइन, गांजा, बालश्रम, वैश्यावृति, जमाखोरी, जातिवाद, असमानता आदि सामाजिक समस्याएं हैं।

1574. वर्तमान शासन व्यवस्था की शक्ति कई गुना अधिक होते हुए भी इसलिए कमजोर है क्योंकि समाज के सभी अच्छे लोग आपस में ही कुछ गुटों में बंटकर एक-दूसरे के खिलाफ लड़ते-भिड़ते रहते हैं।

1575. भारत में शासन व्यवस्था कृषि उत्पाद की मूल्य वृद्धि को रोकती है। सरकार कृषि उत्पादनों पर भारी कर लगाकर जो धन लेती है, उससे टैक्स का चक्र बदल जाता है। शासन कृषि उपज पर से टैक्स हटाकर उतना कर डीजल, बिजली आदि पर डाल दे। इससे न शासन को हानि होगी, न किसान को और न ही उपभोक्ता को। बिजली, डीजल के स्थान पर श्रमिकों को काम मिल जायेगा।

158 शासन के कार्य

1580. शासन को अपनी नीतियां बदलकर सुरक्षा और न्याय को सर्वोच्च प्राथमिकता हेतु मजबूर किया जाना चाहिए।

1581. समाज में शासक और शासित के अलग-अलग वर्ग सदा रहे हैं, चाहे वह तानाशाही हो या लोकतंत्र। तानाशाही में यह व्यवस्था शासन की शक्ति से चलती है और लोकतंत्र में बुद्धि कौशल से।

1582. शासन से जुड़े लोग दो विरोधी समूहों में बंटकर व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा को आधार बना लेते हैं, तब वे आपस में टकराने का नाटक करके सारा लाभ प्राप्त करते हैं।

1583. बहुत कम लोग ऐसे होते हैं जो न ईश्वर का डर मानते हैं, न ही समाज का। ऐसे लोग यदि अपराध करना शुरू कर दें, तो उन पर शासन के माध्यम से ही नियंत्रण होता है, क्योंकि वे स्वशासन और अनुशासन को पार कर चुके हैं। ऐसे लोगों को दण्ड देने हेतु ही सरकार होती है।

1584. सरकार का काम न स्वशासन को बढ़ाना है न अनुशासन को। उसका तो सीधा-सीधा काम है शासन। शासन का काम प्रतीकात्मक भय बनाना होता है, न कि वास्तविक दण्ड देना।

1585. आन्तरिक सुरक्षा, बाह्य सुरक्षा, विदेश, न्याय और वित्त विभाग को छोड़कर अन्य किसी भी मामले में शासकीय हस्तक्षेप और दायित्व शून्यवत् होना चाहिए जिससे कि इन पांच को छोड़कर अन्य सारे दायित्व परिवार, ग्रामसभा से राष्ट्रसभा तक की अन्य इकाइयां स्वतंत्र रूप से देख सकें।

1586. अपराध नियंत्रण के दायित्व के अतिरिक्त अन्य कार्यों की समीक्षा करके परिस्थिति अनुसार शासन ऐसे कर्तव्यों से मुक्त हो जाये। शिक्षा, चिकित्सा, आवागमन, वस्तु क्रय-विक्रय आदि अधिकांश कार्य शासकीय हस्तक्षेप के बिना स्थानीय स्तर पर होना भी सम्भव है। इससे 90 प्रतिशत तक विभागों की समाप्ति सम्भव है। इसी हिसाब से भ्रष्टाचार भी समाप्त होता जायेगा।

1587. वर्तमान समय में भारत की पुलिस और न्यायालय कुल आबादी के डेढ़ प्रतिशत भाग पर ही अपराध नियंत्रण की क्षमता रखते

हैं। दूसरी ओर कानूनों की अधिकता 99 प्रतिशत तक लोगों को अपराधी घोषित करती है। पुलिस और न्यायालय की क्षमता बढ़ाकर तथा कानूनों की संख्या घटाकर ही यह असंतुलन दूर करना सम्भव है।

1588. शासक पक्ष ने सम्पूर्ण समाज को शासित मानकर सभी समस्याओं के समाधान के लिए स्वयं को एकपक्षीय भाग्य विधाता घोषित कर दिया है।

1589. हमारा एक ही लक्ष्य होना चाहिए "शराफत की सुरक्षा" और उसका एक ही मार्ग है समाज सशक्तिकरण तथा राज्य कमजोरीकरण अर्थात् न्यूनतम शासन प्रणाली।

159 शासन प्रणाली

1590. भारत में कार्यपालिका और विधायिका को बिल्कुल अलग-अलग कर देना चाहिए। हमारी राय में राष्ट्रपतीय प्रणाली का स्वरूप भी आंशिक रूप से ऐसा हो सकता है।

1591. आदर्श स्थिति तो यह होती कि संसद के अधिकार और हस्तक्षेप भी कम हो जाए तथा कार्यपालिका और विधायिका का पृथक्करण भी हो जाए। यदि ऐसा होना सम्भव न हो, तो राज्य के अधिकार, दायित्व और हस्तक्षेप ही कम से कम कर दिया जाए।

1592. भारत की प्राचीन राजतंत्र प्रणाली आदर्श नहीं है, राजतंत्र या तानाशाही की तुलना में लोकतंत्र अधिक अच्छा है, किन्तु अपर्याप्त और असफल है। लोकतंत्र की जगह लोक स्वराज्य अधिक अच्छी प्रणाली है।

1593. लोकतंत्र यदि जीवन पद्धति में न आकर शासन पद्धति में आया है, तो उसे ठीक करने का लोक स्वराज्य के अतिरिक्त अन्य कोई

तरीका ही नहीं है। दुनिया में तीन प्रकार की शासन प्रणालियां हैं, जिनमें से लोक स्वराज्य प्रणाली तो अभी कल्पना लोक में ही है, किन्तु तानाशाही या लोकतंत्र अभी कार्यरत है।

1594. यदि दलीय प्रणाली को त्यागकर निर्दलीय संसद बने, तो कुछ अच्छा हो सकता है। चाहे अध्यक्षीय प्रणाली हो अथवा निर्दलीय प्रणाली किन्तु कुछ न कुछ संसदीय प्रणाली में संशोधन या परिर्वतन होना ही चाहिए। मैं समझता हूं कि अध्यक्षीय प्रणाली अथवा निर्दलीय प्रणाली व्यवस्था परिर्वतन नहीं है। बल्कि वर्तमान व्यवस्था में थोड़ा-सा सुधार है। समाधान तो है कि केन्द्र के असीतित अधिकार और संसद का हस्तक्षेप कम करके निर्णय का अधिकार परिवार, गांव और जिले को दिया जाय।

1595. राजतंत्र या तानाशाही चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो, लोकतंत्र का विकल्प नहीं हो सकती।

1596. हिन्दुत्व की तानाशाही और धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्र में से सावरकरवादी तानाशाही का समर्थन ठीक मानते हैं या लोकतंत्र, यह बात आजतक स्पष्ट नहीं है।

1597. दुनिया के शक्ति संतुलन में पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच लम्बी प्रतिस्पर्धा चली। पूंजीवाद का नेतृत्व अमेरिका के पास था और साम्यवाद का रूस के पास। अमेरिका व्यावसायिक बुद्धि के आधार पर दुनिया भर के देशों का शोषण करता था और अपने देश के नागरिकों को सुख-सुविधा सम्पन्न बनाये रखता था जबकि रूस सैनिक बुद्धि के अंतर्गत अपने देश के लोगों का पेट काट-काटकर भी दूसरे देशों की सहायता में लगा रहता था।

1598. दुनिया भर के साम्यवादी देशों ने साम्यवाद की विफलता स्वीकार

कर ली, किन्तु दुनिया भर के साम्यवादियों ने पूरी तरह हार नहीं मानी। वे प्रजातांत्रिक तरीके से अभियान चलाते रहे। उन्होंने मुसलमानों की बन्दूक मुसलमानों के ही कन्धे पर रखकर अमेरिका के विरुद्ध चलानी शुरू कर दी और एक ऐसा समीकरण बनाया कि अमेरिका के विरुद्ध वातावरण बनाने में साम्यवादियों को काफी सफलता मिली।

160 तानाशाही

1600. तानाशाही शासन व्यवस्था में या तो सुव्यवस्था होती है या कुव्यवस्था। किन्तु तानाशाही में अव्यवस्था या स्वव्यवस्था नहीं होती। लोकतंत्र में न तो कुव्यवस्था सम्भव है न ही सुव्यवस्था। लोकतंत्र में या तो अव्यवस्था होगी या स्वव्यवस्था। अव्यवस्था सबसे खराब व्यवस्था मानी जाती है और स्वव्यवस्था सबसे अच्छी।

1601. तानाशाही से मुक्ति के लिए हिंसक बलिदान अवश्यंभावी होता है। साम्यवादी तानाशाही से रूस में गोर्बाचोव के उदाहरण को छोड़ दें, तो और कहीं भी बिना विद्रोह के तानाशाही से मुक्ति नहीं होती।

1602. राजतंत्र या तानाशाही चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न हो, लोकतंत्र का विकल्प नहीं हो सकती। अव्यवस्था के डर से राजा की तानाशाही या नक्सलवादी तानाशाही को तो स्वीकार नहीं किया जा सकता।

1603. कोई भी तानाशाह या सरकार सुधारवादी तो हो सकती है, किंतु उदारवादी नहीं होना चाहिए क्योंकि उदारवाद अव्यवस्था अधिक पैदा करता है।

161 भारत सरकार के दायित्व और कर्तव्य

1610. सरकार जितना काम सफलतापूर्वक कर सकती है, उतना ही अपने पास रखकर बाकी सब स्वयं इस तरह छोड़ दे कि अन्य सभी कार्य परिवार, गांव, जिला, प्रदेश और केन्द्र की सूची में बांट दे। केन्द्र सरकार अलग हो और केन्द्र सभा अलग। जो काम परिवार से प्रदेश तक न हो पाये, वह केन्द्र सभा को दे दें, किन्तु केन्द्र सरकार को नहीं।

1611. सरकार न उत्पादकों के लिए ज्यादा चिन्तित है, न उपभोक्ताओं के लिए। वह चिन्तित है देश में अधिक उत्पादन, सस्ता खरीद, महंगा निर्यात, अपना खजाना भरने और उस भरे खजाने को यहां-वहां लुटाने में।

1612. यदि सरकार विकास करेगी तो शासक और शासित के बीच की दूरी बढ़ेगी ही। सरकारों का काम विकास करना नहीं होता, बल्कि ऐसी परिस्थितियां पैदा करना है, जिसमें सब लोग स्वतंत्रतापूर्वक अपनी-अपनी क्षमतानुसार विकास कर सकें। सरकार किसी की ऐसी स्वतंत्रता में न बाधा पैदा कर सकती है, न किसी की सहायता। सरकार को स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में किसी की भी सहायता या विरोध नहीं करना चाहिए। इससे पक्षपात होता है।

1613. राज्य द्वारा घोषित श्रम मूल्य बाजार मूल्य से जितना अधिक होता है, उतनी ही श्रम की मांग बाजार में घट जाती है और वास्तविक श्रम मूल्य कम हो जाता है। वास्तविक श्रम मूल्य और सरकारी श्रम मूल्य का अंतर बढ़ता जाता है और यह अंतर भ्रष्टाचार बढ़ाता है।

1614. देश की राजनैतिक विषमता देश की सरकार को दूर करनी चाहिए। आर्थिक विषमता सरकार और समाज को दूर करनी चाहिए तथा

सामाजिक विषमता दूर करना सिर्फ समाज का काम है, हमारा काम है। इससे सरकार को बिल्कुल दूर रहना चाहिए।

162 ग्राम पंचायत

1620. ग्राम पंचायत शासन का प्रतिनिधित्व करती है और ग्रामसभा समाज का। ग्राम पंचायत को शासन अधिकार देता है, जबकि ग्रामसभा स्वतः अधिकार सम्पन्न है। ग्राम पंचायत पांच वर्ष बाद बदली जाती है, किन्तु ग्रामसभा शाश्वत है और कभी भंग नहीं होती।

163 शासन का प्रशासनिक हस्तक्षेप

1630. किसी भी सरकार के ऐसे उच्च आदर्शवादी अव्यावहारिक प्रयास का कभी संगठित विरोध नहीं हुआ, सिवाय आयोडिन युक्त नमक कानून को छोड़कर, जिसमें सिर्फ सर्वोदय ने विरोध की पहल की, अन्यथा अब तक सर्वोदय भी ऐसे कानूनों के विरोध में कभी नहीं आया।

1631. चाहे नमक कानून का सर्वोदय द्वारा किया गया विरोध हो या जम्मू कश्मीर का विवाह खर्च नियंत्रण कानून, विरोध सैद्धांतिक न होकर व्यावहारिक मुद्दों पर केन्द्रित था।

1632. सैद्धांतिक रूप से आदर्श स्थिति यह है कि समाज शासन रहित हो, किन्तु यह स्थिति सिर्फ आदर्श ही है, व्यावहारिक नहीं। शासन रहित समाज हो ही नहीं सकता, क्योंकि समाज स्वयं में एक अमूर्त इकाई है। साथ ही समाज कभी न अपराध रहित हुआ है, न ही होगा। अतः किसी भी परिस्थिति में अपराध नियंत्रण के लिए एक मूर्त्त व्यवस्था करनी अनिवार्य है और ऐसी मूर्त्त व्यवस्था ही शासन है।

1633. शासन के अधिकार दायित्व तथा हस्तक्षेप की कोई सीमा ही नहीं रही। समाज का सम्पूर्ण स्वरूप लगभग समाप्त होकर शासन ही समाज बन गया।

1634. शासन और उनके वित्त पोषित साहित्यकारों ने कुछ सामाजिक समस्याओं का ऐसा चित्र समाज के समक्ष प्रस्तुत किया कि समाज को भी तिल जैसी समस्या ताड़ दिखने लगी।

1635. शासन धीरे-धीरे समाज को कमजोर करता गया और अब तो यह हाल है कि शासन दैत्याकार स्वरूप ग्रहण कर चुका है और समाज उसके समक्ष एक बौना बालक।

1636. शासन में फैलता भ्रष्टाचार, स्वार्थ, भाई-भतीजावाद, अपराध वृत्ति, अनैतिकता के समक्ष इन्हें मद्यपान, बंधुआ मजदूरी, दहेज, बाल-विवाह, परिवारों में महिला असमानता, पशु अत्याचार आदि अधिक गंभीर समस्याएं दिखीं और उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के नाम पर शासकीय कानूनों का समर्थन कर दिया।

1637. भारत में भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातीय कटुता आदि में वृद्धि का एकमात्र कारण शासन का समाज के मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप है।

1638. शासकीय हस्तक्षेप कम करते-करते सिर्फ न्याय और सुरक्षा तक सीमित कर दिया जाये तो भ्रष्टाचार, जातीय टकराव और साम्प्रदायिकता में बहुत कमी सम्भव है।

1639. भारत में एक विचित्र हवा चल पड़ी है कि जो काम संस्कार बदलने के हैं, उनके लिए तो शासकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता बताई जाती है और जो काम अपराध के हैं, उनके लिए हृदय परिवर्तन की बात होती है।

1640. राजनीति, धर्म, समाज, बाजार पूरी तरह स्वतंत्र रहते हुए एक-दूसरे के पूरक होना ही आदर्श व्यवस्था है। किसी भी एक को शेष तीन की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। वर्तमान भारत में राजनीति, राज्य, सरकार, न्यायालय, मीडिया आदि ने शेष तीन की कमजोरियों का लाभ उठाकर उन्हें गुलाम बना लिया, जो घातक है। शासन, धर्म और समाज की संयुक्त व्यवस्था के अंतर्गत आते हैं।

1641. समाज को अधिकतम अहिंसक तथा राज्य को संतुलित हिंसा का उपयोग करना चाहिए। राज्य द्वारा न्यूनतम हिंसा के परिणामस्वरूप समाज में हिंसा बढ़ती है।

1642. सरकार यदि समान नागरिक संहिता लागू कर दे, तो जातीय कटुता और साम्प्रदायिकता भी अपने आप बेमौत मर जायेंगे, किन्तु इन सबके लिए आवश्यक है कि सरकार समाज के अन्दर अधिकाधिक हस्तक्षेप को छोड़कर न्यूनतम हस्तक्षेप की आदर्श नीति अपनाये।

164 नगरपालिका

1643. स्थानीय निकाय ग्राम पंचायत नगरपालिका को सिर्फ कार्यपालिक अधिकार ही प्राप्त हैं। उसे एक भी विधायी अधिकार प्राप्त नहीं। विधायी अधिकार तो सिर्फ संसद या विधान सभा तक ही सीमित है।

165 स्वतंत्रता, समानता एवं गुलामी

1650. हर बुद्धि प्रधान व्यक्ति अपने से ऊपर वाले से स्वतंत्रता चाहता है और अपने से नीचे वालों को स्वतंत्रता नहीं देना चाहता।

1651. जब प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता समान है तथा संवैधानिक अधिकार भी एक बराबर है, तब ये राजनैतिक नेता और समाज

सुधारक किस बात को बराबर करना चाहते हैं। जब व्यक्तिगत क्षमता प्राकृतिक रूप से असमान होती ही है और उसे किसी भी तरह समान नहीं किया जा सकता, तो फिर समानता के प्रयत्नों का औचित्य क्या है? प्रश्न यह भी उठता है कि समान अधिकारों वाला व्यक्ति कैसे किसी दूसरे की असमानता दूर कर सकता है।

1652. भारत में द्विस्तरीय व्यवस्था है-एक है संविधान और दूसरा है संविधान के अंतर्गत कानून बनाने वाली विधायिका। संविधान पर समाज का नियंत्रण होता है और विधायिका पर संविधान का।

1653. स्वतंत्रता और उच्छृंखलता में बहुत फर्क होता है। दोनों के बीच एक बारीक सीमा रेखा हुआ करती है, जिसका उल्लंघन अनुशासनहीनता या अपराध माना जाता है। यह सीमा रेखा न प्रकृति द्वारा निर्धारित होती है, न समाज द्वारा और न सरकार द्वारा। यह सीमा रेखा व्यक्ति समूह अपनी-अपनी इकाईयों में साथ बैठकर विचार-विमर्श द्वारा स्वयं निर्धारित करते हैं। इसका अर्थ हुआ कि पारिवारिक मामलों में परिवार, गांव संबंधी मामलों में गांव, समाज संबंधी मामलों में समाज तथा राष्ट्रीय मामलों में सरकार सीमा रेखा तय करती है। यह रेखा आपसी सहमति या सर्वानुमति से बनाई जाती है और ऐसी बनी हुई रेखा का उल्लंघन अनुशासनहीनता माना जाता है।

1654. जनतंत्र का अर्थ स्वतंत्रता है, समानता नहीं। समानता का अर्थ होता है किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित सीमा रेखा से ऊपर वालों को समान स्वतंत्रता तथा नीचे वाले को समान सुविधा।

170 अधिकार विशेषाधिकार

1700. किसी भी वर्ग को कोई भी विशेषाधिकार देना हमेशा ही घातक

होता है, क्योंकि चरित्र का अधिकांशतः व्यक्तिगत ही होता है। सामूहिक भाग बहुत कम होता है। यदि हम किसी वर्ग के चरित्र को सामूहिक मानते हैं तो दुरुपयोग होना निश्चित है क्योंकि उक्त वर्ग में शरीफ और धूर्त दोनों प्रकार के लोगों का समावेश है। जिस वर्ग विशेष को कुछ विशेष सम्मान, शक्ति या अधिकार मिल जाता है, उस वर्ग में ही व्यावसायिक, आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों का प्रवेश बढ़ जाता है तथा ऐसे व्यावसायिक आपराधिक लोगों में हितों का टकराव शुरू हो जाता है।

1701. अधिकार सम्पन्न चरित्रवान की अपेक्षा अधिकार विहीन चरित्रहीन से खतरा कम है, क्योंकि अधिकार सम्पन्न चरित्रवान की नीयत कभी भी बदल सकती है, किन्तु अधिकार विहीन चरित्रहीन हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अगर संसद के अधिकार, हस्तक्षेप और दायित्व न्यूनतम हो जाये, तो चरित्रहीनों का राजनीति से आकर्षण घटेगा और चरित्रवानों का प्रवेश सम्भव हो सकता है।

180 क्रिया-प्रतिक्रिया

1800. कोई कार्य सोच-समझकर योजनापूर्वक किया जाता है, उसे क्रिया कहते हैं। यदि उक्त क्रिया से प्रभावित कोई व्यक्ति कुछ करे, उसे प्रतिक्रिया कहते हैं। क्रिया प्रारम्भ होती है और प्रतिक्रिया उत्तर। प्रतिक्रिया अल्पकालिक तथा तात्कालिक होती है। यदि कोई प्रतिक्रिया बहुत समय बाद सोच-समझकर योजनापूर्वक की जाए, तो वह क्रिया में बदल जाती है। प्रतिक्रिया भावनात्मक होती है, जो बहुत तेजी से बढ़ती भी है और समाप्त भी होती है।

1801. बाबरी मस्जिद गिराना गलत था, किन्तु हुआ। बाबरी मस्जिद गिराने की अपेक्षा जो उसका न्यायिक निपटारा हुआ यही मार्ग

ठीक था। गोधरा में मुसलमानों ने जो ट्रेन जलाई वह एक क्रिया थी, प्रतिक्रिया नहीं। ट्रेन की घटना के बाद जो दंगे हुए वह प्रतिक्रिया थी। गोधरा के समय नरेन्द्र मोदी की भूमिका बहुत ठीक थी। मुसलमानों की मूर्खता ने मोदी को अपनी दृढ़ता प्रमाणित करने का अवसर दिया, जिसका लाभ उठाकर मोदी भारत के प्रधानमंत्री पद तक पहुँच गए।

1802. गोधरा ट्रेन जलाने की घटना को वामपंथी, कांग्रेसी तथा लालू प्रसाद ने मिलकर दूसरी दिशा देने का भरपूर प्रयास किया। कुछ गांधीवादियों ने भी इनका साथ दिया किन्तु इन सबके सारे षड्यंत्र असफल हुए।

190 समीक्षात्मक

1900. अब तो संपूर्ण समाज व्यवस्था को नया स्वरूप देना होगा। जबकि सच्चाई इन सबसे कोसों दूर है। न तो पुरानी बातें आंख मूंदकर अनुकरण करने योग्य हैं, न ही आंख मूँदकर छोड़ देने योग्य।

1901. दुनिया में हिन्दू एकमात्र ऐसा जीव है जो नुकसान उठा सकता है, कर नहीं सकता, अत्याचार सह सकता है, कर नहीं सकता, गुलामी सह सकता है, गुलाम बना नहीं सकता, घृणा कर सकता है, पर आक्रमण नहीं। नुकसान उठाना, अत्याचार सहना, गुलामी सहना कायरता है और नुकसान करना, अत्याचार करना ,गुलाम बनाना अमानवीय अत्याचार। मुसलमानों और इसाईयों को हिन्दू सहृदयता पर गंभीरता से विचार करना चाहिए।

1902. हिन्दू संस्कृति आदर्शवादी, पाश्चात्य यथार्थवादी, इस्लामिक विस्तारवादी तथा वर्तमान भारतीय संस्कृति स्वार्थवादी मानी जा रही है। वर्तमान भारतीय संस्कृति में मजबूतों से डरना और

कमजोरों का शोषण करना तथा कम से कम मेहनत, करके अधिक से अधिक लाभ की कोशिश करना व्यवहारिकता मानी जा रही है।

1903. समाज सर्वोच्च है। राष्ट्र उसका एक अंग, राज्य सहायक, धर्म मार्गदर्शक है। राष्ट्र, राज्य और धर्म द्वारा समाज को कमजोर करना घातक है।

1904. जब नेहरू और अम्बेडकर ने मिलकर धीरे-धीरे सर्वशक्तिमान संसद और शक्तिविहीन समाज के बीच ध्रुवीकरण करना शुरू किया, तो राजनीति धीरे-धीरे व्यवसाय बनती चली गई। राजनीति के व्यवसायीकरण से सिर्फ संघ परिवार ही अन्त तक लड़ता रहा। गांधीवादी तो इससे निर्लिप्त थे ही, वे इस राजनीति के व्यवसायीकरण को रोकना चाहते हुए भी असहाय थे क्योंकि उनकी जड़ों में बैठे साम्यवादी दिन-रात उन्हें संघ विरोध से आगे जाने से रोकते रहते थे। किन्तु संघ परिवार की एक बड़ी समस्या थी कि वे पूरी तरह सर्वशक्तिमान संसद और शक्तिविहीन समाज के पक्षधर रहे, यहां तक कि कांग्रेस से भी ज्यादा।

1905. धार्मिक कट्टरवाद इस्लामिक संस्कृति है। ऐसे लोग हमेशा घातक होते हैं, चाहे वे दाढ़ी वाले हों या चोटी वाले।

1906. गायत्री परिवार कोई संगठन न होकर एक सामाजिक, धार्मिक संस्था है, जो समाज सुधार और चरित्र निर्माण का कार्य पूरी ईमानदारी से करता है। आर्यसमाज भी ऐसा ही करता है, किन्तु आर्यसमाज तथा गायत्री परिवार में कुछ भिन्नता है। आर्यसमाज चरित्र निर्माण के साथ-साथ व्यवस्था परिवर्तन पर भी जोर देता है, जो एक सांगठनिक कार्य है। गायत्री परिवार सिर्फ व्यक्ति निर्माण का कार्य करता है। गायत्री परिवार के प्रमुख श्री प्रणव पांड्या ने

राज्यसभा की सदस्यता के प्रस्ताव को यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि राज्यसभा का वैचारिक वातावरण हम जैसे लोगों के लिए उपयुक्त नहीं है।

191 कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष

1910 यह महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकला कि सम्पूर्ण भारत में ग्यारह समस्याएं लगातार बढ़ रही हैं—1.चोरी, डकैती और लूट, 2. बलात्कार, 3. मिलावट, कमतौल, 4. जालसाजी, धोखाधड़ी, 5. आतंकवाद, गुण्डागर्दी, दादागिरी, 6. भ्रष्टाचार, 7. चरित्र-पतन, 8. साम्प्रदायिकता, 9. जातिवाद, 10. आर्थिक असमानता और 11. श्रम शोषण। स्वतंत्रता के बाद इन ग्यारह समस्याओं में लगातार वृद्धि हुई है।

1911. आम लोगों का स्वामी दयानन्द और महात्मा गांधी की अहिंसा की सफलता पर से विश्वास उठ गया है और सफलता का सर्वश्रेष्ठ आधार हिंसा और बल प्रयोग को माना जा रहा है।

1912. बीमारी शरीर के किसी अंग की नहीं, बल्कि खून की सफाई से ही ठीक हो सकेगी। हमें शराफत को समझदारी में बदलने की बहुत आवश्यकता है। वर्त्तमान समय में अलग-अलग समस्याओं के समाधान खोजे जा रहे हैं, जो असम्भव है।

1913. लोक स्वराज्य का अर्थ है कि शासन, सुरक्षा और न्याय के अतिरिक्त सारे दायित्व स्थानीय इकाइयों पर छोड़ दे।

1914. सुरक्षा और न्याय के अतिरिक्त शासन से किसी तरह की माँग करना सामाजिक आत्महत्या के समान घातक है।

1915. शून्य को एक करना एक को पांच करने से अधिक कठिन होता है।

1916. राजनीति और राजनीतिज्ञ यदि समाज के सामाजिक मामलों के

समाधान में कानूनी हस्तक्षेप न करके यह मामले समाज पर छोड़ दे, तो अनेक समस्याएं कम भी हो सकती हैं और सुलझ भी सकती हैं।

1917. समाज की सामाजिक समस्याओं के समाधान में कानूनी हस्तक्षेप बाधक है।

1918. जब तक शासन और समाज के बीच की दूरी कम नहीं होगी, तब तक परिणाम विपरीत ही होंगे। जब तक श्रम और बुद्धि के बीच की दूरी कम नहीं होगी, तब तक असंतोष बढ़ता ही जायेगा।

❐

2

संवैधानिक

200 संविधान

2000. संविधान के प्रामाणिकता की कसौटी इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितना संतुलित है, अर्थात् संविधान न इतना कठोर हो कि शासन को व्यवस्था करने में ही कठिनाई हो तथा न इतना लचीला हो कि शासन ही उच्छृंखल हो जाये। शासन कमजोर होगा, तो अव्यवस्था हो जायेगी और उच्छृंखल होगा तो कुव्यवस्था। संविधान इतना संतुलित होना चाहिए कि समाज विरोधी तत्वों पर पूरी तरह नियंत्रण हो, किन्तु समाज की स्वतंत्रता में कोई बाधा उत्पन्न न हो।

2001. किसी भी संविधान की सफलता की एकमात्र कसौटी शासन द्वारा व्यक्ति के मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारण्टी होती है। यदि चरित्र-पतन होता है, तो वह संविधान की विफलता मानी जाएगी। चरित्र-पतन के दो कारण हो सकते हैं—समाज पर कठोर नियंत्रण, जिससे सत्ताधीशों का चरित्र गिर जाये अथवा नियंत्रण का अभाव,

जिससे नागरिकों का चरित्र गिरता है। भारतीय संविधान दोनों ही कसौटियों पर चरित्र-पतन के लिए उत्तरदायी है।

2002. भारतीय संविधान लोकतांत्रिक विश्व के संविधानों में सबसे रद्दी संविधान है। यह भारत की सम्पूर्ण व्यवस्था को ठीक दिशा देने में विफल तो है ही, बल्कि अनेक समस्याएं उत्पन्न करने के विष बीज भी भारतीय संविधान में ही है। भारतीय संविधान भारतीय राजनीति का कवच है। इस कवच का भेदन किये बिना हम राजनीति की उच्छृंखलता पर कोई अंकुश नहीं लगा सकते।

2003. संविधान सर्वोच्च होता है, जिसके नियंत्रण में रहकर लोकतंत्र के तीनों स्तम्भ न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका कार्य करती है। लोकतंत्र में इन तीनों इकाइयों का संतुलन अनिवार्य आवश्यकता है। लोकतंत्र के तीन स्तम्भों में से कोई सर्वोच्च है, यह बात न तो संविधान सम्मत है, न ही उचित, किन्तु कभी विधायिका कभी न्यायपालिका सिर ऊँचा करके 'सर्वोच्चता' की असत्य धारणा को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं।

2004. शासन अनियंत्रित होता है, तो उस पर नियंत्रण के प्रावधान संवैधानिक ही हो सकते हैं, अन्य नहीं। इसलिए संविधान का बहुत महत्व होता है। राज्य ने समाज को सिर्फ वोट देने का अधिकार सौंपकर बाकी सभी अधिकार संसद के माध्यम से अपने पास समेट लिए।

2005. संविधान व्यक्ति के मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी मात्र देता है। यह सुरक्षा की गारंटी उसका दायित्व है, स्वैच्छिक कर्तव्य मात्र नहीं।

2006. भारतीय संविधान में 'हम भारत के लोग' सबसे ऊपर है न कि भारत की संसद। व्यक्ति के ऊपर कानून, कानून के ऊपर संसद,

संसद के ऊपर संविधान और संविधान के ऊपर 'हम भारत के लोग' रूपी लोक होता है। सच्चाई यह है कि संविधान एक गवर्नर है, जो किसी सीमा से ज्यादा होती खतरनाक गति को रोकता है। संविधान समाज के नीचे है और संसद संविधान के अंतर्गत कार्य करने वाला न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका में सिर्फ एक भाग। तंत्र ने संविधान रूपी किताब को ढाल के रूप में उपयोग किया। संविधान नामक वह किताब तंत्र से नियंत्रित हुई, न कि उसने तंत्र को नियंत्रित किया।

2007. प्रजातंत्र में संविधान सत्ता की सीमाएं निश्चित करता है। इसका मतलब यह हुआ कि संविधान संसद से भी ऊपर है। संसद को संविधान में संशोधन का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए, जो वर्तमान में संसद ने मनमाने तरीके से ले लिया है।

2008. व्यवस्था चाहे कोई भी हो, कैसी भी हो, किन्तु वह संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है। संविधान व्यक्तियों की अपेक्षा सर्वोच्च होता है किन्तु सर्वव्यक्ति समूह की तुलना में सर्वोच्च नहीं होता। सर्वव्यक्ति समूह सर्वोच्च होता है।

2009. किसी भी संविधान में सर्वसम्मति से भी किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता में किसी दीर्घकालिक कटौती का नियम नहीं बन सकता।

2010. वास्तविकता यह है कि संविधान न मूल अधिकार देता है, न वापस ले सकता है। संविधान तो प्रत्येक व्यक्ति को उसके मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी मात्र देता है।

2011. संविधान से तात्पर्य ऐसे दस्तावेज से है, जिसकी एक विशिष्ट कानूनी पवित्रता होती है। संविधान का कार्य तंत्र से जुड़े तीनों अंगों के बीच समन्वय स्थापित करना होता है।

2012. सुचारू व्यवस्था के लिए प्रत्येक इकाई का संविधान होना आवश्यक होता है, वह संविधान चाहे लिखित हो अथवा अलिखित। परिवार से विश्व तक की प्रत्येक इकाई का अपना अलग-अलग संविधान हो सकता है।

2013. पूरी दुनिया के संविधान मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या नहीं कर पाते, क्योंकि मूल अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या घोषित करते ही उनकी उच्छृंखलता सीमित होने लगती है, किंतु भारतीय संविधान ने तो इस अवधारणा को छूने का भी प्रयास नहीं किया।

2014. समाज को पीढ़ियों तक गुलाम बनाकर रखने का जो मार्ग भीमराव अम्बेडकर ने दिया और जिस पर चलकर आज भी ये नेता लोग अपने को स्थापित किये हैं, उस मार्गद्रष्टा को सम्मानित न करना तो कृतघ्नता ही मानी जाएगी। सभी संविधान की दुहाई दे रहे हैं, क्योंकि संविधान ही तो वह दस्तावेज है, जो समाज को गुलाम बनाकर रखने में तंत्र की ढाल बना हुआ है।

2015. आदर्श स्थिति में समाज एक संविधान बनाकर उस संविधान के अंतर्गत सरकार को काम करने का अधिकार देता है। संविधान एक ऐसा दस्तावेज होता है, जो सरकार की अन्तिम सीमाएं तय करता है और मार्गदर्शन भी प्रदान करता है। वर्तमान स्थिति में संविधान बनाने के मामले में समाज की भूमिका को शून्य कर दिया गया है।

2016. भारत के वर्तमान संविधान के असंतुलित होने के कारण समाज विरोधी तत्व मजबूत होते गये और समाज की स्वतंत्रता में लगातार कटौती होती चली गई। हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि संविधान अपने उद्देश्यों के विपरीत परिणाम देता रहा।

201 परिभाषाएं

2017. तंत्र के अधिकतम तथा लोक के न्यूनतम अधिकारों की सीमा निश्चित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते हैं। तंत्र के न्यूनतम तथा व्यक्ति के अधिकतम अधिकारों की सीमा निश्चित करने वाले दस्तावेज को कानून कहते हैं। संविधान लोक अथवा लोक द्वारा इस विशेष कार्य के लिए बनायी गयी इकाई द्वारा तंत्र की उद्दंडता पर नियंत्रण के लिए बनाया जाता है। कानून तंत्र द्वारा व्यक्ति की उद्दंडता पर नियंत्रण के लिए बनाया जाता है। वर्तमान विश्व में प्रचलित संविधान और कानून की परिभाषाएँ या तो अधूरी हैं या गलत। संविधान, कानून आदि शब्दों की भी स्पष्ट परिभाषा बननी चाहिए, भले ही अब तक दुनिया में न बनी हो। संसदीय लोकतंत्र को बदल कर सहभागी लोकतंत्र की दिशा में बढ़ना चाहिए।

2018. व्यक्ति नियंत्रित होता है तंत्र से, तंत्र संविधान से तथा संविधान समाज से। संविधान व्यक्ति, परिवार और समाज का प्रतिनिधित्व करता है और कानून राज्य का। संविधान समाज और राज्य के बीच का द्विपक्षीय समझौता होता है। इस समझौते के अधीन ही राज्य कोई कानून बना सकता है। राज्य संविधान से हट कर कोई कानून नहीं बना सकता।

2019. प्रश्न स्वाभाविक ही है कि संसद सर्वोच्च है या संविधान। सम्पूर्ण भारत में राजनेताओं ने एक भ्रम फैलाने में सफलता पा ली है कि संसद ही समाज का प्रतिनिधित्व करती है। सच्चाई बिल्कुल उलट है 'संविधान ही समाज का प्रतिनिधित्व करता है' और संसद ऐसे समाज द्वारा बनाये गये संविधान का अनुसरण करती है।

202 नागरिक और व्यक्ति

2020. समाज सर्वोच्च है। कानून का काम है व्यक्ति की उच्छृंखलता को रोकना न कि समाज की स्वतंत्रता में दखल देना। यही उसकी अंतिम सीमा भी है। यदि विधायिका इस काम को न करे, तो न्यायालय इसके लिए पहल कर सकता है।

2021. नागरिक अधिकार संविधान प्रदत्त होते हैं और वे अलग-अलग हो सकते हैं। साथ ही कम-ज्यादा भी किये जा सकते हैं। लेकिन मौलिक अधिकार सबके समान होते हैं। व्यक्ति समाज का अंग होता है और नागरिक राष्ट्र का। भले ही प्रत्येक व्यक्ति की दोनों भूमिकाएं अलग-अलग होते हुए भी उसी व्यक्ति में निहित होती हैं। व्यक्ति और नागरिक अधिकारों के मामले में अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे के साथ जुड़े हुए होते हैं। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के लिए दोनों भूमिकाओं में रहना उसकी मजबूरी है और उसकी सहमति के बिना कोई भी अन्य उसकी स्वतंत्रता में कटौती नहीं कर सकता। व्यक्ति और नागरिक की अलग-अलग पहचान और भूमिका स्पष्ट होनी चाहिए, जिसका अभाव वर्तमान अव्यवस्था का मुख्य कारण है।

2022. सिद्धांत रूप से कोई भी व्यक्ति अकेला रहने के लिए स्वतंत्र है, किन्तु व्यावहारिक धरातल पर प्रत्येक व्यक्ति को समाज के साथ संबद्धता उसकी मजबूरी होती है, क्योंकि उसकी स्वतंत्रता एवं सुरक्षा की गारंटी समाज देता है। समाज भी उसकी सुरक्षा की गारंटी राज्य के माध्यम से ही देता है। इस तरह दुनिया का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी राष्ट्र की नागरिकता के लिए मजबूर होता है और यह मजबूरी ही उसकी स्वीकृति है।

2023. जब कोई व्यक्ति किसी देश का नागरिक बन जाता है, तब उसके सारे प्राकृतिक अधिकार तब तक उस देश के संवैधानिक व्यवस्था के साथ सहमत मान लिए जाते हैं जब तक वह सहमत है। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति किसी भी देश की नागरिकता कभी भी छोड़ सकता है और वह नागरिक कानूनों से मुक्त हो सकता है। किन्तु जब तक वह नागरिकता नहीं छोड़ता तब तक वह उस देश के कानूनों को मानने के लिए बाध्य है।

203 समानता

2030. समानता की वर्तमान प्रचलित परिभाषा गलत है। असमानता प्राकृतिक होने से समान बनाने का प्रयत्न पूरी तरह गलत है। भारत में समानता की नई परिभाषा यह हो सकती है कि किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित किसी सीमा रेखा से ऊपर वालों को समान स्वतंत्रता तथा नीचे वालों को समान सुविधा।

2031. समानता स्वयं में एक भ्रामक और अस्पष्ट शब्द है। कोई भी दो व्यक्ति कभी समान नहीं होते। प्राकृतिक संरचना के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति के गुण, कर्म, स्वभाव, क्षमता अलग-अलग हैं और इससे प्राप्त परिणाम भी अलग-अलग हैं। ऐसे भिन्न परिणामों को राज्य द्वारा समान करने का प्रयत्न न तो सम्भव है और न ही उचित।

2032. समानता का अर्थ व्यक्तियों के आपसी संव्यवहार में समानता न होकर राज्य और व्यक्तियों के बीच के आपसी संव्यवहार में समानता होनी चाहिए। राज्य और राजनीति से जुड़े लोग, लोगों में असमानता की भावना पैदा करने, उसकी असमानता दूर करने के प्रयास तथा उसे कभी समान न होने देने में उसी तरह लगे रहते हैं, जैसे रोटी का बंटवारा करता बिल्लियों के बीच बंदर।

2033. आर्थिक, सामाजिक असमानता भी घातक है और अधिकारों की असमानता भी। किन्तु अधिकारों की असमानता, आर्थिक सामाजिक असमानता से अधिक घातक है। एक सर्वोच्च धनवान से किसी धनहीन को उतना खतरा नहीं जितना किसी तानाशाह से सामान्य व्यक्ति को हो सकता है। क्योंकि तानाशाह के पास पुलिस, सेना और कानून की भी शक्ति होती है। वर्तमान समय में सत्ता के खेल के लिए आर्थिक, सामाजिक असमानता के नारे का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। राजनीति से जुड़े जो लोग आर्थिक, सामाजिक असमानता की चर्चा करते हैं, उनकी नीयत खराब है। एक भी ऐसा संगठन या व्यक्ति नहीं दिखता जो आर्थिक, सामाजिक असमानता के विरुद्ध तो आंदोलन करे, किन्तु जिसका राजनैतिक उद्देश्य न हो।

2034. आर्थिक, सामाजिक असमानता दूर करना मजबूतों का कर्तव्य होता है, कमजोरों का अधिकार नहीं। स्वतंत्रता हमारा अधिकार है और उसकी सुरक्षा शासन का दायित्व। दुर्भाग्य से आर्थिक, सामाजिक असमानता दूर करना कमजोरों का अधिकार प्रचारित किया जा रहा है और अधिकारों की असमानता दूर करने की कोई चर्चा ही नहीं करता।

2035. स्वतंत्रता और समानता का इस तरह सामंजस्य हो कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हों। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक एक-दूसरे से स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा करता है। राज्य को कभी भी किसी की सहायता करके पक्षपात नहीं करना चाहिए। राज्य इस समान स्वतंत्रता में असमानता पैदा करने लिए समानता शब्द का दुरूपयोग करता है। 'असमानता प्राकृतिक है' राज्य को कोई हस्तक्षेप तब तक

नहीं करना चाहिए, जब तक कोई व्यक्ति प्रतिस्पर्धा करने योग्य है। किसी नागरिक को प्रतिस्पर्धा योग्य बनाने में सहायता, किसी विशेष परिस्थिति में ही कर्तव्य समझकर राज्य द्वारा दी जा सकती है। सामान्य रूप से अथवा दायित्व समझकर नहीं।

2036. समानता का अर्थ सिर्फ आर्थिक असमानता तक सीमित न रहकर असमान स्वतंत्रता के साथ भी जुड़ना चाहिए। स्वतंत्रता की असीमित असमानता, आर्थिक असमानता की अपेक्षा अधिक घातक होती है। भूख और गुलामी के बीच गुलाम बनाने की इच्छा रखने वाले भूख को लालच के रूप में प्रस्तुत करके गुलाम बनाने का प्रयास करते हैं।

204 समता व स्वतंत्रता

2040. समानता का विचार सामाजिक जीवन में हो जाये, तो आदर्श स्थिति हो सकती है और प्रशासनिक माध्यम से स्थापित करना पड़े तो निकृष्ट स्थिति होती है। स्वतंत्रता के बाद गांधी जी के मन में असमानता दूर करने के प्रयत्नों की एक स्पष्ट रूपरेखा थी, किन्तु गांधी जी के बाद राजनीतिज्ञों ने समता शब्द का दुरूपयोग किया और अपनी राजनैतिक शक्ति बढ़ाने का उचित माध्यम मान लिया। यदि समानता को राजनीति का हथियार बना लिया जाए, तो समानता पूरी तरह स्वतंत्रता की शत्रु होती है।

2041. किसी भी प्रकार की समानता के कानूनी प्रयत्न राजनैतिक शक्ति में विस्तार करते हैं। यही कारण है कि हर राजनैतिक दल भिन्न-भिन्न मुद्दों पर समानता के आंदोलन खड़े करते रहते हैं। समानता के नाम पर वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष में विस्तार इसके

माध्यम हैं। धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, गरीब, अमीर, उत्पादक, उपभोक्ता जैसे इसके आधार हैं।

2042. भारत में आर्थिक असमानता के विरुद्ध आवाज उठाने वाला एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो राजनैतिक शक्ति की असमानता की भी बात उठाता हो। समानता शब्द पूरी तरह राजनीति के खेल में फुटबाल की तरह उपयोगी हो गया है, जिसका सारा लाभ खिलाड़ी उठा रहे हैं और हमें मैदान के बाहर ताली बजाने का दायित्व सौंप दिया गया है।

2043. आर्थिक असमानता पर नियंत्रण आवश्यक है। स्वतंत्रता और समानता का इस तरह सामंजस्य हो कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हों। सम्पत्ति पर समान प्रतिशत से कर लगाकर उक्त राशि का सबके बीच समान वितरण दोनों का सामंजस्य स्थापित कर सकता है।

2044. प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वभाव होता है कि वह स्वयं दूसरों से अधिकाधिक स्वतंत्रता चाहता है और दूसरों को कम से कम स्वतंत्रता देना चाहता है।

2045. साम्यवादी तथा इस्लामिक व्यवस्थाएं व्यक्ति की स्वतंत्रता को न मानने के कारण त्यागने योग्य हैं। भारतीय परिवार व्यवस्था संशोधन योग्य है और लोकतांत्रिक व्यवस्था अनुकरणीय है। लोक स्वराज्य व्यवस्था आदर्श है।

2046. समानता की सिर्फ एक परिभाषा होती है कि प्रत्येक व्यक्ति को समान स्वतंत्रता। इसके अतिरिक्त समानता की सारी परिभाषाएं असमानता पैदा करती हैं। समानता के नाम पर असमानता पैदा करके वर्ग-विद्वेष बढ़ाना राजनीति का मुख्य आधार है। किसी स्थापित व्यवस्था द्वारा घोषित न्यूनतम स्तर से नीचे जीने वालों को

समान सुविधा तथा ऊपर जीने वालों को समान स्वतंत्रता समानता की परिभाषा मानी जाती है।

2047. असीम स्वतंत्रता व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार है। कोई भी अन्य उसकी सीमा तब तक नहीं बना सकता, जब तक उसने किसी अन्य की सीमा का उल्लंघन न किया हो। समानता व्यक्ति का मौलिक अधिकार नहीं हो सकता। समानता शब्द का व्यापक दुरूपयोग हो रहा है।

2048. आर्य समाज के दस नियमों में ही इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत निर्णय में पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए तथा दूसरों की स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले मामलों में व्यक्ति पूरी तरह परतंत्र रहे। इसमें न तो व्यक्ति की उच्छृंखलता को छूट दी गई है, न ही व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न करने को। व्यक्ति को अपनी व्यक्तिगत सीमा में निर्णय करने की पूरी स्वतंत्रता है, किन्तु उसकी अन्तिम सीमा व्यक्तिगत निर्णय तक ही निर्धारित है।

2049. समानता को मूल अधिकार संविधान ने घोषित किया है, समाज ने नहीं। समाज ने स्वतंत्रता को मूल अधिकार माना है। संविधान तो तंत्र का गुलाम है।

205 संविधान निर्माण के तत्व

2050. हम भारतीय संविधान की प्रस्तावना में पांच तत्व रखना चाहते हैं—(1) सत्ता का अकेन्द्रीकरण, (2) अपराध नियंत्रण की गारंटी, (3) आर्थिक असमानता में निश्चित कमी, (4) श्रम-सम्मान वृद्धि, (5) समान नागरिक संहिता।

2051. लोकतंत्र में कानून का शासन होता है, शासन का कानून नहीं।

सभी कानून एक संवैधानिक व्यवस्था के अंतर्गत बनाये जाते हैं, जिसकी संरचना प्रयोग और परीक्षण के लिए क्रमशः विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की रचना की गई।

2052. भारत के वर्तमान संविधान पर विचार करें तो उसकी उद्देश्यिका में ही अवसर की समानता शब्द लिखकर भूल कर दी गई। अवसर की स्वतंत्रता शब्द होना चाहिए था। भारतीय संविधान का निर्माण करते समय या तो संविधान निर्माताओं ने भूल की या उस समय की परिस्थितियों ने उन्हें ऐसे गोल-मटोल अंश जोड़ने को मजबूर किया।

206 समाजशास्त्र

2060. भारत का हर राजनीतिज्ञ, पूंजीपति तथा अपराधी भारत की सम्पूर्ण अव्यवस्था का दोषी समाज को मानता है संविधान को नहीं, जबकि सच्चाई बिल्कुल उलट होती है। यदि समाज महत्वपूर्ण है, तो समाज के सामाजिक मामलों में राज्य का इतना हस्तक्षेप क्यों? यदि समाज व्यवस्था का पूरा दायित्व संवैधानिक व्यवस्था में ही है, तो उसकी सफलता, असफलता का श्रेय स्वीकार करने में हिचक क्यों?

2061. दुनिया में चार व्यवस्थाएं हैं— (1) पश्चिम का लोकतंत्र, (2) इस्लाम का धर्मतंत्र, (3) साम्यवाद का राज्य तंत्र, (4) वैदिक काल की समाज व्यवस्था। दुर्भाग्य से भारतीय संविधान में लोकतंत्र, धर्मतंत्र और राज्य तंत्र तो है, किन्तु समाज व्यवस्था की इकाई परिवार व्यवस्था, ग्राम व्यवस्था संविधान से बाहर है। वर्तमान भारतीय संविधान के स्वरूप में पश्चिम का व्यक्ति स्वातंत्र्य, साम्यवादियों की शक्ति सम्पन्न राज्य व्यवस्था और इस्लाम के धर्म सर्वोच्च

का तो समन्वय किया गया है, किन्तु उसमें से समाज व्यवस्था को बाहर कर दिया गया।

2062. हमारे संविधान निर्माताओं ने पक्षपातपूर्वक राज्य को एकपक्षीय शक्तिशाली बना दिया। अब देश के समाजशास्त्रियों को मिलकर राज्य और समाज के अधिकारों की सीमाओं की पुनः व्याख्या का आंदोलन शुरू करना चाहिए।

2063. हमारे संविधान निर्माताओं को समाजशास्त्र का बिल्कुल ज्ञान नहीं था। उन्होंने धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और राजनीति शास्त्र तक ही समझा था। उन्हें मिलाकर ही संविधान बनाना उनकी मजबूरी थी। इन्होंने कभी समाज का अलग अस्तित्व माना ही नहीं। हमारे संविधान निर्माताओं में मौलिक चिन्तन का अभाव था। वे संविधान की ही परिभाषा नहीं समझ सके। वे मूल अधिकार, अपराध, दायित्व तथा कर्तव्य आदि को ठीक से परिभाषित ही नहीं कर सके, क्योंकि पश्चिम के विद्वान अब तक इन्हें परिभाषित कर नहीं पाये और हमारे संविधान निर्माता पश्चिम की किताबें और साम्यवादी विचार के बीच नकल करने तक ही सीमित रहे।

2064. संविधान के माध्यम से समाज तंत्र पर अंकुश बनाये रखता है और तंत्र कानून के माध्यम से व्यक्ति पर अंकुश बनाता है। भारत में तो कानून पर भी तंत्र का नियंत्रण हो गया और संविधान पर भी। संविधान तंत्र को हमेशा अघोषित सुरक्षा देता है, दूसरी ओर तंत्र संविधान का मनमाना दुरुपयोग भी करता रहता है। संविधान को राजनीतिज्ञ और संसद के एकाधिकार से मुक्त कराया जाय और समाज का संविधान से सीधा संपर्क हो, संवाद हो, नियंत्रण हो।

2065. संविधान समाजशास्त्र का विषय है और कानून राजनीतिशास्त्र का। अधिवक्ता या तो राजनीति के ज्ञाता होते हैं अथवा कानून के ज्ञाता होते हैं। उन्हें समाजशास्त्र की ज्यादा जानकारी नहीं होती। संविधान बनाते समय या तो राजनीतिज्ञों का बहुमत था या अधिवक्ताओं का। समाजशास्त्री तो शायद ही कोई रहे होंगे।

2066. लोकतंत्र में अन्तिम निर्णायक तो समाज ही होता है, जो एक संविधान बनाकर राज्य अथवा व्यवस्था को संविधान की सीमाओं में रहते हुए व्यक्ति और समाज की सुरक्षा और न्याय का दायित्व सौंपता है।

207 संविधान निर्माताओं की नीयत

2070. स्वतंत्रता के बाद संविधान निर्माताओं में अधिकांश लोग शरीफ थे। न उनमें चालाकी थी, न समझदारी। उन्हें राजनीतिशास्त्र का तो ज्ञान था ही नहीं, समाजशास्त्र का भी ज्ञान कम ही था। फिर भी वे समाज व्यवस्था से डरते थे।

2071. इंदिरा जी ने यह समझ लिया कि भारत का यह संविधान चालाकी के लिए अच्छा माध्यम है। उन्होंने सत्ता में चालाकी का भरपूर प्रयोग किया और प्रशंसा अर्जित की। इंदिरा जी के शासन काल में भारत का जो सामाजिक पतन हुआ, वह ऐतिहासिक ही कहा जाना चाहिए।

2072. स्वतंत्रता के समय भारत के राजनेताओं के एक गुट ने गांधी की और दूसरे गुट ने गांधी के ग्राम स्वराज्य की नीतियों की हत्या करके समाज को गुलाम बना लिया था। इन लोगों ने मिल-जुल कर समाज पर एक ऐसा संविधान थोप दिया, जिसमें लोकतंत्र के नाम पर अनन्त काल तक समाज को गुलाम बनाकर रखने के सभी

उपकरण मौजूद हैं। संविधान सभा के शरीफ सदस्य या तो कुछ कर नहीं सके या ऐसी चालाकी को समझ नहीं सके।

2073. हमारे संविधान निर्माता राजनीतिज्ञ थे। वे समाज को सदा के लिए गुलाम बनाकर रखना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने नीति-निर्देशक तत्व संविधान में डालकर सदा-सदा के लिए समाज को गुलाम बनाकर रखने की व्यवस्था कर ली।

2074. भारत का सम्पूर्ण सवर्ण और अवर्ण बुद्धिजीवी इस संविधान को अम्बेडकर का संविधान कह कर समाज में भ्रम पैदा करता रहता है, क्योंकि सत्तर वर्षों तक बुद्धिजीवियों को समाज को लूट खाने की सारी सुविधा इस संविधान ने ही तो दी है?

2075. संविधान का उद्देश्य चरित्र-पतन को रोकना है और यदि संविधान चरित्र-पतन को रोकने में असफल है, तो यह उसकी स्वयं की असफलता है चरित्र की नहीं। जब भारत का संविधान बना, तब उसके बनाने वालों और पालन करने वालों का चरित्र आज से कई गुना ऊंचा था। फिर भी यह दुर्दशा यदि हुई, तो कहीं न कहीं संविधान में ही कमजोरी रही। यह प्रश्न भी स्वाभाविक ही है कि यदि चरित्र के उत्थान-पतन में संविधान की कोई भूमिका नहीं है, तो फिर उसकी आवश्यकता तथा उपयोगिता ही क्या है? क्यों न इसे छोटा करके इसकी सक्रियता तथा हस्तक्षेप को घटा दिया जाय? मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि भारत में व्याप्त अधिकांश समस्याएं या तो भारतीय संविधान की कमजोरियों के कारण हैं या भारतीय तंत्र की अति सक्रियता के बाई-प्रोडक्ट हैं।

2076. दुनिया के संविधान बनाने वालों की यदि समीक्षा करें, तो हो सकता है कि उनसे कुछ भूलें ही हुई हों अथवा लम्बा समय बीतने

के बाद कुछ परिस्थितियों बदली हों। किन्तु भारतीय संविधान बनाने वालों से अनेक भूलें तो हुई ही किन्तु उनकी नीयत पर भी संदेह होता है। कहीं न कहीं संविधान निर्माताओं की नीयत में भी खराबी थी, तभी उन्होंने संविधान संशोधन तक के अधिकार लोक से छीनकर तंत्र को दे दिये तथा लोकतंत्र की परिभाषा पूरी तरह बदल कर लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित कर दी। बनी हुई संविधान सभा को बदलकर लोकसभा का स्वरूप देना तथा उसे ही संविधान सभा भी मान लेना, सिर्फ गलती नहीं कही जा सकती।

2077. भारतीय संविधान हमारी समस्याओं के समाधान में विफल ही नहीं रहा, बल्कि समस्याओं के विस्तार में भी सहायक रहा। संविधान बनाने वालों की नीयत पर तो संदेह करना उचित नहीं, क्योंकि उस समय भारत गुलाम था।

2078. सिद्धांततः नीति-निर्धारण में 'अच्छे लोगों' का होना तानाशाही में तो आवश्यक है, किन्तु लोकतंत्र में नहीं । लोक स्वराज्य प्रणाली में तो बिल्कुल नहीं।

208 प्रस्तावना

2080. स्वतंत्रता व्यक्ति का मूल अधिकार है और समानता के प्रशासनिक प्रयत्न घातक। प्रस्तावना में समानता की जगह स्वतंत्रता शब्द होना चाहिए था। प्रस्तावना में धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद शब्द बाद की मिलावट है। यह मिलावट अधिक घातक सिद्ध हुई है।

2081. नई उद्देश्यिका (Preamble) बनाते समय हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा कि 'हम भारत के नागरिक, भारत में संविधान सम्मत गणतंत्र बनाने तथा सभी नागरिकों को— (1) सत्ता का अकेन्द्रीकरण (2) अपराध मुक्ति (3) आर्थिक अकेन्द्रीकरण (4) श्रम सम्मान और

(5) समान नागरिक संहिता प्राप्त कराने के उद्देश्य से संविधान सभा के समक्ष संविधान प्रस्तुत करते हैं'। संविधान की प्रस्तावना के मुताबिक हम भारत के लोग ही इस देश के असली मालिक हैं, भारत के भाग्यविधाता हैं।

208 संविधान निर्माताओं की भूलें

2082. भारत की अधिकांश अव्यवस्था का कारण भारत का वर्तमान संविधान है। भारत का संविधान विश्व के अन्य लोकतांत्रिक संविधानों की तुलना में सबसे अधिक अनुपयुक्त संविधान है। इसमें निम्न गलतियां हैं— (1) बहुत बड़ा है। (2) भाषा द्विअर्थी है, Interpretations बहुत अधिक हैं। (3) प्रारम्भ में सैद्धांतिक बात लिखने के बाद 'किन्तु-परन्तु' लिखकर उसे पूरी तरह बदल दिया गया, Contradiction बहुत अधिक हैं। (4) वर्ग-विद्वेष बढ़ाने में सक्रिय रहा। (5) संसदीय लोकतंत्र को संसदीय तानाशाही में बदलने का आधार बना। (6) भारतीय व्यवस्था के मूल आधार परिवार, गाँव को संविधान से निकालकर धर्म, जाति को संवैधानिक मान्यता दे दी। (7) समाज के अस्तित्व को अस्वीकार करके राज्य को ही अंतिम इकाई घोषित कर दिया। (8) अपराध नियंत्रण की अपेक्षा जनकल्याण को अधिक प्राथमिकता दी। (9) राज्य की भूमिका प्रबंधक की न होकर कस्टोडियन के रूप में निर्धारित की। नीति-निर्देशक तत्व को संविधान का भाग बनाकर राज्य के लिए स्वैच्छिक कर दिया गया, जबकि मूल दायित्व संविधान का भाग बनाकर समाज के लिए बाध्यकारी कर दिया गया।

2083. (1) भारत का गलत संविधान बनाने के लिए कुछ परिस्थितियाँ दोषी रहीं तो कुछ पंडित नेहरू और डॉ. अम्बेडकर। संघ परिवार

स्वतंत्रता संघर्ष से दूर रहा। गांधी हत्या के बाद उनकी विश्वसनीयता और कम हुई। नेहरू व अम्बेडकर को हिंदुत्व से भी चिढ़ थी और भारतीय परम्पराओं से भी। दोनों ने आँख बंदकर विदेशों की नकल करके संविधान बना दिया। (2) भारतीय संविधान भारतीय राजनीति का कवच है। इस कवच का भेदन किए बिना हम राजनीति की उच्छृंखलता पर कोई अंकुश नहीं लगा सकते। (3) संविधान का मूल स्वरूप बनाना समाजशास्त्र का विषय है। संविधान का मूल ढाँचा कभी भी राजनीतिशास्त्र का विषय नहीं रहा है और न होना चाहिए। भारतीय संविधान के मूल तत्व भी राजनेताओं ने ही तय किए और भाषा भी उन्होंने ही दी। संविधान के मूल तत्व तय करने में समाजशास्त्रियों की कोई भूमिका नहीं रही। इस कार्य में संलग्न लोग या तो अधिवक्ता थे या आंदोलन से निकले राजनीतिज्ञ। संविधान निर्माण में गांधी तक को किनारे रखा गया, जो राजनीति और समाजशास्त्र के समन्वय रूप थे। यही कारण था कि राजनेताओं ने संसद को प्रबंधक के स्थान पर अभिरक्षक (कस्टोडियन) का स्वरूप दिया। यही नहीं, उन्होंने तो संसद के अभिरक्षक स्वरूप की कोई समय अवधि तय न करके देश के साथ भारी षड्यंत्र किया, जिसका परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं। (4) भारतीय संविधान ने संसद को तीनों अधिकार प्रदान कर दिए। हम जिसे चुनते हैं, उसे पाँच वर्ष के बीच में न हटा सकते हैं, न बदल सकते हैं। हम संसद के अधिकारों की न व्याख्या कर सकते हैं, न सीमा रेखा बना सकते हैं, न ही कटौती कर सकते हैं। जो करोड़ों लोग संविधान निर्माताओं की व्याख्या के अनुसार इतनी भी योग्यता नहीं रखते कि परिवार या गाँव की

ठीक से व्यवस्था कर सकें, उन्हीं अयोग्य लोगों के बीच से चुना हुआ व्यक्ति रातों-रात सारे देश के लिए कानून बनाने के लिए योग्य घोषित हो जाता है। (5) न्याय और सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए थी, किन्तु न्याय और सुरक्षा की अपेक्षा जनकल्याणकारी कार्यों को प्राथमिकता दी गई। (6) व्यक्ति, परिवार और गाँव को व्यवस्था की ईकाई न मानकर धर्म, जाति, भाषा, लिंग के आधार पर वर्ग-निर्माण को प्रोत्साहित किया गया। इनकी एक मुट्ठी में संविधान बन्द है, जिसके प्रति हर भारतीय के मन में आज भी सम्मान है। हमारा भगवान रूपी संविधान तंत्र की दूसरी मुट्ठी में कैद है। वह संविधान इनके लिए ढाल का काम करता है। उसे स्वतंत्र होना चाहिए। (7) भारतीय संविधान ने समाज को एक गलत संदेश दिया कि गैरकानूनी कार्य भी अपराध है और अनैतिक भी। इस संदेश का दुष्परिणाम यह हुआ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपराधी समझकर हीन भावना से ग्रसित हो गया। भारतीय संविधान ने जनकल्याणकारी कार्यों की प्राथमिकता घोषित करके दायित्वों को कमजोर कर दिया। (8) संविधान की मूलभूत अवधारणा के अनुसार राज्य को समाज का मैनेजर होना चाहिए, संरक्षक (कस्टोडियन) नहीं। भारतीय संविधान ने राज्य को कस्टोडियन की भूमिका प्रदान कर दी।

2084. भारतीय संविधान में बिना सोचे-समझे ही अनेक दूसरे प्रकार के अधिकारों का कूड़ा-कचरा तो भर दिया गया और स्व-निर्णय और सम्पत्ति जैसे आवश्यक अधिकार को बाहर कर दिया गया। भारत का संविधान लोक नियुक्त तंत्र व्यवस्था को लोक नियंत्रित तंत्र व्यवस्था में बदल ही नहीं पा रहा।

2085. भारत में संविधान का शासन है, शासन का संविधान नहीं। संविधान का शासन लोकतंत्र होता है और शासन का संविधान तानाशाही। स्वतंत्रता के बाद गांधी की मृत्यु होते ही हमारे संविधान निर्माताओं ने लोकतंत्र की लोक नियंत्रित तंत्र वाली परिभाषा को बदलकर लोक नियुक्त तंत्र कर दिया, जिसका अर्थ हुआ कि तंत्र को लोक संवैधानिक तरीके से नियुक्त तो कर सकता है, किन्तु संविधान पर अंतिम नियंत्रण तंत्र का ही होगा, लोक का नहीं।

2086. भारत में कुछ नासमझ संविधान निर्माताओं और कानूनविदों की गलती से गैर कानूनी कार्यों तथा असामाजिक कार्यों को भी अपराध की श्रेणी में शामिल कर लेने के कारण हमारी कार्यपालिका और न्यायपालिका अतिभार की शिकार हो गयी। मेरे विचार से इसका मापदण्ड यह है कि संविधान सामाजिक व्यवस्था का पालन करने वाले व्यक्तियों के आंतरिक मामलों में कोई हस्तक्षेप न करे तथा समाज विरोधी लोगों को अपनी आदत छोड़ने के लिए बाध्य कर दे।

2087. किसी भी संविधान की यह अनिवार्यता होती है कि वह व्यावहारिक हो, आदर्शवादी नहीं। भारतीय संविधान उच्च आदर्शवादी तो बन गया, किन्तु उसमें व्यावहारिकता का अभाव रहा।

2088. हमारे गड़बड़ संविधान ने विधायिका को कार्यपालिका के अंदर हस्तक्षेप के व्यापक अधिकार दे दिये। यहां तक कि राष्ट्रपति तक के अधिकार कम करके मंत्री मंण्डल को दे दिये गये। सब जानते हैं कि प्रधानमंत्री और मंत्रिमण्डल विधायिका से नियंत्रित रहता है। यदि विधायिका को कार्यपालिका के ऊपर प्रत्यक्ष नियंत्रण की इतनी छूट नहीं होती तो इतनी गड़बड़ नहीं होती। भ्रष्टाचार कानून में नहीं होता क्रियान्वयन में होता है।

2089. संविधान में यह बात अनावश्यक रूप से छुपाई गई है कि राज्य अपने कर्मचारियों का वेतन-भत्ता कभी भी कम नहीं कर सकता। यदि मूल्य वृद्धि के आधार पर वेतन बढ़ाया जा सकता है, तो मूल्य कमी के आधार पर घटाया भी जाना चाहिए।

209 अस्पष्ट भाषाशैली

2090. संविधान में दो प्रकार की धाराएँ होती हैं - (1) प्रक्रियात्मक और (2) नीति सम्बन्धी। भारतीय संविधान की अधिकांश धाराएँ द्विअर्थी हैं। संविधान में नीति सम्बन्धी ऐसी एक भी धारा नहीं है, जो द्विअर्थी न हो तथा जिसके साफ-साफ अर्थ सामान्य लोग समझ जायें। संविधान के अधिकांश अंशों की व्याख्या करते समय संसद एक अर्थ निकालती है, तो हाईकोर्ट बदल देता है। हाईकोर्ट के अर्थ सुप्रीम कोर्ट और कई बार तो सुप्रीम कोर्ट के अर्थ भी उसकी पूर्ण पीठ बदल देती है। शंका होती है कि यदि सुप्रीम कोर्ट से ऊपर भी कोई कोर्ट होता, तो शायद अनेक निष्कर्ष बदल दिये गये होते।

2091. भारतीय संविधान में न्यायपालिका तथा संसद के अधिकारों की व्याख्या बिल्कुल अस्पष्ट है। यदि स्पष्ट व्याख्या होती तो कॉलेजियम सिस्टम क्यों लागू होता? जनहित याचिकाएं न्यायालय कैसे स्वीकार करता ? केशवानंद भारती प्रकरण में सुप्रीम कोर्ट के तेरह जजों में से छः द्वारा संविधान की किसी धारा की अलग व्याख्या तथा सात जजों की उससे ठीक विपरीत व्याख्या भारत की जनता को यह विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त है कि भारतीय संविधान बिल्कुल ही अस्पष्ट है, जिसे सुप्रीम कोर्ट तक के न्यायाधीश स्पष्ट समझने में असफल हैं।

2092. दुनिया का सिद्धांत है कि 'किन्तु' के बाद जो कुछ भी लिखा जाता है, वह अपवाद स्वरूप ही होता है। भारतीय संविधान की यह कमजोरी रही कि उसमें हर जगह मुख्य वाक्य को 'परन्तु' लिखकर अर्थहीन बना दिया गया। किसी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, लिंग के आधार पर कोई भेद नहीं करेगी 'किन्तु' आदिवासी, हरिजन, अल्पसंख्यक, पिछड़ा वर्ग तथा महिलाओं के लिए विशेष कानून बनाये जा सकते हैं। प्रजातांत्रिक देशों के संविधान की यह विशेषता रही है कि वे व्यक्ति को इकाई मानते रहे न कि जाति, धर्म या लिंग को।

2093. भारतीय संविधान में 395 धाराएँ हैं और उन धाराओं में लम्बे-लम्बे 'किन्तु-परन्तु' हैं। यही कारण है कि भारतीय संविधान को 'वकीलों का स्वर्ग' कहा जाता है तथा वह सामान्य जनता की पहुँच और समझ से दूर है।

210 अभिरक्षक

2100. जब तक यह संविधान और यह लोकतंत्र है, तब तक इस तंत्र बिरादरी को कोई संकट नहीं, क्योंकि संविधान ने ही तो विभाजन करके 'भैंस का थन' इस बिरादरी को सुपुर्द कर दिया है और 'मुँह' शेष समाज के जिम्मे।

2101. यह एक संवैधानिक दोष था कि हमारी संसद को (कस्टोडियन) की भूमिका दी गई, जो उसी परिस्थिति में अल्पकाल के लिए मैनेजर को दी जाती है, जब मालिक पागल, गंभीर बीमार या नाबालिग हो तथा बौद्धिक दृष्टि से निर्णय लेने में अक्षम हो। इस प्रणाली के साथ-साथ यह व्यवस्था भी जुड़ी रहती है कि कोई अन्य स्वतंत्र इकाई मालिक के बालिग या स्वस्थ्य होने की समीक्षा करे और संरक्षक से मुक्त करें।

2102. एक विशेष षड्यंत्र के अंतर्गत कस्टोडियन को ही यह अधिकार दे दिया गया कि मालिक स्वस्थ्य या बालिग हुआ कि नहीं, इसका अन्तिम निर्णय कस्टोडियन ही कर सकेगा, मालिक या कोई अन्य इकाई नहीं। कस्टोडियन का स्वरूप देने के कारण मैनेजर मालिक के रूप में सर्वशक्तिमान हो गया और जनता गुलाम के रूप में असहाय। संविधान की मूल अवधारणा के अनुसार राज्य समाज का मैनेजर होना चाहिए संरक्षक या कस्टोडियन नहीं।

2103. जितना भ्रष्टाचार, अपराधीकरण और उच्छृंखलता आई और बढ़ी, उन सबका एकमात्र कारण भारतीय संसद का अभिरक्षक (कस्टोडियन) स्वरूप का होना है। अभिरक्षक की मालिक से अधिक योग्यता और क्षमता का होना उसकी अनिवार्य शर्त होती है, जबकि संसद में जाने वाले अभिरक्षकों की योग्यता किसी भी स्थिति में मालिक से अधिक नहीं है।

2104. संसद को यह अधिकार सौंपना कि वह जब तक चाहे, तब तक कस्टोडियन रह सकती है, यह तो उनकी नीयत पर संदेह पैदा करता है। उन्होंने आरक्षण की अवधि तय की। उन्होंने भाषा की भी अवधि बतायी, किन्तु शासन कस्टोडियन कब तक रहेगा इसकी कोई अवधि तय न करने जैसी गंभीर भूल उनकी नीयत पर संदेह का आधार है।

2105. कस्टोडियन अवधारणा ने सुरक्षा और न्याय के साथ-साथ जनकल्याण के अन्य कार्यों को भी राज्य के दायित्व में शामिल कर लिया था। परिणाम हुआ कि जनकल्याण के नाम पर राज्य को समाज के अन्य सभी आर्थिक, सामाजिक अधिकारों में कटौती करते जाने की छूट मिल गई, जो आज भी जारी है।

2106. अम्बेडकर सरीखा विद्वान ऐसा संविधान बना ही नहीं सकता, जो संसद को मैनेजर के स्थान पर कस्टोडियन के अधिकार सौंपकर समाज को राजनेताओं का गुलाम बना दे। किन्तु यदि संविधान निर्माण में अम्बेडकर की निर्णायक भूमिका मानी जाती है, तो अम्बेडकर की विद्वता की हमारी सारी अवधारणा ही चकनाचूर हो जाती है, क्योंकि ऐसा अपरिपक्व संविधान रचने वाले को परिपक्व और विद्वान मानना हमारी भूल होगी।

211 संसदीय तंत्रात्मक व्यवस्था

2110. भारतीय संविधान ने संसद को दोनों अधिकार प्रदान कर दिये। हम जिसे चुनते हैं, उसे पांच वर्ष के बीच में न हटा सकते हैं, न बदल सकते हैं। हम संसद के अधिकारों की न व्याख्या कर सकते हैं, न सीमा-रेखा बना सकते हैं, न ही कटौती कर सकते हैं।

2111. जो करोड़ों लोग संविधान निर्माताओं की व्याख्या अनुसार इतनी भी योग्यता नहीं रखते कि परिवार या गाँव की ठीक से व्यवस्था कर सके, उन्हीं अयोग्यता वालों के बीच से चुना हुआ व्यक्ति रातों-रात सारे देश के लिए कानून बनाने के लिए योग्य घोषित हो जाता है।

2112. भारत में अभी यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान सर्वशक्तिमान है या तंत्र संचालक। तंत्र की मुट्ठी में वह संविधान बन्द है, जिसके प्रति हर भारतीय के मन में आज भी सम्मान है। वह संविधान इनके लिए ढाल का काम करता है।

2113. भारत में तंत्र द्वारा बंधक बनाकर रखे गये संविधान में भी भारत के हर नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, लेकिन यही संविधान हमारे जन प्रतिनिधियों को संसद में स्वतंत्रता पूर्वक बोलने से रोकने का अधिकार दल को दे देता है।

2114. भारतीय संविधान ने राजनेताओं को पूरे समाज को लूट खाने के अनियंत्रित साधन उपलब्ध करा दिये हैं और राजनेताओं ने उन साधनों का कुछ भाग अपराधियों को सौंप दिया है।

2115. बड़ा लक्ष्य यह है कि हम संविधान को संसद की जेल से स्वतंत्र करके उसे एक सजीव व्यवस्था का रूप दें, न कि संसद की कठपुतली। यदि इस कार्य के लिए राष्ट्रपति का चुनाव सीधे जनता द्वारा कराने की मांग भी जोड़नी पड़े, तो जुड़नी चाहिए।

2116. वास्तव में भारत का वर्तमान संविधान उस समय की परिस्थितियों में चाहे जैसा भी अच्छा बना हो, किन्तु जल्दी ही आभास हो गया कि वह संविधान समस्याओं के समाधान के लिए अपर्याप्त भी है और बाधक भी किन्तु उक्त संविधान दूसरे प्रकार के राजनेताओं के लिए अमृत तुल्य है। इसीलिए ये सब नेता मिलकर धर्म जाति का भेद भूलकर इस संविधान को धर्म ग्रन्थ मानने लगे।

2117. आदर्श संविधान में नीति-निर्देशक तत्व संविधान का सबसे खतरनाक भाग है। यह भाग राज्य को छूट देता है कि वह जनहित की परिभाषा स्वयं कर सकता है, और उस परिभाषा के आधार पर किसी भी सीमा तक समाज के अधिकार अपने पास समेट सकता है। नीति-निर्देशक तत्व समाज और राज्य के बीच अधिकारों का विभाजन न होकर अधिकारों के स्वतंत्रतापूर्वक उपयोग करने की चाभी राजनेताओं को सौंपने जैसा कार्य है।

2118. दुर्भाग्य से संविधान पर तंत्र का एकाधिकार हो गया है। तंत्र को समाज नियुक्त तो कर सकता है, किन्तु उस पर नियंत्रण समाज का नहीं होता। संविधान पर नियंत्रण जिसका होगा 'वही सर्वोच्च होगा' क्योंकि लोकतंत्र और तानाशाही में सिर्फ एक ही फर्क होता

है कि लोकतंत्र में संविधान का शासन होता है, तो तानाशाही में शासन का संविधान। यदि संविधान पर तंत्र का नियंत्रण समाप्त होकर लोक का नियंत्रण हो जाये, तो सर्वोच्चता का विवाद सदा-सदा के लिए समाप्त हो सकता है। सच बात तो यह है कि लोक को तंत्र की संविधानसम्मत लाठी से मार खाने को हमेशा तैयार रहना ही भारत का लोकतंत्र है।

2119. संविधान निर्माताओं ने तीनों में से किसी को भी अकेले निर्णायक की भूमिका नहीं सौंपी किन्तु संविधान निर्माताओं की एक छोटी-सी भूल ने इस संतुलन को बिगाड़ कर रख दिया। भूल यह थी कि संविधान संशोधन के असीम अधिकार भी संसद को ही दे दिये गये। भारतीय संविधान में संशोधन का अधिकार संसद को देना पूरी तरह राजनैतिक घपला है, जो चोरी-छिपे संसद को सर्वोच्च बनने की प्रेरणा देता है तथा स्वयं संसद का पिछलग्गू बन जाता है।

2120. हमारे अधिकार क्या हों, यह तंत्र तय करेगा, किन्तु उनके अपने अधिकार क्या होंगे, यह भी वे स्वयं तय करेंगे। हमारा वेतन क्या हो, यह वे तय करेंगे, किन्तु उनका वेतन क्या हो, यह भी वे ही तय कर लेंगे। वे हमसे कितना टैक्स वसूल सकते हैं, इसकी कोई सीमा नहीं है, दूसरी ओर वे अपनी सुविधाएं कितनी बढ़ा सकते हैं, इसकी भी कोई सीमा नहीं है। स्पष्ट है कि वे संवैधानिक रुप से हमारे भाग्य विधाता हैं और हम उनके गुलाम प्रजा।

212 जनकल्याणकारी अवधारणा

2121. यदि समाज के लोगों का आचरण ठीक नहीं होगा, तो उसे अनुशासन से ठीक करने का दायित्व समाज का है, संविधान का नहीं।

2122. वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था शरीफों, गरीबों, श्रमजीवियों के विरुद्ध अपराधियों, बुद्धिजीवियों तथा पूंजीपतियों का एक राजनैतिक षड्यंत्र है। यह राजनेताओं, अपराधियों तथा पूंजीपतियों के अनियंत्रित शक्ति विस्तार में सहायक है, बाधक नहीं।

2123. भारतीय संविधान को न्याय और सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिए थी, किन्तु पश्चिमी देशों का अन्धानुकरण करके न्याय और सुरक्षा की अपेक्षा जनकल्याणकारी कार्यों को प्राथमिकता दी गई।

2124. राज्य के पास ऐसी क्या मजबूरी थी कि उसने समाज को सभी सुविधाएं देने का ठेका ले लिया। 'घर में नहीं दाने, अम्मा चली भुनाने।' सुरक्षा और न्याय की तो गारण्टी दे नहीं सके, किन्तु छुआछूत, शराब, गांजा, वैश्यावृत्ति आदि रोकने तक की घोषणा करने लगे।

2125. भारतीय संविधान ने जनकल्याणकारी कार्यों की प्राथमिकता घोषित करके दायित्वों को कमजोर कर दिया। संविधान की मूलभूत अवधारणा के अनुसार राज्य समाज का मैनेजर होना चाहिए संरक्षक या कस्टोडियन नहीं। भारतीय संविधान ने राज्य को कस्टोडियन की भूमिका प्रदान कर दी।

2126. संविधान का उद्देश्य चरित्र-पतन को रोकना है और यदि संविधान चरित्र-पतन को रोकने में असफल है, तो यह उसकी स्वयं की असफलता है, चरित्र की नहीं। सामान्य लोगों के जीवन में तो संविधान और सरकार पग-पग पर सक्रिय रही, किन्तु अपराध नियंत्रण के मामले में उसका ब्रेक फेल हो गया।

2127. प्रस्तावित संविधान में संसद उन बच्चों के माता-पिता को शासन द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं या धन को रोक सकेगी जिसके संसद की बनाई सीमा से अधिक संतान होंगी। वैसे भी इस प्रकार की सुविधाएं व्यक्ति का मूल अधिकार न होकर संवैधानिक अधिकार ही होने से कभी भी रोकी जा सकती है।

213 संविधान में व्यवस्था की इकाई

2130. भारतीय संविधान में योजनापूर्वक परिवार, गाँव और जिले को बाहर करके पश्चिम के लोकतंत्र, इस्लाम के धर्मतंत्र और साम्यवाद के राज्यतंत्र की खिचड़ी थोप दी गयी और उस खिचड़ी का नाम रखा गया समाजवाद, जबकि इस खिचड़ी से समाज व्यवस्था का कोई लेना-देना नहीं था।

2131. भारतीय संविधान में व्यक्ति, परिवार और गाँव को व्यवस्था की इकाई न मानकर धर्म, जाति, भाषा या लिंग के आधार पर वर्ग-निर्माण को प्रोत्साहित किया गया।

2132. भारतीय संविधान ने व्यवस्था की दो ही इकाइयां मानी है—1- व्यक्ति और 2- समाज। बीच में परिवार को संवैधानिक मान्यता प्रदान नहीं की गई। यहां तक कि सम्पूर्ण संविधान में कहीं एक बार भी 'परिवार' शब्द शामिल नहीं है।

2133. गुलामी काल के बाद भारत का जो संविधान बना, उसमें धर्म, राज्य तथा व्यक्ति को तो भिन्न-भिन्न स्वरूप में शामिल किया गया, किन्तु समाज के प्रमुख अंग परिवार व्यवस्था, गाँव व्यवस्था को बिल्कुल दूर कर दिया गया। भारतीय संविधान ने समाज को तोड़कर रखने के आठ आधारों को इस प्रकार संविधान का भाग बना दिया, ताकि ये आठों आधार वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष और

वर्ग-संघर्ष की पृष्ठभूमि तैयार करते रहें। ये आठ आधार हैं- (1) धर्म, (2) जाति, (3) भाषा, (4) क्षेत्रीयता, (5) लिंग, (6) उम्र, (7) गरीब-अमीर, (8) उत्पादक-उपभोक्ता। वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर—1. बुद्धिजीवी-श्रमजीवी एवं 2. ग्रामीण-शहरी वर्ग-संघर्ष के दो नये वर्ग भी पहचान में आ रहे हैं।

2134. भारत का संविधान ऐसा है, जो सरकार के अंगों (कार्यपालिका, विधानपालिका, न्यायपालिका) के ढाँचे और उनके प्रमुख कार्यों को निर्दिष्ट करता है और उन अंगों के संचालन के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों को लागू करने की राज्य को सलाह देता है।

2135. भारतीय संविधान धर्मों, जातियों, भाषाओं, लिंगों आदि का संघ बन गया है। संविधान ने परिवार और ग्राम के लिए तो कुछ सोचा ही नहीं। वर्ग मान्यता के कारण वर्ग-विद्वेष भी पैदा हो गया।

2136. जब कोई व्यक्ति किसी अन्य के साथ नहीं रह सकता, तब उसे किसी अन्य की संवैधानिक व्यवस्था में शामिल होने का अधिकार क्यों होना चाहिए। इसलिए ही हम लोगों ने प्रस्तावित संविधान में यह बाध्यता की है कि प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी अन्य के साथ जुड़कर रहने की स्वीकृति देनी ही होगी।

214 सर्वशक्तिमान तंत्र

2140. भारतीय संविधान इतना संतुलित होना चाहिए कि समाज-विरोधी तत्वों पर पूरी तरह नियंत्रण होने के साथ-साथ समाज की स्वतंत्रता में कोई बाधा उत्पन्न न हो। संविधान में ऐसे संशोधनों में सबसे बड़ी बाधा है भारत की वर्तमान राजनैतिक प्रणाली। लोकतंत्र के इस स्वरूप के कारण भारत का राजनेता सर्वशक्ति सम्पन्न, बेलगाम तथा उच्छृंखल शेर के समान हो गया है।

2141. संविधान निर्माताओं ने समाज के साथ इस सीमा तक विश्वासघात किया कि उन्होंने संविधान में वर्णित मूल अधिकार संशोधन तक के असीमित अधिकार अपने पास ही समेट लिए। सरकार ने तर्क दिया था कि आपातकाल में मूल अधिकार निलम्बित हो जाते हैं तथा सरकार को यह अधिकार होता है कि वह किसी भी व्यक्ति को बिना कारण बताये गोली मार दे।

2142. वर्तमान संसद के पास विधायिका के संपूर्ण अधिकार तो हैं ही, कार्यपालिका पर भी नियंत्रण के अधिकार हैं। यहां तक कि वर्तमान संसद के पास संविधान संशोधन तक के अधिकार हैं। जिस संविधान में संशोधन परिवर्तन के अन्तिम अधिकार संसद के पास हों, वह संविधान कैद में ही मानना चाहिए।

2143. भारत जैसे लोकतंत्र के लिए यह बात भी खतरनाक है कि संविधान संशोधन का अधिकार संसद के पास है, जिससे सरकार की तानाशाह बनने की आशंका हमेशा बनी रहती है। अगर सरकार कोई ऐसा संशोधन कर दे, जिससे उसकी अवधि ज्यादा लंबी हो जाए, तो लोकतंत्र को राजतंत्र बनने से रोक पाना मुश्किल होगा। संविधान संशोधन के लिए एक अलग इकाई का होना अनिवार्य है, जिससे जनता की स्वतंत्रता को कोई खतरा न हो।

2144. संविधान या तो लोक के द्वारा बनाया जायेगा अथवा लोक और तंत्र की समान भूमिका होगी। किन्तु हमारे संविधान निर्माताओं ने तंत्र को ही संविधान संशोधन के असीम अधिकार दे दिये, जिसका अप्रत्यक्ष अर्थ हुआ कि भारत में संविधान तंत्र नियंत्रित हो गया, अर्थात् तंत्र की तानाशाही हो गई। संविधान के मौलिक सूत्रों का

निर्माण समाजशास्त्र का विषय है और व्यावहारिक स्वरूप या भाषा राजनीतिशास्त्र का। भारत का संविधान बनाने में मौलिक सोच भी राजनेताओं की रही और भाषा देने में भी लगभग अधिवक्ताओं का ही अधिक योगदान रहा। परिणाम हुआ कि भारत की संवैधानिक संरचना वकीलों के लिए स्वर्ग के समान बन गई।

2145. अब यदि हम सत्ता में उच्च चरित्र की कल्पना करते हैं, तो वह तब तक सम्भव नहीं है, जब तक विधायिका के हाथ से संविधान संशोधन के असीम अधिकार किसी अन्य समकक्ष इकाई के पास न चले जायें।

214 संशोधनों की आवश्यकता

2146. भारत की वर्तमान अव्यवस्था तथा कुव्यवस्था के कारण भारतीय संविधान में ही विद्यमान हैं। अतः संविधान में आमूल-चूल संशोधन आवश्यक है। लोकतंत्र में सत्ता से सुशासन हो ही नहीं सकता, जब तक लोकतंत्र स्वशासन को स्वीकार न कर ले।

2147. वर्तमान भारत में संविधान संशोधन के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं है। संविधान संशोधन के अब तक दुनिया में चार मार्ग दिखते हैं—(1) जयप्रकाश जी का अर्थात् संसद में जाकर संविधान संशोधन, (2) अन्ना हजारे का मार्ग, जिसमें प्रबल जनमत खड़ा करके संविधान संशोधन करने हेतु संसद को सहमत करना, (3) ट्यूनीशिया और मिश्र का मार्ग, (4) लीबिया का मार्ग। लीबिया का मार्ग अनावश्यक और अनुपयुक्त है। अन्य तीन मार्गों के लिए जन जागरण करते हुए प्रतीक्षा करनी होगी।

2148. दोषपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था का मुख्य कारण दोषपूर्ण संवैधानिक व्यवस्था है। भारतीय संविधान में कुछ संशोधन करने से ग्यारह

समस्याओं का भी समाधान सम्भव है और उच्छृंखल राजनीति पर भी नियंत्रण सम्भव है।

215 संशोधन का अधिकार

2150. संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार तंत्र के पास रहना साम्यवाद की नकल है। संविधान पर हमारा अर्थात् समाज का नियंत्रण होना चाहिए। संविधान का स्वरूप समाज और राज्य के बीच द्विपक्षीय समझौते के रूप में होना चाहिए, किन्तु सभी मर्यादाओं को भूलकर संविधान निर्माताओं ने संविधान संशोधन तक के अबाध अधिकार एकपक्षीय तरीके से संसद या विधानसभाओं को सौंप दिये और समाज की भूमिका शून्य कर दी। संविधान का 'पालन और संशोधन' दोनों कार्य एक ही इकाई के पास इकट्ठा होने से उच्छृंखलता के अवसर पैदा हुए।

2151. कोई भी संविधान, तंत्र पर समाज का प्रतिनिधित्व करता है। सबसे ऊपर समाज, समाज के नीचे संविधान, संविधान के नीचे तंत्र, तंत्र के नीचे कानून और कानून के नीचे व्यक्ति होता है। संविधान समाज के द्वारा बनाया जाता है। तंत्र संविधान के अंतर्गत कार्य करने के लिए बाध्य होता है, इसलिए संविधान संशोधन में तंत्र की कोई भी भूमिका असंवैधानिक होती है। विधायिका तंत्र का एक महत्वपूर्ण विभाग है। भारतीय संविधान में विधायिका को किसी भी स्थिति में संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार देना उचित नहीं था। यह बहुत बड़ी भूल है। भारत में विधायिका ने कई बार इस भूल का दुरूपयोग किया है।

2152. यदि संविधान संचालक द्वारा बनाया जाता है या संचालक के नियंत्रण में होता है, तो उसे लोकतंत्र कहते हैं। भारत में लोकतंत्र

होते हुए भी इस तरह विकृत है कि संचालक घोषित रूप से तो संविधान द्वारा नियंत्रित है, किन्तु वास्तव में वह संविधान को ही नियंत्रित करता है क्योंकि संविधान संशोधन का अन्तिम अधिकार उसी के पास है।

2153. संविधान संशोधन का जो अधिकार संसद को संविधान में दिया गया है, उसकी मूल भावना उसे दिये गये दायित्व में आने वाली किसी तकनीकी बाधा को दूर करने तक सीमित था, न कि संविधान में स्पष्ट लिखी गई सीमाओं को बदलने तक।

2154. तंत्र जब चाहे तब संविधान में लोक से पूछे बिना मनमाना संशोधन कर ले और लोक यदि कहे कि संविधान असफल हो गया है, उसमें संशोधन किया जाए, तो अम्बेडकर जी को ढाल बनाया जाता है, विधानसभा में प्रस्ताव पारित होता है, न्यायालय में जाने की धमकियाँ दी जाती हैं। तंत्र इस तरह डराता है, जैसे कि किसी गुलाम ने अपने मालिक का अपमान कर दिया हो।

2155. किसी भी इकाई का एक निश्चित संविधान होता है जिसके अनुसार ही उस इकाई की व्यवस्था होती है। उक्त इकाई ही संविधान बनाती है और उक्त संविधान का पालन भी करती है। उक्त सम्पूर्ण इकाई को ही संविधान में संशोधन के भी अधिकार होते हैं। कोई बाहर की इकाई उस इकाई को संविधान संशोधन की सलाह दे सकती है, मदद कर सकती है किन्तु बाध्य नहीं कर सकती।

2156. न संविधान बनने में समाज की कभी कोई भूमिका रही, न बनने के बाद कभी राय ली गई। यहां तक कि संविधान संशोधन तक में, जनता की कभी राय नहीं ली गई। पता नहीं यह कैसा लोकतंत्र है। संविधान संशोधन के अंतिम अधिकार तंत्र से निकालकर लोक

को अथवा लोक द्वारा बनायी गई किसी व्यवस्था को दिया जाये, जिसमें तंत्र से जुड़ी किसी इकाई का कोई हस्तक्षेप न हो।

2157. किसी भी इकाई के संचालन के लिए एक सर्वस्वीकृत संविधान होता है, जिसे मानना इकाई के प्रत्येक व्यक्ति के लिए बाध्यकारी होता है। किसी भी संविधान के निर्माण में इस इकाई के प्रत्येक व्यक्ति की सहभागिता अनिवार्य होती है। इकाई के सब लोग मिलकर भी किसी व्यक्ति को संविधान निर्माण से अलग नहीं रख सकते।

2158. सर्वोच्च इकाई के निर्माण में प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका ही लोकतंत्र है। लोकतंत्र में संविधान का शासन होता है, शासन का संविधान नहीं। संपूर्ण राजनैतिक व्यवस्था एक संविधान के द्वारा संचालित होती है और संविधान से ऊपर लोक होता है जिसका अर्थ होता है भारत के प्रत्येक नागरिक का संयुक्त समूह। इस संविधान निर्माण या संशोधन से किसी भी नागरिक को अलग नहीं किया जा सकता, चाहे वह कोई भी हो। क्योंकि प्राकृतिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार, समान स्वतंत्रता प्राप्त है और वह व्यक्ति मतदान द्वारा अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को संविधान में शामिल करके स्वयं को व्यक्ति से नागरिक घोषित करता है। यह सारा कार्य उसकी सहमति से होता है।

2159. गांधी की मृत्यु होते ही पंडित नेहरू और अम्बेडकर ने मिलकर एक मिश्रित प्रणाली का संविधान बना दिया, जो न तो साम्यवादी देशों की तरह पाँच-सात लोगों की कमेटी को निर्णायक अधिकार देता था और न ही पश्चिमी तरीके से आम नागरिकों को संविधान में अंतिम हस्तक्षेप का।

2160. राज्य के अधिकतम तथा समाज के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएं

निश्चित करने वाले दस्तावेज को संविधान कहते हैं। आदर्श स्थिति में संविधान निर्माण या संशोधन में राज्य की शून्य भूमिका होती है। अर्द्ध लोकतंत्र में संविधान निर्माण या संशोधन का अधिकार समाज और राज्य का संयुक्त रुप से होता है। विकृत लोकतंत्र में तंत्र अकेला ही संविधान संशोधन कर लेता है। संविधान को कैद करके संसद एक ओर तो उसमें मनमाना संशोधन कर रही है, तो दूसरी ओर संविधान को भगवान कह कर हमें उसकी पूजा करने के लिए भी प्रेरित कर रही है।

2161. संविधान तो संसद के लिए बाध्यकारी दस्तावेज है, किन्तु जब भी संसद को संविधान से कोई बाधा पैदा हुई, त्योंही उन्होंने संविधान के लिखे अनुच्छेद को बदलकर अपनी बाधा दूर कर ली। आज तक के इतिहास में जनता के लिए संविधान में एक भी संशोधन नहीं हुआ। सभी संशोधन संसद या नेताओं के लिए उत्पन्न बाधाओं को दूर करने के लिए किये गये।

2162. समाज को समझाया जाता है कि संविधान तो भगवान का स्वरूप है। साथ ही संविधान में किसी भी प्रकार के फेरबदल का अंतिम अधिकार भी राजनेताओं ने अपने पास ही सुरक्षित रखा है, जो संविधान आज भारत में है या धीरे-धीरे उसको राजनेताओं ने फेरबदल करके जैसा बना दिया है, उसके अनुसार तो तंत्र पूरी तरह मालिक और लोक गुलाम से अधिक कोई हैसियत नहीं रखता। वोट देने के अतिरिक्त लोक के पास ऐसा कौन-सा अधिकार है, जिसमें तंत्र हस्तक्षेप न कर सके।

220 संविधान संशोधन

2200. न्यायपालिका और संसद समकक्ष होते हैं। संसद को किसी भी

संविधान संशोधन द्वारा अपने कानून को न्यायिक समीक्षा से बाहर रखने के असीम अधिकार नहीं होना चाहिए। आदर्श स्थिति तो यह होती कि भारतीय संविधान में ऐसी स्थिति की कल्पना करके उसकी व्यवस्था होती और यदि अब तक नहीं है, तो अब ऐसी व्यवस्था पर सोचा जाना चाहिए।

2201. कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका के समन्वित स्वरूप को राज्य, सरकार या शासन कहते हैं। प्रजातंत्र में कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं और (Check And Balance) सन्तुलन स्थापित करने वाले भी। राज्य के तीनों अंग पूरक तथा (Balancing) संतुलन बनाने का कार्य न करके शक्ति संचय की प्रतिस्पर्धा में लग जाते हैं तो राज्य कमजोर हो जाता है और यदि यह स्थिति लम्बे समय तक बनी रहे, तो प्रजातंत्र की विश्वसनीयता समाप्त होती है। भारत में राज्य के तीनों अंग शक्ति संचय की प्रतिस्पर्धा में लगे हैं। संविधान की सीमाओं में रहकर कार्यपालिका के मार्गदर्शन का कार्य विधायिका का दायित्व है, न कि कार्यपालिका पर नियंत्रण का। विधायिका संविधान द्वारा इंगित सीमाओं का किसी भी स्थिति में अतिक्रमण नहीं कर सकती। विधायिका को किसी भी स्थिति में संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार देना उचित नहीं था। यह बहुत बड़ी भूल है। भारत में विधायिका ने कई बार इस भूल का दुरूपयोग किया है। वर्तमान भारत में न्यायपालिका भी वैसी ही भूल कर रही है।

2202. संविधान तंत्र को लोक के प्रतिनिधि के रूप में नियंत्रित करता है। संविधान संशोधन में तंत्र का हस्तक्षेप शून्य तथा लोक का सम्पूर्ण

होना चाहिए। हम संविधान संशोधन में समाज की भूमिका तथा तंत्र पर नियंत्रण चाहते हैं। आदर्श लोकतंत्र में समाज का संविधान पर, संविधान का तंत्र पर, तंत्र का कानून पर तथा कानून का व्यक्ति पर नियंत्रण होता है।

2203. संविधान सर्वोच्च है और संसद संविधान के अंतर्गत ही संविधान संशोधन कर सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि संविधान का मूल ढाँचा, संसद के अधिकार क्षेत्र के बाहर है। संसद को संविधान संशोधन के असीमित अधिकार नहीं हो सकते। संसद को संविधान में संशोधन करने के अधिकार उस सीमा तक ही हैं, जहां तक उसका मूल ढाँचा प्रभावित न हो।

2204. भारत जैसे लोकतंत्र के लिए यह बात भी खतरनाक है कि संविधान संशोधन का अधिकार संसद के पास है, जिससे सरकार की तानाशाह बनने की आशंका हमेशा बनी रहती है। संविधान संशोधन के लिए एक अलग इकाई का होना अनिवार्य है, जिससे जनता की स्वतंत्रता को कोई खतरा न हो।

2205. यदि कोई समाज को धोखा देकर उसमें मनमाना संशोधन करने का अधिकार ले ले, तो संविधान संसद की जेल में है और उस जेल में डाले गए संविधान में जो संशोधन किए गए हैं, वे सब अवैध हैं। मैं वर्तमान संसद के संविधान संशोधन के असीम अधिकारों पर संविधान सभा के हस्तक्षेप की आवश्यकता उचित समझता हूं।

221 संविधान सभा

2210. संविधान किसी भी व्यवस्था की आत्मा माना जाता है, उसे मौलिक तथा दबाव मुक्त परिस्थितियों में बनना चाहिए। जिस समय संविधान बना उस समय की परिस्थितियों की मजबूरी भी

थी कि संविधान निर्माताओं को अंग्रेजों तथा कुछ भारतीय वर्गों से न चाहते हुए भी समझौते करने पड़े।

2211. संविधान संशोधन की वर्तमान दोषपूर्ण प्रक्रिया में इस प्रकार संशोधन होना चाहिए कि—(1) विधायिका के इन अधिकारों पर (Check) अंकुश लगे। (2) राजनेताओं पर भी (Check) अंकुश हो। (3) संविधान संशोधन के अधिकारों का दुरूपयोग न हो। (4) संविधान संशोधन की वर्तमान प्रक्रिया के साथ एक अन्य संविधान सभा को भी जोड़ा जाना चाहिए।

2212. वर्तमान समय में कोई संविधान सभा अस्तित्व में नहीं है किन्तु मैंने एक संविधान सभा का प्रस्ताव किया है। इस प्रस्तावित संविधान सभा में संविधान की वर्तमान प्रक्रिया यथावत रहेगी किन्तु संसद ऐसे संविधान में सिर्फ प्रस्तावक होगी, निर्णायक नहीं। संसद द्वारा पारित प्रस्ताव संविधान सभा में स्वीकृति के लिए जायेगा अथवा संविधान सभा का प्रस्ताव संसद में स्वीकृति के लिए जायेगा। यदि किसी प्रस्ताव पर दोनों के बीच अन्तिम रूप से असहमति हो जाती है तो प्रस्ताव जनमत संग्रह के लिए जायेगा और वह निर्णय अन्तिम होगा।

2213. मैंने एक प्रस्ताव यह भी दिया है कि यदि मूल अधिकार में कोई संशोधन करना हो तो संसद तथा संविधान सभा के प्रस्ताव पर जनमत संग्रह कराना अनिवार्य होगा। संविधान में किसी भी प्रकार का संशोधन संसद के प्रस्ताव पर संविधान सभा की सहमति से ही हो सकेगा। इससे संसद के एकाधिकार पर अंकुश लगेगा।

221 प्रस्तावित संविधान सभा का प्रारूप

2214. पहले व्यवस्था ठीक होगी, तब अच्छे लोगों को चुनने का आह्वान

करेंगे। इन सब स्थितियों में सोचा गया कि वर्तमान लोकसभा के समकक्ष एक संविधान सभा बने, जिसे संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो। यह संविधान सभा भी उसी प्रकार निर्वाचित हो जिस प्रकार वर्तमान संसद। संविधान सभा की सदस्य संख्या, चुनाव प्रणाली तथा समय सीमा वर्तमान लोकसभा के समान हो। चुनाव भी लोकसभा के साथ हो, किन्तु चुनाव दलीय आधार पर न होकर निर्दलीय आधार पर हो। संविधान सभा के सदस्य का कोई वेतन तथा भत्ता नहीं होगा। बैठक के समय भत्ता प्राप्त होगा। संविधान सभा का कोई कार्यालय या स्टाफ नहीं होगा। लोकपाल समिति का कार्यालय तथा स्टाफ ही पर्याप्त रहेगा अथवा परिस्थिति अनुसार कोई और व्यवस्था हो सकती है। यदि किसी प्रस्ताव पर संविधान सभा तथा वर्तमान संसद के बीच अंतिम रूप से टकराव होता है तो उसका निर्णय जनमत संग्रह से होगा। वर्तमान संसद के सभी दायित्व तथा अधिकार उसी प्रकार होंगे जैसे अभी हैं। सिर्फ एक ही अंतर आयेगा कि उसके संविधान संशोधन तथा अपने वेतन निर्धारण सम्बन्धी प्रस्ताव में संविधान सभा की सहभागिता आवश्यक होगी। संविधान सभा की सफलता विकेन्द्रीकरण की लड़ाई से कुछ आसान भी है और प्रभावी भी। यदि हमने किसी तरह लड़-भिड़ कर विकेन्द्रीकरण में सफलता प्राप्त कर ली और संविधान संशोधन का अधिकार संसद के पास ही रहा, तो संसद कभी भी हमारी उस सफलता को जनहित बोलकर (खत्म) वापस कर सकती है।

2215. संविधान सभा के निम्न कार्य होंगे—(क) लोकपाल समिति का चुनाव। (ख) संसद द्वारा प्रस्तावित संविधान संशोधन पर निर्णय

या संसद के समक्ष प्रस्ताव। (ग) सांसद, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश, मंत्री या राष्ट्रपति के वेतन भत्ते सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार और निर्णय। (घ) किसी सांसद के विरुद्ध उसके निर्वाचन क्षेत्र के अंतर्गत सरपंचो के बहुमत से प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव पर विचार और निर्णय। (च) लोकपाल समिति के भ्रष्टाचार के विरुद्ध शिकायत का निर्णय। (छ) व्यक्ति, परिवार, ग्रामसभा, जिला सभा, प्रदेश, सरकार तथा केन्द्र सरकार के आपसी सम्बन्धों पर विचार और निर्णय। (ज) अन्य संवैधानिक इकाइयों के बीच किसी प्रकार के आपसी टकराव के न निपटने की स्थिति में विचार और निर्णय।

2216. संविधान सभा भारतीय संविधान को संसद के ढाल बनने के रूप को भी कमजोर करेगी तथा संसद के संविधान संशोधन सम्बन्धी असीम अधिकारों में भी बाधक बनकर संविधान को तंत्र की मुट्ठी से भी आजाद करा देगी, संविधान सभा तो वर्ष में एकाध बार विशेष स्थिति में बैठेगी अन्यथा सारे काम तो वर्तमान संसद ही करेगी। संविधान सभा का मुख्य कार्य तो संविधान संशोधन पर विचार करने तक सीमित है। अन्य कार्य तो छोटे-छोटे हैं। एक-दो वर्ष में कभी बैठना पड़ सकता है, किन्तु प्रभाव इतना जबरदस्त होगा, जैसे साँप के जहरीले दांत ही टूट गये हों।

222 संविधान के दूरगामी दुष्परिणाम

2220. हम भारतीय संविधान के कुछ परिणामों की व्याख्या करें- (1) भारतीय संविधान का पहला परिणाम यह दिख रहा है कि तंत्र शरीफों, गरीबों, ग्रामीणों, श्रमजीवियों के विरुद्ध धूर्तों, अमीरों, शहरियों, बुद्धिजीवियों का मिला-जुला षड्यंत्र है। (2) स्पष्ट

दिख रहा है कि संसद एक जेलखाना है जिसमें हमारा भगवान रूपी संविधान कैद है। संविधान एक ओर तो संसद की ढाल बन जाता है तो दूसरी ओर संविधान संसद की मुट्ठी में कैद भी है। (3) न्यायपालिका और विधायिका के बीच अधिकारों की ऐसी छीना-झपटी दिख रही है जैसे लूट के माल के बंटवारे में दिखती है। (4) लोक और तंत्र के बीच दूरी लगातार बढ़ती जा रही है। लोक हर क्षेत्र में तंत्र का मुखापेक्षी हो गया है। यहां तक कि तंत्र और लोक के बीच शासक और शासित की भावना तक घर कर गई है। (5) समाज के हर क्षेत्र में वर्ग समन्वय के स्थान पर वर्ग विद्वेष बढ़ रहा है। (6) तंत्र का प्रत्येक अंग हर कार्य में समाज को दोष देने का अभ्यस्त हो गया है। तंत्र का काम सुरक्षा और न्याय है, किन्तु तंत्र इसके लिए भी लोक को ही दोषी कहता है। यहां तक कि कुछ वर्ष पूर्व भारत के प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और विपक्ष के नेता तक कह रहे थे कि संविधान दोषी नहीं है बल्कि उसका ठीक-ठीक पालन नहीं होता है। इसलिए पालन न करने वाले दोषी हैं। (7) दोषी संविधान है, व्यवस्था है, तंत्र है, और समाज में हम सुधरेंगे-जग सुधरेगा जैसा गलत विचार प्रसारित किया जा रहा है। (8) भारत में लगातार अव्यवस्था बढ़ती जा रही है। (9) भौतिक विकास तेज गति से हो रहा है और उससे भी अधिक तेज गति से नैतिक पतन हो रहा है।

2221. संविधान भारत में अच्छे लोगों की सुरक्षा और बुरे लोगों पर अंकुश लगाने के स्थान पर अच्छे लोगों पर अंकुश और बुरे लोगों को उच्छृंखल होने के अवसर पैदा कर रहा है।

2222. संविधान निर्माताओं ने विशेषाधिकार शब्द को ठीक से नहीं

समझा। धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में बहुमत अल्पमत के अधिकारों पर आक्रमण न करने लगे इसके लिए अल्पमत को कुछ सुरक्षात्मक प्रावधान अलग से दिये जाते हैं। भारत में अल्पमत को 'सुरक्षात्मक विशेषाधिकार' न देकर 'विस्तारात्मक विशेषाधिकार' दे दिया गया। यह प्रयास पूरी तरह गलत था। इस प्रयास ने बहुमत के मन में असुरक्षा और अन्याय की भावना पैदा की और अल्पमत को ब्लैकमेलिंग का अवसर दिया।

2223. भारतीय संविधान ने समाज को एक गलत संदेश दिया कि गैर-कानूनी भी अपराध है और अनैतिक भी। इस संदेश का यह दुष्परिणाम हुआ कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को अपराधी समझकर हीन भावना से ग्रसित हो गया।

2224. किसी भी संविधान का मुख्य उद्देश्य स्वतः कानून का पालन कर रहे नागरिकों को भयमुक्त तथा कानून का उल्लंघन करने वालों को पालन करने के लिए मजबूर करना होता है। भारत में संविधान के सक्रिय हुए लगभग सत्तर वर्ष हो गये और इतनी अवधि में कानून का पालन करने वाले कानून से भयभीत हैं और उल्लंघन करने वाले लगभग भयमुक्त।

2225. संविधान कोई धर्म ग्रंथ नहीं है जो समाज को ठीक से चलने की सलाह दे। बल्कि वह तो उसे दंडित करके ठीक से चलने हेतु मजबूर करने वाली इकाई है। यदि समाज में अपराध कर्म बढ़ रहे हैं तो उन्हें रोक पाने में असफलता का सारा दोष सरकार या संविधान का ही है।

2226. संविधान राज्य को बाध्य करता है कि वह अपनी सीमाओं का कभी उल्लंघन न करे। यदि राज्य उच्छृंखल होता है तो इसका

दोष संविधान का है, समाज का नहीं। क्योंकि संविधान द्वारा बनाए गए नियमों के अंतर्गत ही समाज चुनाव करता है और संविधान के नियम संसद अपने अनुसार बना लेती है। यदि भारत में व्यक्ति उच्छृंखल है और विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका मनमानी कर रहे हैं, तो इसका दोष या तो तन्त्र का है अथवा उस संविधान का है, जो इन पर नियन्त्रण नहीं कर पा रहा। तंत्र पूरी तरह उच्छृंखल और भ्रष्ट हुआ तो संविधान ने उसमें कहीं बाधा पैदा नहीं की। यदि तंत्र को नियंत्रित करने में संविधान अक्षम है तो संविधान में व्यापक फेर-बदल की आवाज उठाना गलत नहीं है।

223 देश की समस्याएं

2230. धर्म, जाति, समाज या अन्य कोई ग्रुप किसी एक भी समस्या के लिए दोषी नहीं। लगभग सभी समस्याएं राजनेताओं की व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के कारण पैदा हुई और बढ़ीं और तब राजनेताओं ने किसी आपरेशन का नाम देकर उसे समाप्त किया।

2231. आज भारत में समस्याएं पैदा नहीं हो रही बल्कि योजनापूर्वक पैदा की जा रही है, क्योंकि समाजवाद उनका लक्ष्य है और इनके समाजवाद का अर्थ है कि समाज की सभी समस्याओं का इस तरह समाधान करना कि उससे नई समस्याएं पैदा हों। भारतीय लोकतंत्र में तंत्र से जुड़े लोग किसी भी समस्या को सुलझने ही नहीं देते। वे हर मामले में प्रश्न खड़ा कर देते हैं जिससे समस्या ज्यों की त्यों बनी रहे अथवा उसके समाधान से ही कोई नई समस्या पैदा हो जाये। तंत्र से जुड़ी कोई भी इकाई न्याय और सुरक्षा के प्रति उतनी संवेदनशील नहीं जितनी जाति, धर्म, लिंग भेद के विस्तार में सक्रिय दिखती है। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि वे समस्याओं को

एक संकट का रुप देकर समाज में आतंक फैलाते हैं। ऐसे लोगों के पास समाधान नहीं होता। वे तो केवल समाज में भय और भ्रम पैदा करते रहते हैं।

2232. जब तक देश की राजनीति से परिवारवाद समाप्त नहीं होगा, तब तक भारत की समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं।

2233. हम सत्तर वर्षों के बाद समीक्षा करते हैं, तो पाते है कि हम हर मामले में पिछड़ते चले गये। उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा किन्तु सुरक्षा, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, विदेशी कर्ज, धार्मिक-जातीय टकराव आदि पर कोई रोक नहीं लगी बल्कि सच्चाई यह है कि प्रत्येक मामले में हम लगातार पिछड़ते गये। वर्तमान मोदी सरकार के समय कोई भी समस्या बढ़ी नहीं है भले ही घटने की गति उम्मीद से कम हो। उच्च स्तर पर भ्रष्टाचार पूरी तरह रूक गया है। अब मुस्लिम साम्प्रदायिकता भी परेशान है। ये दोनों समस्याएं पिछली सरकार की देन है।

2234. तानाशाही में समस्याओं का समाधान कर दिया जाता है, जबकि लोकस्वराज्य में समस्याएं पैदा ही कम होती हैं। लोकतंत्र में समस्याओं का विस्तार होता जाता है। गर्म लोहे को पीटकर ही उसका स्वरूप बदला जा सकता है, किन्तु इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि इस तरह गर्म लोहा न हाथ से पीटा जा सकता है, न लकड़ी से और न ही गर्म लोहे से। अभी समस्याओं के सुलझते तक हमें लोकतंत्र या तानाशाही के विवाद से दूर रहना चाहिए। जब समस्याएं सुलझ जाएगी तब हम इस मुद्दे पर विचार कर लेंगे।

2235. आजादी के बाद से ही हमने मान लिया है कि हमारी सब समस्याओं का समाधान राजनीतिक प्रक्रिया में निहित है, लेकिन खुद उस राजनीतिक प्रक्रिया का समाधान कहां है? इस बारे में कभी भी हमने गंभीरता से विचार नहीं किया। जबकि जरूरत तो इस बात की है कि वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था के विकल्प की बात भी उठनी चाहिए।

2236. छः समस्याएं विशेष रुप से घातक हैं—(1) हिन्दुत्व का घटता मनोबल, (2) हिंसा पर बढ़ता विश्वास, (3) स्वार्थभाव वृद्धि, (4) आर्थिक विषमता, (5) चरित्रपतन और (6) केन्द्रीयकरण।

2237. नीतिशास्त्र के अनुसार तीन का केन्द्रीयकरण घातक होता है—(1) सम्मान का नैतिकता से हटकर बुद्धिजीवियों के पास बढ़ना, (2) धन सम्पत्ति का श्रम से हटकर पूंजीपतियों के पास इकट्ठा होना, (3) शक्ति का समाज से निकल कर राजनीति के पास इक्ट्ठा होना।

2238. मेरे विचार में कुल समस्याएं पांच प्रकार की होती हैं—(1) व्यक्ति निर्मित, (2) सरकार निर्मित, (3) प्राकृतिक, (4) सामाजिक और (5) भ्रम निर्मित। समस्याएं पांच ही होती हैं—(1) चोरी-डकैती, लूट, (2) बलात्कार, (3) मिलावट, (4) जालसाजी, धोखाधड़ी और (5) हिंसा, आतंक, बल प्रयोग। ये सभी समस्याएं अपराध कही जाती हैं। भारत में इन समस्याओं का विस्तार राज्य की कम सक्रियता के कारण है।

2239. सरकार निर्मित समस्याएं छह प्रकार की हैं—(1) भ्रष्टाचार, (2) चरित्र पतन, (3) सांप्रदायिकता, (4) जातीय कटुता, (5) आर्थिक असमानता और (6) श्रमशोषण। भारत में इन समस्याओं का विस्तार राज्य की अधिक सक्रियता के कारण है।

2240. समस्याओं का रोना रोने की अपेक्षा उसे चुनौती मानकर समाधान में लग जाना चाहिए।

2241. चिन्ता व्यक्ति को सक्रियता की दिशा में तो ले जा सकती है, किन्तु चिन्तन के अभाव में चिन्ता समाधान की दिशा में नहीं बढ़ सकती।

225 समाधान

2250. तिहत्तरवें संविधान संशोधन ने ग्राम सभा सशक्तिकरण के माध्यम से नई समाज रचना का एक अद्भुत मार्ग उपलब्ध कराया है। यह मार्ग पूरी तरह संवैधानिक है, सरकार सम्मत है, सभी समस्याओं का समाधान है। लेकिन राज्य ने ग्राम सभाओं को कार्यपालिक (Executive) अधिकार दिये, विधायी नहीं। नई व्यवस्था के बनाने में अम्बेडकर जी का संविधान सबसे बड़ी बाधा है। इस नई व्यवस्था से जन्म के आधार पर जाति व्यवस्था कमजोर होगी। इससे वर्ग-विद्वेष भी घटेगा, जो अन्ततः अम्बेडकर के नाम का लाभ उठाने वालों को कमजोर करेगा।

2251. सांसद को दल प्रतिनिधि की जगह जन प्रतिनिधि होना चाहिए। संसदीय लोकतंत्र को बदलकर निर्दलीय व्यवस्था की ओर जाना चाहिए। जिस तरह आज संसद असंसदीय दृश्य प्रस्तुत करती है, वह हमारे लिए शर्म और चिन्ता का विषय है। भारतीय संविधान में कुछ मौलिक सुधार की आवश्यकता है। मुझे विश्वास है कि भारतीय संविधान की कमजोरियों को दूर करने की हमारी कोशिश विश्वव्यापी परिवर्तन की दिशा में ले जा सकती है।

2252. समस्या विश्वव्यापी है, किन्तु समाधान की शुरूआत भारत कर सकता है और भारत की शुरूआत हम आप कर सकते हैं— (1) परिवार और गाँव को तत्काल संवैधानिक अधिकार दिये जाने

चाहिए। इससे तंत्र का बोझ घटेगा जिससे तंत्र सुरक्षा और न्याय की ओर अधिक सक्रिय हो सकेगा, (2) संविधान को संसद के जेलखाने के से मुक्त कराने की पहल होनी चाहिए। संविधान संशोधन के अंतिम अधिकार तंत्रमुक्त किसी इकाई को दिये जाने चाहिए, 3 लोकतंत्र, मूल अधिकार, अपराध, समानता आदि की वर्तमान भ्रमपूर्ण मान्यताओं को चुनौती देकर वास्तविक अर्थ स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए।

2253. निम्नलिखित गंभीर मुद्दों पर विद्वानों को बैठकर चर्चा करनी चाहिए—(1) भारतीय संविधान समीक्षा, (2) मूल अधिकार, 3. ग्राम सभा सशक्तिकरण, (4) राइट टू रिकाल, (5) व्यक्ति और नागरिक का फर्क, (6) नई संवैधानिक व्यवस्था का स्वरूप, (7) लोक संसद, (8) राज्य के दायित्व और स्वैच्छिक कर्तव्य का फर्क और (9) संविधान में स्वतंत्रता महत्वपूर्ण या समानता।

2254. मेरा यह कहना है कि संविधान लोकतंत्र की आत्मा होती है, किन्तु भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था ने उसमें मनमाने संशोधन करके उसका स्वरूप बिगाड़ दिया। उस बिगड़े हुए तथा लगातार बिगड़ते जा रहे संविधान को संसद के एकाधिकार से मुक्त कराकर उसका स्वच्छ रूप स्थापित करना हमारा उद्देश्य है। हम संविधान की आवश्यकता मानते हैं, किन्तु वह संसद के हस्तक्षेप से बाहर होना चाहिए। उसे मौलिक तथा दबाव मुक्त परिस्थितियों में बनना चाहिए। हम उस दिन की प्रतिक्षा कर रहे हैं, जब हमारा संविधान तंत्र की मुट्ठी से मुक्त होकर खुली हवा में सांस ले सकेगा तथा लोक के साथ मिलकर तंत्र को नियंत्रित कर सकेगा।

2255. सत्ता का अधिकांश भाग केन्द्र सरकार के हाथों से निकलकर

नीचे वाली इकाइयों के पास हो। नीचे की इकाइयों के विभाग भी परिवार सभा, ग्राम सभा के पास अधिक तथा ऊपर की इकाइयों के पास कम हों। संविधान संशोधन में वर्तमान प्रणाली के साथ-साथ किसी अन्य इकाई का भी अंकुश हो जिसके पास कानून बनाने तथा पालन करवाने का अधिकार न हो। संविधान संशोधन के अधिकार वर्तमान संसद के साथ-साथ प्रस्तावित संविधान सभा के पास जाने से समाधान की शुरूआत सम्भव है।

2256. संविधान संशोधन में लोक की प्रत्यक्ष भूमिका हो तथा संविधान संशोधन/परिवर्तन में तंत्र का ही अंतिम अधिकार न हो यह आदर्श लोकतंत्र है। यह लड़ाई सन् चौहत्तर में शुरू हुई थी और आज तक जारी है।

2557. संविधान संशोधन के असीम अधिकार संसद के पास न रहकर उसमें लोक के भी हस्तक्षेप का कोई न कोई प्रावधान होना चाहिए चाहे वह जनमत संग्रह हो अथवा संविधान सभा द्वारा अथवा लोक संसद/जन संसद या कोई और तरीका हो।

2258. संविधान संशोधन के लिए कोई ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए जिसमें तंत्र का कोई हस्तक्षेप न हो। आदर्श लोकतंत्र में तो संविधान संशोधन में तंत्र की भूमिका शून्य होनी चाहिए किन्तु इसके लिए वर्तमान स्थिति में निम्न तरीके हो सकते हैंः- (1) जनमत संग्रह, (2) मतदाताओं की एक तात्कालिक संख्या निकालकर जनमत संग्रह, (3) लोक संसद, (4) प्राचार्य सभा, (5) ग्राम सभा और (6). केंद्र सभा। संविधान संशोधन के लिए वर्तमान संसद और 'प्रस्तावित तरीके' की संयुक्त सहमति के बाद ही संविधान संशोधन होना चाहिए। संविधान संशोधन के अतिरिक्त यदि कोई

बहुत विवादास्पद विषय हों तो उसे जनमत संग्रह के द्वारा हल करना चाहिए।

230 संगठन

2300. संगठन विचारों की कब्र होता है। यह मजबूतों से सुरक्षा के उद्देश्य से बनता है और कमजोरों का शोषण करता है। सभी संगठन, अधिक शक्तिशाली संगठनों से सुरक्षा तथा असंगठितों के शोषण की योजनाओं में लगे रहते हैं। जब समाज में असुरक्षा का भाव हो तब संगठन अधिक बनते हैं। एक सामान्य सिद्धांत है कि संगठन में शक्ति होती है। दो संगठित व्यक्ति दस असंगठितों पर भारी पड़ते हैं। संगठन में न्याय की जगह अपनत्व तथा कर्तव्य की जगह अधिकारों के लिए संघर्ष भाव रहता है। गिरोह और संगठन में इतना ही फर्क होता है कि गिरोह अपराध अधिक करता है, तो संगठन सिर्फ शोषण और ब्लैकमेल तक सीमित रहता है।

2301. संगठित वर्गों और असंगठित व्यक्तियों के बीच की दूरी लगातार बढ़ रही है और संगठन बनाकर इस दूरी को कम नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये संगठन तो स्वयं ही टकराव, घृणा, द्वेष के आधार पर जीवित हैं। अतः इनकी संगठन क्षमता और उपयोगिता को चुनौती देनी होगी।

2302. धर्म, जाति, भाषा, लिंग, राष्ट्र, क्षेत्र, उम्र, आर्थिक स्थिति और उत्पादन, उपभोग संगठन के असामाजिक आधार हैं। इन्हें कमजोर करना होगा। प्रवृत्ति ही संगठन का उपयुक्त आधार है। सभी अच्छे लोगों को समाज-विरोधी तत्वों के विरुद्ध संगठित हो जाना चाहिए। वर्तमान संगठन ऐसे संगठन में बाधक हैं।

2303. क्रान्ति स्वतः सफल नहीं होती। संगठन सुदृढ़ होने और क्रान्ति के

संचालकों की दृष्टि स्पष्ट तथा रचनात्मक होने से ही क्रान्ति सफल होती है।

2304. भारत में अनेक संगठन ऐसे हैं, जो डंके की चोट पर वोटों का भय दिखाकर लोकतांत्रिक व्यवस्था को ब्लैकमेल करते हैं तथा अव्यवस्था फैलाते रहते हैं। इनमें चार संगठन प्रमुख हैं - (1) महिला उत्पीड़न के नाम पर, (2) हरिजन-आदिवासी उत्पीड़न के नाम पर, (3) हिन्दू मुसलमान उत्पीड़न के नाम पर और (4) महंगाई वृद्धि के नाम पर। ये सभी संगठन समाज सेवा के नाम पर सक्रिय दिखते हैं, किन्तु सच्चाई यह है कि ये चारों ही सम्पूर्ण समाज का उत्पीड़न करते रहते हैं।

2305. जब व्यवस्था ठीक हो, आम लोगों को स्वाभाविक रूप से या वैधानिक रूप से न्याय मिलता हो, तब संगठन या गिरोह न बनते हैं, न उनकी आवश्यकता होती है।

2306. व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है या अव्यवस्था का स्वरूप ग्रहण कर लेती है स्वाभाविक न्याय नहीं मिल पाता और नागरिकों का कानून व्यवस्था पर से विश्वास उठ जाता है, तब न्याय और सुरक्षा के लिए संगठन स्वाभाविक रूप से बनते हैं।

2307. मैं संगठन से कभी नहीं जुड़ सका, क्योंकि संगठन कभी विचार-मंथन को बर्दाश्त ही नहीं करता।

2308. मेरा तो मत है कि भारत में संस्था बनाने की तो छूट हो, किन्तु संगठन बनाने की संवैधानिक मान्यता समाप्त कर दी जाए।

231 संस्था

2310. संस्था व्यक्तियों के उस समूह को कहते हैं, जो कर्तव्य करते हैं, अधिकारों की कोई चिन्ता नहीं करते।

2311. वर्तमान भारत में संगठन मजबूत हो रहे हैं और संस्थाएं कमजोर हो रही हैं। संगठन में शक्ति और विस्तार के अधिक अवसर रहते हैं तो संस्थाओं में सम्मान और क्षरण। इस्लाम, संघ परिवार, साम्यवाद का स्वरूप संगठनात्मक है, तो गांधीवादी, आर्यसमाज, गायत्री परिवार आदि का स्वरूप संस्थागत। गांधीवादी संस्थाएं, आर्यसमाज, गायत्री परिवार का विस्तार या तो रुक गया है या नीचे की ओर है।

232 संगठन और संस्था में तुलना

2320. संगठन हमेशा कमजोर लोग मजबूतों से सुरक्षा के उद्देश्य से बनाते हैं, तो संस्था मजबूत लोग कमजोरों की सहायता के लिए बनाते हैं। संस्था में कर्तव्य और त्याग भाव होता है, अधिकार और शक्ति नहीं। संस्थाएं, समाज सहायक होती हैं और संगठन ब्लैकमेलर। संगठन में तानाशाही होती है, संस्था में लोकतंत्र। संगठन में अनुशासन होता है, संस्था में स्वशासन। संगठन में मौलिक अधिकार संयुक्त होते हैं, तो संस्था में अलग-अलग।

2321. संगठन और संस्था का स्वरूप अलग-अलग होता है। संस्था न्याय का पक्ष लेती है और संगठन अपनत्व का। संस्था दूसरों की सहायता करती है और संगठन सिर्फ अपनों का। संस्था सिर्फ कर्तव्य प्रधान होती है और संगठन अधिकार प्रधान।

2322. आदर्श समाज व्यवस्था में परिवार, गाँव और देश का स्वरूप संगठनात्मक होता है तथा जाति, धर्म, राष्ट्र का स्वरूप संस्थागत। विकृत समाज व्यवस्था में इससे ठीक उलटा होता है। वर्तमान भारत में विकृत समाज व्यवस्था होने के कारण जाति, धर्म, और राष्ट्र का स्वरूप संगठनात्मक बन गया है।

233 आचार्यकुल

2330. आचार्यकुल में चुनाव नहीं होता, बल्कि मनाव होता है। जिसका अर्थ यह होता है कि जिस व्यक्ति का नाम पहले आता है, उसे सब लोग मिलकर तैयार करते हैं। यह प्रणाली आदर्श होने के बाद भी अव्यावहारिक है। कालान्तर में इसका दुरूपयोग हुआ और उसका परिणाम हुआ कि आचार्यकुल में कई गुट बन गये।

234 आर्य समाज

2340. व्यक्ति को व्यक्तिगत निर्णय की स्वतंत्रता होनी चाहिए। सर्व हितकारी नियम पालन में सभी परतंत्र रहे। भारत की सम्पूर्ण व्यवस्था में स्वामी दयानन्द जी के इस निष्कर्ष के विपरीत कार्य हो रहा है अर्थात् समाज का सत्तासीन वर्ग सर्व हितकारी नियम पालन में भी परतंत्र न होकर स्वतंत्र हैं, जबकि सत्ता से दूर रहने वाले सर्व हितकारी नियम पालन में भी परतंत्र हैं और व्यक्तिगत नियम पालन में भी। आर्यसमाज ने भी इस संबंध में औपचारिकता तक ही अपने को सीमित कर लिया है।

2341. आर्यसमाज किसी भी स्थिति में आध्यात्मिक संस्था नहीं है। आर्यसमाज एक सामाजिक संस्था है। आध्यात्म भी उसका उसी प्रकार एक अंग है, जिस प्रकार राजनीति।

2342. आज यदि सम्पूर्ण देश में राजनीति पूरी तरह बेलगाम होकर धन, सत्ता और स्वार्थ के पीछे दौड़ रही है, तो क्या आर्यजन सिर्फ आध्यात्म तक ही सीमित रहें। राजनीति पर अंकुश हेतु समाज को मजबूत करने का प्रयत्न आर्यसमाज को करना चाहिए था और यदि अब तक नहीं हुआ तो अब तत्काल होना चाहिए।

यद्यपि राजनीति में जाने का स्पष्ट निर्देश देना उचित नहीं है, किन्तु राजनीति पर समाज का अंकुश तो रहना ही चाहिए।

2343. पूर्व में एक सामान्य आर्यसमाजी के विषय में यह धारणा थी, कि वह झूठ नहीं बोलेगा। यदि ऐसा व्यक्ति राष्ट्रीय अध्यक्ष हो, तब तो उसके प्रति शत-प्रतिशत ही विश्वास होता था और यदि ऐसा व्यक्ति संन्यासी भी हो, तब तो उसके कथन पर अविश्वास हो ही नहीं सकता। स्वामी अग्निवेश के विषय में मेरी सारी मान्यताएँ झूठ सिद्ध हो गयी।

2344. अनेक निष्कर्ष ऐसे भी होते हैं जो यथार्थ होते हुए भी उनके क्रियान्वयन की प्राथमिकताएँ देशकाल, परिस्थिति अनुसार बदलती रहती हैं।

2345. (1) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिए सदा तैयार रहना चाहिए। (2) प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत मामलों में निर्णय की पूरी-पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए और सामूहिक मामलों में निर्णय करने में सब परतंत्र रहें। मैंने अपने जीवन में इन दो बातों पर अमल करने का पूरा प्रयत्न किया।

2346. दुर्भाग्य है कि स्वामी जी और गांधी जी की मृत्यु के बाद आर्यसमाज भी लोक स्वराज्य को भूल गया और गांधीवादियों ने तो सत्ता में जाकर या सर्वोदय बनाकर लोक स्वराज्य का ही गला घोंटना शुरू कर दिया।

2347. आर्यसमाज श्रद्धा, तर्क और आत्मविश्वास का अनूठा संगम है। प्राचीन समय में सप्ताह में एक दिन यज्ञ के माध्यम से इस संगम में डुबकी लगाने का प्रशिक्षण आर्यसमाज ही देता था। दुनिया में कहीं इतनी अच्छी व्यवस्था नहीं थी। वर्तमान समय में आर्यसमाज

श्रद्धा, तर्क और आत्मविश्वास को अलग-अलग करने की भूल कर रहा है। परिणाम स्वरूप समाज में श्रद्धा की जगह रूढ़िवाद, तर्क की जगह नास्तिकता तथा आत्मविश्वास की जगह गुलामी बढ़ती जा रही है। आर्यसमाज को इस पर विचार करना चाहिए।

240 अधिकार

2400. व्यक्ति और नागरिक अलग-अलग होते हैं। व्यक्ति समाज का अंग होता है और नागरिक राष्ट्र का।

2401. भारतीय व्यवस्था तीन प्रकार के अधिकारों का सम्मिश्रण है जिनमें—(1) मौलिक, (2) संवैधानिक और (3) सामाजिक अधिकार शामिल हैं। तीनों का अलग-अलग स्वरूप भी होता है और सीमाएं भी।

2402. अधिकार तीन प्रकार के होते हैं— (1) प्राकृतिक अथवा मौलिक, (2) संवैधानिक, (3) सामाजिक। मौलिक अधिकार व्यक्ति के होते हैं, संवैधानिक अधिकार नागरिक के होते हैं तथा सामाजिक अधिकार दोनों के होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मूल अधिकार समान होते हैं। संवैधानिक और सामाजिक अधिकार कम-ज्यादा हो सकते हैं। व्यवस्था के लिए हम दूसरे को अपनी सहमति से शक्ति देते हैं, अधिकार नहीं। शक्ति को अधिकार कहना गलत है।

2403. मूल अधिकारों पर आक्रमण ही अपराध माना जाता है। संवैधानिक अधिकारों पर आक्रमण अपराध न होकर गैर-कानूनी होता है। सामाजिक अधिकारों का उल्लंघन न अपराध होता है, न गैर-कानूनी। वह तो मात्र अनैतिक ही हुआ करता है।

2404. प्रत्येक व्यक्ति की हर समय तीन अलग-अलग भूमिकाएँ होती हैं। असीम स्वतंत्रता मौलिक अधिकार होने से, वह हर समय व्यक्ति

के पास रहता है। सम्पूर्ण मानवीय व्यवस्था से जुड़ने के कारण वह समाज का अंग है तथा किसी राष्ट्र के संविधान से जुड़ा होने से नागरिक होता है। तीनों भूमिकाओं की अपनी-अपनी सीमा होती है। कोई भी व्यक्ति अपनी किसी भी भूमिका की सीमा नहीं तोड़ सकता। यदि किसी व्यक्ति या किसी इकाई को गुलामी महसूस हो तथा गुलामी से मुक्ति का कोई संवैधानिक मार्ग न दिखे, तब व्यक्ति को अधिकारों के प्रति जागृत होना या जागृत करना चाहिए, अन्यथा अधिकारों के लिए जागृत करना घातक है। कर्तव्य के प्रति जागृत करना चाहिए।

2405. किसी की प्रशंसा करने का अथवा नायक कहने का आपको अधिकार है, तो किसी दूसरे को उसकी आलोचना करने अथवा खलनायक कहने का उतना ही अधिकार है। किंतु इस संबंध में समाज नियम भी बना सकता है और बहिष्कार भी कर सकता है। राज्य तब तक दखल नहीं दे सकता जब तक व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आक्रमण न किया गया हो।

2406. किसी अधिकार प्राप्त व्यक्ति द्वारा अधिकारों का दुरूपयोग, अधिकारदाता के प्रति अपराध है। ऐसे अधिकार सम्पन्न व्यक्ति को घूस देकर उन अधिकारों का लाभ उठाना कोई अपराध नहीं है।

2407. अधिकार प्रधान लोग 'आदर्श को व्यावहारिक' बनाकर उनके अनुसार अपनी क्रियाओं को ढाल लेते हैं, जबकि शेष समाज से ये लोग 'व्यावहारिकता को आदर्श' के रूप में ढालकर देखना चाहते हैं।

2408. प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त है, चाहे वह पागल और अपराधी ही क्यों ना हो। कल्पना करिए कि यदि कुछ डॉक्टरों ने

मिलकर किसी व्यक्ति को षड्यंत्रपूर्वक पागल घोषित कर दिया, तब क्या उसकी स्वतंत्रता छीन ली जाएगी? और ऐसी स्वतंत्रता छीनने का नियम कानून बनाने की व्यवस्था से भी उसे बाहर कर दिया जाएगा?

2409. भारत 140 करोड़ व्यक्तियों का देश है और उसमें प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार समान हैं। इनमें किसी भी प्रकार का महिला या पुरुष या कोई अन्य भेदभाव नहीं किया जा सकता।

2410. निर्णय का अधिकार व्यक्ति या परिवार की स्वतंत्रता होनी चाहिए। समाज मार्गदर्शन कर सकता है, थोप नहीं सकता।

2411. अधिकार और शक्ति अलग-अलग होते हैं। अधिकार को राईट और शक्ति को पावर कहा जाता है। जब किसी व्यक्ति के अधिकार किसी दूसरे व्यक्ति के पास जाते हैं, तब वह शक्ति बन जाते हैं। कोई अधिकार किसी अन्य को दिये जाते हैं तो वे दाता की अमानत होते हैं, ग्रहणकर्ता के अधिकार नहीं। इसलिए राइट टू रिकाल के माध्यम से हम अपना अधिकार कभी भी वापस ले सकते हैं। हम अपना पावर आफ एटोरनी भी वापस ले सकते हैं। किसी भी समझौते के अंतर्गत दिया गया हमारा मौलिक अधिकार हमारी सहमति तक ही प्रभावी रह सकता है, सहमति किसी भी समय किसी भी परिस्थिति में वापस ली जा सकती है। किसी विवाद के मामले में समाज निर्णय कर सकता है।

2412. किसी भी लोकतांत्रिक संविधान में व्यक्ति और नागरिक पृथक-पृथक होते हैं। व्यक्ति वे होते हैं, जिन्हें मूल अधिकार तो होते हैं, किन्तु संवैधानिक अधिकार नहीं। नागरिक को दोनों ही अधिकार प्राप्त होते हैं। विधायिका को भ्रम है कि व्यक्ति और नागरिक इस

प्रकार एक होते हैं कि हर व्यक्ति ही नागरिक होने से उसे प्राप्त मूल अधिकार भी संवैधानिक ही होते हैं। दूसरी ओर न्यायपालिका को भ्रम है कि प्रत्येक नागरिक व्यक्ति होता है और उसे प्रदत्त संवैधानिक अधिकार भी मूल अधिकार ही माने जाने चाहिए।

241 राज्य के कर्तव्य, दायित्व और अधिकार

2413. राज्य के दायित्व और कर्तव्य अलग-अलग होते हैं। मौलिक अधिकारों की सुरक्षा राज्य का दायित्व होता है और संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा उसका कर्तव्य। सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा समाज का दायित्व नहीं होता, कर्तव्य होता है।

2414. अधिकार भी व्यक्ति, परिवार, समाज और राज्य के पृथक-पृथक निश्चित, घोषित और सीमाबद्ध होते हैं। कोई इकाई किसी अन्य के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं कर सकती। ऐसा अतिक्रमण अपने आप में अपराध, गैर-कानूनी या असामाजिक कार्य हो जाता है।

2415. किसी भी व्यक्ति या राज्य का यह अधिकार है कि वह किसी भी अन्य की किसी भी रूप में मदद कर सकता है, किन्तु किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी अन्य के अधिकार काटकर किसी अन्य को दे सके, क्योंकि अधिकार सबके समान होते हैं।

2416. स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है, तो सहजीवन और परिवार भावना विकसित करना उसका कर्तव्य। सुरक्षा और न्याय प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार होता है, जबकि राज्य द्वारा दी गई अन्य सुविधाएं व्यक्ति का अधिकार नहीं होती, किन्तु राज्य द्वारा जनकल्याणकारी कार्यों को अपना दायित्व मान लेने से आम नागरिक इन सुविधाओं को अपना अधिकार समझने लगते हैं।

2417. राज्य द्वारा अपने नागरिकों को मूल अधिकार के अतिरिक्त जो भी अधिकार दिये जाते हैं, वे राज्य के द्वारा स्वैच्छिक रूप से दिये जाते हैं तथा राज्य इन्हें कभी भी वापस ले सकता है। यदि राज्य को विश्वास हो जाये कि अमूक अधिकारों के कारण गांवों में भ्रष्टाचार या झगड़े बढ़ रहे हैं तो राज्य इन्हें वापस भी कर सकता है। यदि ऐसा अधिकार संविधान प्रदत्त है तब राज्य बिना संविधान में बदलाव किये कुछ नहीं कर सकता।

242 अधिकारों का दुरुपयोग

2420. चरित्र पतन अथवा अन्य गड़बड़ियों के लिए ये वर्तमान राजनेता दोषी नहीं हैं और न ही भारत के मतदाता दोषी हैं। वास्तव में सारा दोष पंडित नेहरू और भीमराव अम्बेडकर सहित उन लोगों का है, जिन्होंने संविधान संशोधन का अधिकार उन्हीं राजनेताओं को दे दिया, जो संविधान के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य हैं।

2421. दूध की निगरानी के लिए बिल्ली को पहरेदार बनाकर यदि हम दूध की सुरक्षा चाहते हैं तो, या तो हमारी नीयत खराब है या मूर्खता है। भारत की राजनैतिक व्यवस्था में हम जो अधिकार देते हैं, वे हमारी अमानत हैं। पाने वाले नेता के अधिकार नहीं जबकि वे इसे अपना अधिकार मानते हैं।

2422. नियोक्ता को नियुक्त के अनुशासन, निलंबन या निष्कासन का अधिकार होता है। इस अधिकार को चुनौती नहीं दी जा सकती। यदि नियोक्ता पागल हो जाये, नाबालिग हो अथवा गंभीर रूप से बीमार हो, तभी उसके अधिकार किसी को स्थानांतरित हो सकते हैं अन्यथा नहीं।

2423. जिस पद के अधिकार क्षेत्र में कुछ आर्थिक अथवा शक्ति लाभ की

गुंजाइश हो, वहां पदलोलुपता बढ़ जाती है। ऊपर की इकाई उस पद पर नियंत्रण और सतर्कता का तरीका खोजती है।

242 विशेषाधिकार

2424. किसी भी वर्ग को जब विशेष अधिकार दिये जाते हैं, तब अन्याय तथा अत्याचार बढ़ते हैं। जिस वर्ग को विशेषाधिकार दिये जाते हैं, उस वर्ग के शरीफ लोगों को आंशिक न्याय मिलता है तथा धूर्त लोगों को अन्याय करने के असीमित अवसर प्राप्त हो जाते हैं। ये धूर्त लोग शरीफ लोगों के आंशिक लाभ का उदाहरण दे देकर अपने लाभ के अवसर स्थाई करते जाते हैं। स्वतंत्रता के पूर्व सवर्णों को अथवा पुरुषों को जो विशेषाधिकार दिये गये, उनका दुष्परिणाम हुआ कि सवर्णों और पुरुषों ने वर्ग के रूप में अनुसूचित जातियों, अवर्णों तथा महिलाओं को दबा दिया।

2425. अधिकार तो किसी भी परिस्थिति में सबके समान ही होने चाहिए, भले ही हम परिस्थिति अनुसार किसी व्यक्ति को विशेष सुविधा क्यों न दें। किसी को भी विशेष अधिकार देते हैं, तो समानता का सिद्धांत अपने आप खंडित हो जाता है। किसी विशेष स्थिति में किसी की सहायता की जा सकती है और की जानी चाहिए किन्तु अधिकार किसी को अलग से नहीं दिये जा सकते। सुविधा देना प्राप्त करने वाले के प्रति एहसान होता है और अधिकार देना इसके ठीक विपरीत।

243 कर्तव्य, दायित्व और अधिकार

2430. कर्त्तव्य और अधिकार एक-दूसरे के पूरक होते हैं। किसी व्यक्ति के कर्त्तव्य ही किसी दूसरे व्यक्ति के अधिकारों की पूर्ति करते हैं। कानून के भय से पूरा किये जाने वाले कर्त्तव्य में गुणवत्ता का

भी अभाव होता और भ्रष्टाचार, छल-कपट, दांवपेंच भी मिला हुआ रहता है। ऐसा कर्त्तव्य सिर्फ दूसरे के अधिकारों की पूर्ति की खानापूर्ति तक ही सीमित रहता है, संतुष्टि तक नहीं।

2431. अपराधों को रोकना सरकार का दायित्व है, जबकि भूलों को रोकना सरकार का दायित्व न होकर कर्तव्य तक सीमित है। अपराधी तत्व हमेशा प्रयत्न करते हैं कि सरकार दायित्वों से ध्यान हटाकर कर्तव्य की दिशा में लगातार बढ़े।

2432. यदि भारत सरीखा विकृत लोकतंत्र हो, तो सरकार ही न्याय देने की एकमात्र इकाई होती है। जिसमें विधायिका न्याय को परिभाषित करती है। न्यायपालिका उक्त परिभाषा को आधार बनाकर न्याय अन्याय का परीक्षण करती है तथा कार्यपालिका तदनुसार ही न्याय प्रदान करती है। यदि तानाशाही या राजतंत्र हो, तब तो तीनों ही काम राजा की इच्छानुसार होते हैं, किन्तु लोकतंत्र में उपरोक्त तीनों इकाइयों का समन्वित स्वरूप ही राजा की भूमिका में होता है। न्याय हमेशा ही मूर्त इकाइयों को मिलता है सम्पूर्ण समाज को नहीं, क्योंकि समाज तो स्वयं ही एक अमूर्त इकाई है।

2433. सुरक्षा और न्याय के अतिरिक्त अन्य सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का समाधान राज्य का स्वैच्छिक कर्तव्य होता है, दायित्व नहीं। कर्तव्य और दायित्व में फर्क होता है। सभी व्यक्तियों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता सहित सभी मौलिक अधिकारों की सुरक्षा हम सबका दायित्व होता है। सामाजिक और संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा हमारा दायित्व नहीं होता, सिर्फ कर्तव्य हो सकता है।

2434. कार्य तीन प्रकार के होते हैं—(1) सामाजिक, (2) असामाजिक और 3. समाज विरोधी। सामाजिक कार्य करना हम सबका कर्तव्य

भी होता है तथा अधिकार भी। असामाजिक कार्य में हमारा अधिकार तो होता है, किन्तु कर्तव्य नहीं। समाज विरोधी कार्य करना न तो हमारा कर्तव्य होता है, न ही अधिकार। सामाजिक कार्यों को प्रोत्साहित करना तथा असामाजिक कार्यों को निरुत्साहित करना समाज का दायित्व होता है, राज्य का नहीं। किन्तु समाज विरोधी कार्यों को रोकना राज्य का दायित्व होता है। अंधविश्वास का फैलना असामाजिक कार्य है, समाज विरोधी नहीं। आज अधिकारों की जानकारी की अपेक्षा कर्तव्य की जानकारी का ना होना अधिक बड़ा संकट बना हुआ है।

244 मानवाधिकार

2440. पूंजीवाद के विरोध के उद्देश्य के लिए इस्लामिक साम्प्रदायिकता का समर्थन बिल्कुल उचित नहीं है और वह भी धर्मनिरपेक्षता या मानवाधिकार संगठन का मुखौटा लगाकर करना तो और भी निन्दनीय है।

2441. सभी मानवाधिकार संगठन अराजकता और मुस्लिम साम्प्रदायिकता के पक्षधर होते हैं। ये लोग न कभी मुस्लिम साम्प्रदायिकता का विरोध करते हैं और न ही नक्सलवादी अराजकता का। इन्होंने आज तक कभी किसी ऐसे अपराधी की आलोचना नहीं की, जिसने किसी निर्दोष के मानवाधिकारों का उल्लंघन किया हो। प्रत्येक मामले में उन्होंने व्यवस्था बनाम अपराधी के बीच अपराधी का पक्ष लिया, व्यवस्था का नहीं।

2442. जो लोग तर्क पर विश्वास नहीं करते, बल्कि तर्क के स्थान पर हाथ, मुंह या लेखनी से ताकत की भाषा बोलते हैं वे मानवाधिकार के लिए कलंक हैं।

2443. किसी के व्यक्ति के रूप में जीवित रहने का अधिकार कुछ विशेष और असामान्य स्थिति में ही छीना जा सकता है, सामान्यतया नहीं।

2444. व्यक्ति समाज का अंग होता है, उसकी स्वतंत्र आचार संहिता होती है, उसके अधिकार मौलिक, प्राकृतिक व स्वाभाविक होते हैं, जबकि नागरिक किसी संवैधानिक व्यवस्था से बंधा होता है, उसके संवैधानिक अधिकार भी होते हैं। नागरिक किसी स्थापित व्यवस्था के नियम कानूनों से बंधा होता है। उसे व्यक्ति के अधिकारों से हटकर कुछ विशेष अधिकार कुछ शर्तों पर उपलब्ध होते हैं। किसी व्यक्ति के नागरिक अधिकार व्यवस्था वापस ले सकती है या कटौती कर सकती है। किंतु कोई व्यवस्था किसी व्यक्ति के मूल अधिकार बिना उसकी सहमति के वापस नहीं ले सकती।

2445. यद्यपि व्यक्ति संपूर्ण मानव समाज का एक भाग है तथा कोई भी व्यवस्था उसके प्राकृतिक अधिकारों में उच्छृंखलतापूर्वक कटौती नहीं कर सकती। तथापि विश्व व्यवस्था के अभाव के कारण राष्ट्रों ने स्वयं को ऐसा अधिकार संपन्न घोषित कर दिया है कि वह व्यक्ति के अधिकारों में कभी भी और कितनी भी कटौती कर सकता है।

2446. कोई आतंकवादी किसी निर्दोष व्यक्ति के चाहे काट कर दस टुकड़े कर दे किन्तु मानवाधिकारवादी चुप ही रहते हैं। मानवाधिकार उल्लंघन की अनिवार्य शर्त यह है कि उसमें अत्याचार करने वाला पक्ष राज्य अवश्य हो, और यदि राज्य भी वामपंथी विचारों का न हो तो और भी अच्छा है। मेरे विचार में मानवाधिकार की यह अवधारणा दोषपूर्ण भी है और घातक भी।

2447. मानवाधिकार आंदोलन प्रायः विदेशी धन से संचालित होते हैं, जो हमारी व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करते रहते हैं। पश्चिम के देशों ने बहुत चालाकी से कुछ उद्देश्यों के लिए मानवाधिकार संगठन खड़े किये थे। उसके उद्देश्य पूरे भी हुए, किन्तु अब वे संगठन उसे ही कठघरे में खड़ा कर रहे हैं तब वे लोग भी तिलमिलाते हैं। मनमाने तरीके से बने मानवाधिकार संगठन विश्व में और विशेषकर भारत में मानवाधिकार के नाम पर दुकानदारी चलाते हैं। उनका मानवाधिकार से कोई संबंध नहीं है। सभी मानवाधिकार संगठनों का भारत में छवि बहुत खराब है। ये संस्थाएं मानवाधिकार के नाम पर सिर्फ अपराधियों की मदद करती हैं, ऐसी संस्थाओं में भी गांधीवादी संस्थाओं का रिकार्ड अधिक खराब है। इन्हें निरूत्साहित करना चाहिए। मानवाधिकार व्यक्ति के व्यक्तिगत होते हैं और न्यायपालिका उनकी सुरक्षा करती है।

2448. न्यायालय के अनुसार जीने का अधिकार मूल अधिकार है और भूख से मरना उसके मूल अधिकार का उल्लंघन है, जिसकी समीक्षा और हस्तक्षेप न्यायालय कर सकता है। किंतु मेरे विचार से न्यायालय गलत है। भोजन प्राप्त करना हमारा संवैधानिक अधिकार है, मौलिक अधिकार नहीं।

2449. अब विद्वान, संन्यासी, फकीर, समाजसेवी बिना किसी योग्यता और परीक्षा के नकली पहचान बनाने में सफल हो जा रहे हैं। NGO का बोर्ड लगाकर कोई मानवाधिकारी हो जा रहा है, तो कोई पर्यावरणवादी जिनका दूर-दूर तक न मानवाधिकार से कोई संबंध है, न ही पर्यावरण से।

2450. मानवाधिकार सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर सृष्टि के समापन तक स्थिर

होते हैं, उनमें कभी कोई बदलाव नहीं आता। प्रत्येक व्यक्ति के मानवाधिकारों की सुरक्षा समाज का दायित्व होता है, स्वैच्छिक कर्त्तव्य मात्र नहीं।

2451. 'मानवाधिकार व्यक्ति की असीम स्वतंत्रता है और सहजीवन उसके अधिकारों का पूर्ण समर्पण।' सहजीवन प्रत्येक व्यक्ति के लिए बाध्यकारी है, स्वैच्छिक नहीं, मानवाधिकार संरक्षण तथा सहजीवन का तालमेल आवश्यक है। इसके लिए हमें कुछ कदम उठाने चाहिए।

2452. सिर्फ मनुष्य को ही मानवाधिकार प्राप्त है, पशु-पक्षी, पेड-पौधों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

2453. मानवाधिकार की सुरक्षा के लिए सबसे पहला काम इस्लामिक तथा साम्यवादी विचारों पर दबाव बनाना है। इस्लामिक, साम्यवादी विचारधारा दुनिया के मानवाधिकार के लिए सबसे बड़ा खतरा है। सबसे पहले इस विचारधारा से निपटना चाहिए।

2454. व्यक्ति के मूल अधिकारों पर राज्य द्वारा किये जाने वाले किसी संभावित आक्रमण के विरुद्ध परिवार सभा से लेकर केन्द्र सभा तक तथा अलग से न्यायपालिका बनी हुयी है। इसलिए इन पेशेवर मानवाधिकार संगठनों का कोई औचित्य नहीं है।

246 संवैधानिक अधिकार

2460. संसद ने निर्णय के हमारे सारे अधिकार 'हम' से छीनकर अपने पास बंधक रख लिये हैं और संसद का यह एकपक्षीय शक्तिशाली होना ही आजाद भारत की सभी समस्याओं की जड़ है। संविधान की धारा 243 ग्राम सभा/नगरपालिका के गठन को आवश्यक ठहराती है। पर इसी धारा के उपबंध 'क' तथा 'ब' इन संवैधानिक

इकाइयों को शक्ति प्रदान करने या न प्रदान करने की भी छूट देता है।

2461. आज संविधान, तंत्र का बंधक बनकर रह गया है। तंत्र अपने सभी गलत काम संविधान को ढाल बनाकर ही करता है। पहले संविधान को संशोधित कर उसे मन मुताबिक बनाता है, फिर उसी संविधान की दुहाई देकर अनाप-शनाप कानून जनता पर थोप देता है।

2462. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगाने के सारे अधिकार राज्य को देने के बाद इसे मूल अधिकार में शामिल करना सिर्फ खानापूर्ति मात्र ही है। व्यक्ति को अपने विषय में निर्णय करने का उस सीमा तक अधिकार होना चाहिए कि वह किसी अन्य व्यक्ति की वैसी ही स्व-निर्णय की सीमाओं का उल्लंघन न करे।

2463. अपराधियों के मूल अधिकारों के लिए राज्य इस सीमा तक सतर्क है कि सौ अपराधी भले ही छूट जाएँ पर एक भी निरपराध को सजा न हो जाय।

2464. सामाजिक, आर्थिक असमानता दूर करना मजबूतों का कर्तव्य है। कमजोरों का अधिकार नहीं। स्वतंत्रता हमारा अधिकार है और शासन का दायित्व। दुर्भाग्य से आर्थिक, सामाजिक असमानता दूर करना कमजोरों का अधिकार कहकर प्रचारित किया जा रहा है।

2465. वर्तमान भारतीय राजनैतिक वातावरण में सत्ता का राजनेताओं के पास इकट्ठा होना ही सबसे बड़ी समस्या है। सभी राजनैतिक दलों का इस संबंध में सोच एक समान ही है कि किसी भी परिस्थिति में राजनेताओं के अधिकारों में कमी न हो।

2466. संवैधानिक अधिकार संवैधानिक व्यवस्था देती है, जिनकी सुरक्षा की गारंटी संविधान देता है।

2467. किसी भी पशु को चाहे वह गाय ही क्यों न हो, उसके संवैधानिक अधिकार हो सकते हैं या सामाजिक, किन्तु मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते। गाय को संवैधानिक अधिकार देने की अपेक्षा सामाजिक अधिकार देना अधिक अच्छा है, क्योंकि गाय को संवैधानिक अधिकार देने से समान नागरिक संहिता पर विपरीत प्रभाव होगा। फिर भी यदि आपसी सहमति बनती है, तो गाय या किसी अन्य जीव को संवैधानिक अधिकार दिये जा सकते हैं, किंतु मौलिक अधिकार नहीं।

2468. वर्तमान समय में भारत में व्यक्ति, प्रदेश और केंद्र को संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं, किंतु परिवार, गाँव, जिले को संवैधानिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। यहां तक कि जाति, धर्म को भी संवैधानिक अधिकार दिये गये हैं।

2469. राज्य व्यवस्था द्वारा संवैधानिक अधिकार कभी भी दिये जा सकते हैं और लिए भी जा सकते हैं। सामाजिक अधिकार व्यक्ति को समाज द्वारा दिये जाते हैं तथा कभी भी समाज द्वारा लिए जा सकते हैं। मौलिक अधिकार प्राकृतिक होते हैं, न राज्य उनमें कोई बदलाव कर सकता है, न समाज।

2470. प्रत्येक व्यक्ति को कुछ संवैधानिक अधिकार भी प्राप्त होते हैं जो उन्हे राष्ट्र या राज्य के द्वारा दिये जाते हैं। इन्हें नागरिक अधिकार कहा जाता है। मैं स्पष्ट कर दूँ कि समाज के सुचारू संचालन के लिए राज्य एक अनिवार्य आवश्यकता होती है।

2471. संवैधानिक व्यवस्था तीन इकाइयों के आपसी तालमेल से चलती है, जिन्हें विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका कहते हैं। तीनों को इस प्रकार समायोजित किया गया है कि तीनों एक-दूसरे

के पूरक भी हों और नियंत्रक भी। सच्चाई यह भी है कि भारत की वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था समाज व्यवस्था को अधिक से अधिक गुलाम बनाकर रखना चाहती है तथा उसे वर्ग-संघर्ष में भी उलझाकर तोड़ देना चाहती है।

2472. लोकतांत्रिक व्यवस्था में न्यायपालिका, विधायिका तथा कार्यपालिका का संयुक्त स्वरूप होता है। जबकि राज्य अथवा राज्य व्यवस्था में न्यायपालिका शामिल न होकर सिर्फ विधायिका तथा कार्यपालिका ही शामिल होते हैं, क्योंकि न्यायपालिका कानून के अनुसार कार्य करने तक सीमित होते हुए भी, व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की संरक्षक होती है।

2473. पंडित नेहरू में त्याग प्रवृत्ति का पूरा-पूरा अभाव था। नेहरू मॉडल को साम्यवादियों तथा साम्प्रदायिक मुसलमानों का भरपूर समर्थन मिला। इन तीनों के तालमेल के कारण देश की संवैधानिक व्यवस्था निरंतर कमजोर होती गई और इस कमजोरी का परिणाम हुआ न्याय का कमजोर होना, जिसका अंतिम परिणाम हम नई परिवर्तित तानाशाही व्यवस्था के रुप में भुगत रहे हैं।

2474. संविधान एक ऐसा दस्तावेज होता है, जो सरकार की अन्तिम सीमाएं तय करता है और मार्गदर्शन प्रदान करता है। शासन कमजोर होगा, तो अव्यवस्था हो जाएगी और उच्छृंखल होगा तो कुव्यवस्था।

2475. मेरे विचार से भारतीय संविधान में निम्नलिखित नीतियों का समावेश करना चाहिए—

1. राईट टू रिकॉल,
2. संवैधानिक मामलों में भी धर्म, जाति को आधार न बनाकर

परिवार, गाँव को आधार बना दें और भारत को परिवारों का संघ बना दें, तो ज्यादा अच्छा होगा।

3. संवैधानिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण के लिए संविधान में परिवार, गाँव और जिले के अधिकारों की सूचियों का समावेश हो।
4. केन्द्रीय शासन के लिए संविधान में उल्लेखित नीति-निर्देशक तत्वों को बाध्यकारी बनाना या उन्हें हटाना।
5. संविधान संशोधन का अन्तिम अधिकार संसद के अतिरिक्त एक अन्य समिति को भी दिया जाये, जो संविधान संशोधन पर विचार करके निर्णय करे।

248 मताधिकार

2480. मतदाताओं की इच्छा और क्षमता के ऊपर कोई अन्य नियम-कानून या मापदंड नहीं बनाया जा सकता। यदि आप मतदाताओं की योग्यता का कोई भी मापदंड बनाते हैं, तो वह पूरी तरह गलत होगा और भविष्य में इसका दुरुपयोग भी हो सकता है। ऐसा भी सम्भव है कि उसका दुरूपयोग कभी लोकतंत्र को तानाशाही में बदल दे और आप इसे किसी भी रुप में न रोक सकें।

2481. मेरा मत है कि सारी दुनिया के संचालन के लिए ऐसा संविधान बनना चाहिए, जिसके बनाने में दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति की समान भूमिका हो अर्थात् सात अरब व्यक्ति मतदान द्वारा ऐसा संविधान बना सकें। इस संविधान के आधार पर ही विश्व सरकार की कल्पना की जा सकती है। वह सिर्फ राष्ट्रों का ही प्रतिनिधित्व नहीं करेगी, बल्कि व्यक्ति से लेकर विश्व तक के बीच कार्य कर रही इकाईयों का संघ होगी। इसका यह अर्थ हुआ कि विश्व व्यवस्था एक अरब

परिवारों, कुछ करोड़ गांवों और इसी तरह प्रदेशों और राष्ट्रों का संघ होगी। ऐसी व्यवस्था में नीचे से लेकर ऊपर तक बने हुए छोटे से बड़े सभी संविधानों की व्यवस्था का समावेश होगा।

2482. यदि मताधिकार के लिए किसी योग्यता को आधार बनाया गया, तो सबसे पहला प्रश्न यह खड़ा होता है कि इस आधार को बनाने का निर्णय कौन-सी इकाई करेगी और उस इकाई के चयन में भारत के प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका होगी या नहीं। यदि इस इकाई ने गलत निर्णय लिये तो उसकी समीक्षा कौन करेगा? इसलिए सीमित मताधिकार की मांग बहुत ही खतरनाक है और ऐसे प्रयत्न को पूरी तरह खारिज किया जाना चाहिए।

2483. वर्तमान भारतीय राजनीति में कोई अच्छा व्यक्ति चुनाव नहीं जीत सकता। यदि अपवादस्वरूप जीत भी गया तो अच्छा नहीं रहेगा और यदि कोई फिर भी अच्छा रह गया तो जल्दी ही निकाल दिया जायेगा।

2484. भारत में चुनावों के दो पक्ष हैं—(1) सैद्धांतिक पक्ष और (2) व्यावहारिक पक्ष। कोई भी उम्मीदवार स्वयं न तो उम्मीदवार बन सकता है, न ही चुनाव लड़ सकता है, क्योंकि सैद्धांतिक रूप से सत्ता जनता की अमानत होती है, सत्ताधीशों का अधिकार नहीं। लेकिन व्यावहारिक रूप से जीता हुआ उम्मीदवार सत्ता को अमानत न मानकर अपना अधिकार मानता है।

2485. मेरे विचार से यदि सत्ता को विकेन्द्रित कर दिया जाये, तो चुनाव लड़ने वालों की संख्या अपने आप कम हो जायेगी। राजनीति को व्यापार समझने वाले राजनीति से अलग हो जायेंगे और उम्मीदवार जनता के दबाव के बाद भी सत्ता को अमानत समझकर बहुत मुश्किल से

चुनाव लड़ने के लिए तैयार होंगे। जब-तक ऐसा नहीं होता, तब तक के लिए जमानत राशि कई गुना अधिक बढ़ा देनी चाहिए।

250 मूल अधिकार

2500. "व्यक्ति के वे प्रकृति प्रदत्त अधिकार, जिन्हें राज्य तथा संविधान सहित कोई भी अन्य उसकी सहमति के बिना, तब तक कोई कटौती न कर सके, जब तक उसने किसी अन्य व्यक्ति के वैसे ही अधिकारों का उल्लंघन न किया हो, उन्हें मूल अधिकार कहते हैं।" दुनिया में मूल अधिकारों की जो परिभाषा बनी है, वह या तो गलत है या अपूर्ण। भारतीय संविधान में जिस प्रकार मूल अधिकार की व्याख्या की गई है, वह संविधान निर्माताओं की अज्ञानता का स्पष्ट प्रमाण है। प्राकृतिक अधिकार न संविधान दे सकता है न ही ले सकता है और न ही संशोधित कर सकता है। प्राकृतिक या मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी मात्र संविधान देता है।

2501. सम्पत्ति संग्रह प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार होता है। कोई भी अन्य उसकी स्वतंत्रता में बाधा नहीं पहुंचा सकता। सम्पत्ति का अधिकार पहले संविधान के मूल अधिकार में शामिल था जिसे अब निकाल दिया गया है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा जीने का अधिकार संविधान के मूल अधिकारों में शामिल है। मूल अधिकारों का सबसे महत्वपूर्ण भाग 'स्व-निर्णय' मूल अधिकारों की सूची में शामिल नहीं है। सम्पत्ति को मूल अधिकार में शामिल करने से जो क्षति होगी, निकालने से और अधिक क्षति होगी। यदि सम्पत्ति को मूल अधिकार से हटाया गया, तो राज्य को सम्पत्ति के साथ छेड़छाड़ करने के असीम अधिकार मिल जायेंगे। दुनिया के साम्यवादी, समाजवादी, तानाशाह देशों में सम्पत्ति को मूल

अधिकार नहीं माना गया है किन्तु अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में सम्पत्ति व्यक्ति का मूल अधिकार है।

2502. यदि कोई किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों (Fundamental Right) पर आक्रमण करे, तब तो न्याय और सुरक्षा के अंतर्गत उसमें प्रशासन को हस्तक्षेप करना ही है। किन्तु यदि मूल अधिकार पर आक्रमण न होकर सामाजिक अधिकारों का अतिक्रमण होता हो, तो प्रशासन को दूरी बनाकर ही रखनी चाहिए। हम मूल अधिकार, सामाजिक अधिकार और संवैधानिक अधिकार का अन्तर नहीं समझ रहे, और ना ही हमें समझने दिया जा रहा है।

2503. किसी दूसरे को मारना, किसी अन्य व्यक्ति के मूल अधिकारों पर आक्रमण है, किसी अन्य परिवार की सीमाओं का अतिक्रमण भी है तथा सामाजिक अपराध भी है।

2504. व्यक्ति के मूल अधिकार की सुरक्षा राज्य का भी दायित्व है तथा समाज का भी। आज भी मुस्लिम तथा साम्यवादी देश व्यक्ति के मौलिक अधिकार को स्वीकार नहीं करते, जबकि हिन्दू तथा इसाई इसे स्वीकार करते हैं।

2505. यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य के मौलिक अधिकारों का हनन करे, तो उस अपराधी के मौलिक अधिकारों पर राज्य आक्रमण या कटौती कर सकता है, किन्तु सामाजिक अधिकारों पर आक्रमण करने वाला व्यक्ति अपराधी या समाज विरोधी न होकर सिर्फ असामाजिक ही होता है। आप उसे दण्डित नहीं कर सकते। असामाजिक कार्य के लिए समाज ही बहिष्कार कर सकता है जो अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक दण्ड ही है। दूसरी बात यह भी विचारणीय है कि कमजोर व्यक्ति होता है, वर्ग नहीं।

2506. मौलिक अधिकार प्रत्येक व्यक्ति के समान होते हैं। यदि किसी भी स्त्री या पुरुष के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन परिवार का भी कोई सदस्य करता है, तो वह अपराध है, किन्तु संवैधानिक अधिकारों की सुरक्षा समाज का दायित्व नहीं, सिर्फ राज्य का है। सामाजिक अधिकारों की सुरक्षा समाज का दायित्व है और राज्य का कर्तव्य है, दायित्व नहीं। मूल अधिकारों के मामले में समानता का व्यवहार आपका अधिकार है, किन्तु संवैधानिक और सामाजिक मामलों में समानता का व्यवहार करना मजबूतों का कर्तव्य है, आपका अधिकार नहीं।

2507. प्रत्येक व्यक्ति के कुछ प्राकृतिक अधिकार होते हैं। इन अधिकारों को उसकी सहमति के बिना संविधान भी नहीं छीन सकता। सरकार ने प्रत्येक व्यक्ति को संवैधानिक अधिकार भी दे दिये और सामाजिक अधिकार भी, जबकि संवैधानिक और सामाजिक अधिकार परिवार को देने चाहिए थे, व्यक्ति को नहीं। जब व्यक्ति परिवार का सदस्य है, तो उसकी व्यक्तिगत पहचान परिवार के साथ जुड़ी हुई है।

2508. असीम समान स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का प्राकृतिक अधिकार होता है। यह सीमा वहां तक होती है, जहां से किसी अन्य की स्वतंत्रता का उल्लंघन न होता हो। समान स्वतंत्रता प्राकृतिक सिद्धांत है। समान करने का प्रयास ऐसी समानता को असमान बनाता है। बिना व्यक्ति की सहमति के इसकी स्वतंत्रता में कोई कटौती नहीं की जा सकती। यह भी आवश्यक है कि उसकी पूर्व सहमति के बाद भी तात्कालिक सहमति के अभाव में उसकी मौलिक स्वतंत्रता में कोई मौलिक समझौता नहीं किया जा सकता।

2509. प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिस्पर्धात्मक रूप से आगे बढ़ने की असीम स्वतंत्रता होनी चाहिए। ऐसी स्वतंत्रता की कोई सीमा नहीं बनायी जा सकती, न ही कोई बाधा पैदा की जा सकती है। प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार होता है कि वह प्रतिस्पर्धा करते हुये किसी भी सीमा तक धन-सम्पत्ति संग्रह कर सकता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का सामाजिक कर्तव्य होता है कि वह काफिला पद्धति का अनुसरण करते हुये संकटों से घिरे व्यक्तियों की सहायता करे।

2510. वर्तमान समय में प्रचलित श्रेष्ठता का सिद्धांत घातक है। कोई भी व्यक्ति या समूह किसी अन्य की सहमति के बिना स्वयं को श्रेष्ठ कह कर अपने विचार किसी अन्य पर थोप नहीं सकता है। श्रेष्ठता का घातक विचार भारत में भी बहुत व्यापक है और इसी विचार के आधार पर भारत में भी तंत्र अपने को मालिक समझ रहा है।

2511. मनुष्य के अतिरिक्त किसी अन्य जीव या पेड़-पौधों को मनुष्य के समान असीम स्वतंत्रता नहीं है। अन्य जीवों पर दया करना किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता है। किन्तु किसी अन्य को ऐसी दया के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

2512. मूल अधिकार व्यक्तिगत होते हैं, सामूहिक नहीं। मूल अधिकार अहस्तांतरणीय होते हैं। ये किसी संवैधानिक प्रक्रिया के अंन्तर्गत ही किसी अन्य को दिये या लिए जा सकते हैं। सामूहिक अधिकार संवैधानिक या सामाजिक होते हैं। वर्तमान समय में मूल अधिकारों में और वृद्धि की मांग परिभाषा की अस्पष्टता का परिणाम है।

2513. प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा तथा उच्छृंखलता पर नियंत्रण तंत्र का दायित्व होता है तथा समाज का कर्तव्य। समाज

उच्छृंखलता को सिर्फ अनुशासित ही कर सकता है नियंत्रित नहीं, क्योंकि समाज के पास दंडित करने का अधिकार नहीं है।

2514. विश्व में प्रत्येक व्यक्ति को समान प्राकृतिक अधिकार प्राप्त हैं। तद्नुसार भारत में भी प्रत्येक नागरिक के प्राकृतिक अधिकार समान हैं। उसमें न बहुसंख्यक कोई कटौती कर सकता है न ही अल्पसंख्यक। भारत के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक मामले में अपने-अपने अधिकार प्राप्त हैं। सामाजिक स्वतंत्रता में कोई कानून हस्तक्षेप नहीं कर सकता, सिर्फ संवैधानिक मामलों में ही अधिकारों में कम-ज्यादा कर सकते हैं।

2515. गोपनीयता व्यक्ति का मौलिक अधिकार हो सकती है, किन्तु नागरिक का मौलिक अधिकार नहीं है।

2516. यदि सौ लोगों की जान बचाने के लिए एक निर्दोष व्यक्ति के प्राणों की आवश्यकता है, तब भी उसकी सहमति के बिना उसके प्राण ले लेना लोकतंत्र नहीं है। क्योंकि लोकतंत्र में मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी संविधान देता है और राज्य संविधान की रक्षा करता है। मौलिक अधिकार का अर्थ यह नहीं है कि कोई अन्य आपकी सहायता के लिए बाध्य है। यह सहायता समाज का कर्तव्य है।

2517. सुविधा प्राप्त करना आपका मौलिक अधिकार नहीं है, सिर्फ संवैधानिक अधिकार है।

2518. किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में व्यक्ति और नागरिक पृथक-पृथक होते हैं। व्यक्ति वे होते हैं जिनके मूल अधिकार तो होते हैं, किन्तु संवैधानिक अधिकार नहीं। नागरिक को दोनों ही अधिकार प्राप्त होते हैं। सम्पत्ति प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार होता है। बिना व्यक्ति की सहमति के उसकी सम्पत्ति टैक्स या किसी

भी अन्य रूप में तब तक नहीं ली जा सकती जब तक वह बात संविधान में न लिखी हो। सम्पत्ति की उसकी सहमति के बिना कोई सीमा भी नहीं बनायी जा सकती।

2519. कोई भी व्यक्ति यदि किसी अन्य देश में जाता है और रहता है, तो उसे भले ही उस देश के नागरिक अधिकार प्राप्त न हों किन्तु उसके सामाजिक और मौलिक अधिकार सुरक्षित रहते हैं। दुनिया का कोई भी कानून उस व्यक्ति की सहमति के बिना उसके प्राकृतिक अधिकारों में किसी प्रकार की कोई कटौती नहीं कर सकता।

2520. व्यक्ति एक सर्व सम्प्रभुता सम्पन्न प्राकृतिक इकाई के रूप में होता है, और उसकी सहमति के बिना उसकी स्वतंत्रता की कोई सीमा नहीं बनाई जा सकती। यदि किसी राष्ट्र में कोई कानून बनता है, तो उस कानून के बनाने में उस राष्ट्र के अंतर्गत आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सहमति आवश्यक है। इसका अर्थ हुआ कि जब प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र से भी ऊपर समाज का अंग है तब सम्पूर्ण विश्व की भी कोई एक ऐसी व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए जिसकी सहमति या स्वीकृति से ही किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को छीना जा सके। अब तक दुनिया में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बन सकी है, भले ही आंशिक रूप से इस दिशा में कुछ प्रयत्न हुए और धीरे-धीरे आगे बढ़ भी रहे हैं।

2521. असीम स्वतंत्रता के रूप में व्यक्ति का केवल एक मूल अधिकार होता है। इस स्वतंत्रता के चार भाग होते हैं—(1) जीने की स्वतंत्रता, (2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, (3) सम्पत्ति की स्वतंत्रता, (4) स्व-निर्णय की स्वतंत्रता। मूल अधिकार व्यक्ति को गलती करने तक की स्वतंत्रता भी देता है।

2522. जब किसी व्यक्ति के किसी मौलिक अधिकार पर हिंसक आक्रमण होता है और न्याय का कोई मार्ग उपलब्ध न हो, तभी हिंसा की विशेष अनुमति होती है, अन्यथा नहीं।

252 संगठनों में मौलिक अधिकार

2523. भारत में तीन संगठन साम्यवाद, संगठित इस्लाम और सावरकरवादी ऐसे हैं, जो मौलिक अधिकारों को नहीं मानते। वे या तो राज्य को बड़ा मानते हैं या धर्म को अथवा राष्ट्र को।

2524. इस्लाम ने समाज में व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों को, जिन्हें हम मौलिक अधिकार कहते हैं, उन्हें मान्यता नहीं दी है। साम्यवाद और सावरकरवादी परिवार ने भी नहीं दी है। इस्लाम मानता है कि यदि कोई धर्म विरुद्ध आचरण करे, तो किसी भी व्यक्ति को अधिकार है कि वह उसकी हत्या कर दे। सावरकरवादियों की मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति राष्ट्र के विरुद्ध आचरण करे तो किसी भी व्यक्ति को उसकी हत्या कर देने तक का अधिकार है।

2525. इस्लाम और साम्यवाद घोषित रूप से मौलिक अधिकारों को अस्वीकार करते हैं। इस्लाम और साम्यवाद का अस्तित्व समाज के लिए सबसे बड़ा संकट है। पूरी दुनिया को चाहिए कि इन दोनों विचारधारा के लोगों को या तो सामाजिक व्यवस्था मानने के लिए सहमत करें या बाध्य कर दें।

253 संविधान में मौलिक अधिकार

2530. दुर्भाग्य से हमारे संविधान निर्माताओं को इस बात का ज्ञान नहीं था कि मौलिक अधिकार की परिभाषा क्या है? इसलिए उन्होंने कुछ मौलिक अधिकारों को बाहर कर दिया, तो कुछ अनावश्यक अधिकारों को मौलिक अधिकार में शामिल कर लिया। आज

अनेक नासमझ लोग रोजगार, भोजन, शिक्षा, स्वास्थ्य, मतदान आदि को भी मौलिक अधिकार कहते-फिरते हैं, तो कुछ लोग धर्म आदि को भी मौलिक अधिकार में गिनते हैं।

2531. संविधान जिन अधिकारों को समय-समय पर दे या ले सकता है, वे संवैधानिक अधिकार होते हैं, मूल नहीं। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार सरीखे अनेक अधिकार संवैधानिक होते हैं, मौलिक नहीं। नासमझ लोग इन्हें मौलिक अधिकार मान लेते हैं।

2532. प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव होता है कि वह दूसरों से तो अधिकतम स्वतंत्रता की इच्छा रखता है, किन्तु वह यह भी चाहता है कि दूसरे लोग उसकी इच्छानुसार ही संचालित हों, स्वतंत्रता से नहीं। व्यक्ति की यही धारणा विवाद का मुख्य कारण बनती है।

2533. प्रस्तावित संविधान में भारत के प्रत्येक नागरिक को—(1) जीने का, (2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का, (3) सम्पति का, (4) स्व-निर्णय का उस सीमा तक अधिकार होगा कि वह किसी अन्य नागरिक के इस धारा में वर्णित अधिकारों का हनन न करे, (5) किसी व्यक्ति को उसके मूल अधिकारों से विधि द्वारा बनाई गई प्रक्रिया के आधार पर ही वंचित किया जा सकेगा।

2534. प्रस्तावित संविधान में हर व्यक्ति को विधिपूर्वक अर्जित की हुई सम्पति किसी भी सीमा तक रखने का अधिकार होगा परन्तु संसद को प्रस्तावित संविधान की धारा 162/2, 129 तथा 153 (2) के आधार पर कर लगाने का अधिकार होगा।

254 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

2540. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। कोई भी व्यवस्था किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति की सीमा नहीं बना

सकता। जब किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता किसी अन्य की स्वतंत्रता से टकराती है, तब राज्य या समाज की भूमिका शुरू होती है, अन्यथा नहीं।

2541. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सरकारों से तो खतरा हमेशा ही रहा है, किन्तु अब तो संगठित गुण्डों से भी उसे खतरा बढ़ता जा रहा है।

2542. राष्ट्र किन्हीं सीमाओं से घिरा भू-भाग होता है, किन्तु समाज की कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त है, व्यक्ति समूह को नहीं। क्योंकि समूह के कोई मौलिक अधिकार नहीं होते।

2543. अभिव्यक्ति अथवा सम्पत्ति की कोई सीमा या तो व्यक्ति स्वयं की मर्जी से बना सकता है अथवा विश्व समाज की व्यवस्था से।

2544. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और उच्छृंखलता के बीच सीमा रेखा पर भी सोचा जाना चाहिए। हम देख रहे हैं कि आमतौर पर संगठन भावनाओं पर आघात का बहाना बनाकर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बाधित करते हैं, जो उचित नहीं है।

2545. जब तक कोई विचार प्रस्तुति सिर्फ अभिव्यक्ति तक सीमित है, तब तक उसके प्रत्यक्ष विरोध का कोई औचित्य नहीं है? आपके विचार भिन्न हैं, तो भी अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक रख सकते हैं या आप उनके साथ प्रत्यक्ष बैठकर शांतिपूर्ण वार्तालाप कर सकते हैं। सक्रिय विरोध पूरी तरह प्रतिबंधित होना चाहिए।

255 सहजीवन एवं मौलिक अधिकार

2550. प्रत्येक व्यक्ति का एक ही सामाजिक दायित्व होता है और वह होता है सहजीवन, अर्थात् स्वयं सहजीवन का पालन करना और दूसरों को सहजीवन की ट्रेनिंग देना।

2551. मौलिक अधिकार की शायद ही कभी उपयोग करने की आवश्यकता पड़ती हो, अन्यथा वे व्यक्ति के पास निष्क्रिय कवच के रुप में सुरक्षित रहते हैं। आजकल कॉलेजों में साम्यवादी और कट्टरपंथी इस्लाम का गठजोड़ जिस तरह मौलिक अधिकारों की बात कर रहा है, इससे ऐसा लगता है कि अब उनके अंत का समय आ गया है। अब भारत का आम नागरिक यह समझ गया है कि इन दोनों को सहजीवन सीखने के लिए मजबूर करना आवश्यक है।

2552. साम्यवाद तो अपनी बुरी स्थिति देखकर कट्टरपंथी इस्लाम के कंधे पर बंदूक रख चुका है। अब इस्लाम को समझना है कि वह मौलिक अधिकारों की धारणा को स्वीकार करता है या अपने समापन का मार्ग प्रशस्त करता है। इसका निर्णय इस्लाम को करना है, किसी अन्य को नहीं। या तो इस्लाम अपने कठमुल्लों का साथ छोड़कर धार्मिक इस्लाम और सहजीवन की ओर बढ़ेगा या समाप्त होगा।

2553. मौलिक अधिकार और सहजीवन एक-दूसरे के पूरक होते हैं। दोनों में संतुलन और समन्वय अनिवार्य है। जब व्यक्ति को यह विश्वास हो कि उसके मौलिक अधिकार सुरक्षित रहेंगे, तो उसे कभी अपनी स्वतंत्रता की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। किन्तु यदि राजनैतिक व्यवस्था ठीक न हो तब ऐसी व्यवस्था को ठीक करने का प्रयास करना चाहिए और यदि बिल्कुल ही असम्भव हो जाये, तभी ऐसी विशेष परिस्थिति में अपने मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की चिन्ता करनी चाहिए अन्यथा व्यक्ति को कभी भी अपने अधिकारों की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

2554. स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है और सहजीवन मजबूरी। अधिकार का उपयोग आपातकालीन परिस्थितियों में करना चाहिए अन्यथा सामान्यतया कर्तव्य ही पर्याप्त है।

260 केन्द्र, राज्य

2600. तंत्र का दायित्व सिर्फ सुरक्षा और न्याय तक सीमित होता है। तंत्र, सरकार और राज्य एक-दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। केंद्र सरकार के अतिरिक्त राज्य सरकार या नीचे कोई सरकार नहीं होनी चाहिए। केंद्र सरकार के पास सिर्फ पांच विभाग सेना, पुलिस, वित्त, विदेश और न्याय रहना चाहिए। अन्य सभी दायित्व समाज के लिए छोड़ देना चाहिए।

2601. समाज की व्यवस्था के लिए परिवार, गाँव, जिला, प्रदेश और राष्ट्र की अलग-अलग सभाएं हों। इन सभाओं का गठन नीचे की इकाई द्वारा हो। ऊपर की इकाई को अधिकार नीचे की इकाइयां दें और नीचे की इकाइयां वापस भी ले सकें। सरकार सुरक्षा और न्याय तक सीमित रहेगी, तो सभाएं अन्य जनकल्याण के कार्य करेंगी। सरकार संविधान से नियंत्रित होगी, तो सभाओं का अपना-अपना संविधान होगा। सभाएं अपना-अपना संविधान स्वयं बना सकेंगी।

2602. वर्तमान व्यवस्था में, लोकसभा का गठन आम चुनाव से होता है, यह ठीक है। राज्यसभा का गठन राष्ट्रसभा द्वारा किया जाना चाहिए। राज्यसभा पांच या छः वर्ष के लिए होनी चाहिए। लोकसभा का चुनाव प्रतिवर्ष एक सौ नौ या एक सौ सीटों का होना चाहिए। लोकसभा स्थाई होनी चाहिए।

260 राज्य

2603. एक सर्वमान्य सिद्धांत के अनुसार सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व होता है तथा अन्य जनकल्याण के कार्य उसका कर्तव्य। सुरक्षा और न्याय तंत्र के लिए बाध्यकारी होता है, जबकि जनकल्याणकारी कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तव्य। पश्चिम के देशों में

सुरक्षा और न्याय की आवश्यकता सीमा के अंदर थी। इसलिए उन देशों ने जनकल्याणकारी कार्यों को आंशिक रुप से अपने दायित्वों के साथ जोड़ लिया। किन्तु इसके ठीक विपरीत दक्षिण एशिया के देशों में, जिनमें भारत भी शामिल है, सुरक्षा और न्याय खतरनाक स्थिति तक संकट में पड़ा हुआ है, फिर भी जनकल्याण के कार्यों को दायित्व समझने की भूल हो रही है।

2604. राज्य रुपी संवैधानिक इकाई इतनी स्वतंत्र नहीं है, जो अपनी प्राथमिकताएँ व्यक्तिगत भावनाओं के आधार पर बदल सकें। भारत में राज्य एक व्यवस्था है, न कि व्यक्ति समूह का शासन। हत्या और मृत्यु में जमीन-आसमान का फर्क होता है। हत्या एक अपराध है। इसका अर्थ हुआ कि हत्याओं को रोकना राज्य का दायित्व है, किन्तु मृत्यु चाहे किसी भी कारण से हो, कितनी भी वीभत्स हो, वह दुर्घटना हो सकती है, किन्तु अपराध नहीं। इसका अर्थ हुआ कि हत्या में मदद करना राज्य का दायित्व होता है और मृत्यु में सहायता करना राज्य का स्वैच्छिक कर्तव्य मात्र हो सकता है, दायित्व नहीं।

261 राज्य व्यवस्था

2610. दुनिया में भारत एकमात्र ऐसा देश है, जहां की व्यवस्था में चार स्वतंत्र इकाइयों का तालमेल होता है—(1) व्यक्ति, (2) परिवार, (3) समाज, (4) राज्य। ये चारों स्वतंत्र इकाई होते हुए भी एक-दूसरे के साथ इस तरह जुड़ी होती हैं कि चारों एक-दूसरे की पूरक भी हों और नियंत्रक भी।

2611. जिस भी व्यवस्था में कानून अधिक होंगे और नियंत्रण की व्यवस्था कम, वहां भ्रष्टाचार बढ़ता ही है। जिस व्यवस्था में कानूनों की

मात्रा जितनी अधिक होती है, उस व्यवस्था के अंतर्गत रहने वाले व्यक्तियों की समझदारी उतनी ही कम होती है।

2612. व्यवस्था में सुधार के प्रयत्न व्यवस्था परिवर्तन में बाधक होते हैं, साधक नहीं। व्यवस्था परिवर्तन के समय व्यवस्था में सुधार के प्रयत्न अल्पकाल के लिए रोक देना चाहिए।

2613. व्यवस्था के ठीक ढंग से चलने के लिए व्यक्ति, परिवार, राज्य और समाज के अधिकारों का संतुलित तथा स्पष्ट विभाजन आवश्यक होता है। यदि विभाजन संतुलित न हो, तो अव्यवस्था हो जाती है और स्पष्ट न हो तो टकराव होता है।

2614. अम्बेडकर और नेहरू को संस्कृति का अच्छा ज्ञान नहीं था। दोनों ने ही पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति में रहकर सबकुछ सीखा था। पश्चिम में व्यवस्था के तीन ही घटक हैं—1. व्यक्ति, (2) समाज, 3. राज्य। भारत में व्यवस्था चार स्तरीय है—(1) व्यक्ति, (2) परिवार, (3) समाज, (4) राज्य।

2615. अम्बेडकर और नेहरू ने एकाएक हिन्दू कोड बिल बनाकर समाज व्यवस्था को भी कमजोर किया और परिवार व्यवस्था को भी। इन दोनों ने ऐसे कानून बनाये कि इन कानूनों ने समाज और परिवार की अपेक्षा व्यक्ति को बहुत अधिक मजबूत बना दिया। पहले संतुलन का पलड़ा समाज और परिवार की तरफ झुका हुआ था, जो अब पूरी तरह असंतुलित होकर व्यक्ति की ओर झुक गया। यह असंतुलन व्यवस्था में लाभ कम और नुकसान अधिक कर गया।

2616. व्यवस्थापक के लिए तानाशाही सबसे आसान और सफल मार्ग होता है तथा लोकतंत्र सबसे कठिन और सफलता के प्रति संदेहास्पद। इसलिए लोक स्वराज्य ही एकमात्र श्रेष्ठ समाधान माना जाता है।

2617. खाप पंचायतों को सिर्फ सामाजिक पंचायत तक सीमित रहना चाहिए था लेकिन वे सामाजिक दण्ड तक देने लग गयी इसलिए राज्य व्यवस्था खाप पंचायतों की एक भूल का लाभ उठाकर उस व्यवस्था को ही समाप्त करने पर तुली है, क्योंकि राज्य व्यवस्था यह बर्दाश्त नहीं कर सकती कि उसके अतिरिक्त भी समाज में कोई स्वतंत्र सोच विकसित हो।

2618. व्यवस्था तीन प्रकार की होती है—(1) राजतंत्र या तानाशाही, (2) लोकतंत्र, (3) लोक स्वराज्य। तानाशाही में शासन का संविधान होता है। लोकतंत्र में संविधान का शासन होता है किन्तु संविधान निर्माण में लोक और तंत्र की मिली-जुली भूमिका होती है। लोक स्वराज्य में लोक द्वारा निर्मित संविधान का शासन होता है।

2619. संगठन आमतौर पर समानान्तर व्यवस्था बना लेते हैं। व्यवस्था का कर्तव्य होता है कि वह संगठनों पर विशेष नजर रखे तथा उन्हें प्रारम्भ से ही ऐसा अनुशासित रखे कि वे संविधान द्वारा दी गई इस विशेष सुविधा का कभी दुरूपयोग न कर सकें।

2620. जब भी कोई व्यवस्था या व्यवस्था प्रमुख समाज में न्याय और सुरक्षा देने में विफल हो जाता है, अथवा उसके मन में जनहित की अपेक्षा शासक और शासित का भाव प्रबल रूप धारण कर लेता है, तब वह अपनी सत्ता को स्थिर बनाये रखने के लिए दस प्रकार के नाटक करता है।

2621. राज्य को व्यवस्था परिवर्तन में कभी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और व्यवस्था परिवर्तन का अंतिम अधिकार सामाजिक निष्कर्ष पर छोड़ देना चाहिए।

2622. क्या तंत्र लोक का सहायक तथा व्यक्ति का शासक होगा? तंत्र में सरकार कौन और क्या होगी? वर्तमान लोकतंत्र में तो कार्यपालिका शासक है, किन्तु आदर्श व्यवस्था में रक्षक, मार्गदर्शक, पालक और सेवक का समीकरण क्या होगा? क्या सरकारी अफसर कार्यपालिका में होंगे या भिन्न व्यवस्था होगी? राष्ट्रपति प्रणाली का स्वरूप क्या होगा? ऐसे अनेक प्रश्न अनुत्तरित हैं। तंत्र, लोक का सहायक होगा या प्रबंधक यह बात भी तय नहीं हो सकी है।

262 राष्ट्रीय सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा

2623. सामाजिक सुरक्षा के अंतर्गत सरकार प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की सुरक्षा की गारंटी देती है तो राष्ट्रीय सुरक्षा के अंतर्गत सरकार विदेशी आक्रमण से अपनी सीमाओं की सुरक्षा की व्यवस्था करती है।

2624. राष्ट्र और समाज के बीच एक संतुलन होना ही चाहिए जो वर्तमान समय में बिगड़ रहा है। राष्ट्र को ही सरकार और सरकार को ही समाज मान लेने की भूल हो रही है।

262 पुलिस

2625. पुलिस अनेक मामलों में स्वयं ही दण्ड देने लगी है, भले ही वह गैर-कानूनी ही क्यों न हो। पूरे देश में मुठभेड़ों का सिलसिला या पुलिस अभिरक्षा में मौतों की बढ़ती घटनाएं प्रत्यक्ष हैं। न्याय में बहुत विलम्ब होने या वास्तविक अपराधियों का आमतौर पर छूट जाने के कारण पुलिस का कार्य सही दिखने लगा है। यदि न्यायपालिका न्याय देने में असफल हो जाती है तब पुलिस की मजबूरी हो जाती है कि वह सुरक्षा देने के लिए असंवैधानिक तरीकों का भी प्रयोग करे। यदि कानून और न्याय मिलकर एकाकार हो जाएंगे, तो पुलिस

की सक्रियता अपने आप बंद हो जाएगी अथवा सब मिलकर उसे अपनी सक्रियता छोड़ने के लिए मजबूर कर देंगे।

2626. हर नेता पुलिस वालों पर गैर-कानूनी कार्य करने के लिए दबाव बनाता है और जब पुलिस वाला बदनाम होता है, तब वह किनारे हो जाता है।

2627. कोई अपराधी अनेक अपराध करने के बाद भी भ्रष्टाचार या तकनीकी कारणों से निर्दोष सिद्ध हो जाता है तब भी न्यायपालिका से किसी तरह का कोई प्रश्न नहीं होता। प्रश्न होता है पुलिस से कि उसने ठीक से जांच नहीं की।

2628. पुलिस विभाग का गिरता मनोबल इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि आपराधिक मनोबल बढ़ रहा है। यदि बार-बार न्यायपालिका से मुक्त हुए वास्तविक अपराधी को पुलिस फर्जी मुठभेड़ में मार देती है, तो सारे निकम्मे नेता, मानवाधिकारवादी, न्यायालय सभी अपने-अपने बिलों से निकलकर अपराधी के पक्ष में चिल्लाना शुरू कर देते हैं। कोई नहीं कहता कि पुलिस वाले ने अच्छी नीयत से गैर-कानूनी कार्य किया है। अर्थात् कानून पुलिस वाले को दंडित करेगा, किन्तु समाज को इस संबंध में निरपेक्ष रहना चाहिए।

263 संसद

2630. कुछ लोग यह मांग करते हैं कि संसद में अच्छे लोगों के जाने से ही समस्याओं का समाधान होगा, लेकिन मैं उनसे सहमत नहीं हूं। संसद में अच्छे लोग पहुंच ही नहीं सकते और यदि कुछ एक पहुँच भी गये, तो वे पावर पाकर बिगड़ जायेंगे। कोई इक्का-दुक्का बच भी गया तो निकाल दिया जायेगा। पावर का इकट्ठा होना बुराई की जड़ है। सन् 1950-60 सरीखी 'अच्छे लोगों की संसद' बुराई

को बढ़ने से नहीं रोक पाई तो अब कुछ अच्छे लोगों को संसद में पहुंचाने की मुहिम क्या परिवर्तन कर पायेगी?

2631. प्रारम्भ में कल्पना की गई थी कि संसद समाज का प्रतिनिधित्व करेगी तथा कार्यपालिका राज्य का। किन्तु संसद ने मंत्रिमंडल बनाकर शासन व्यवस्था पर भी अपना आधिपत्य कर लिया। भूल यह हुई कि संसद को हमने समाज का प्रतिनिधि घोषित करके उसे संविधान संशोधन का अधिकार भी अपने पास रखने की छूट दे दी तथा राज्य का प्रतिनिधि मानकर कानून बनाने का अधिकार भी।

2632. दुनिया देख रही है कि संसद और विशेषकर राज्यसभा के वातावरण की तुलना मछली बाजार से भी की जाये, तो संसद का वातावरण उसमें बाजी मार लेगा। यह समझना होगा कि संसद में अनावश्यक गतिरोध से विपक्ष की बदनामी अधिक होती है और उसके वोट घटते हैं।

2633. समाज के क्या अधिकार हों, यह तो संसद तय कर सकती है, किन्तु संसद के क्या अधिकार हों, इसमें समाज की कोई भूमिका नहीं होती। इसलिए आवश्यक है कि संसद के अधिकारों पर समाज के नियंत्रण की कोई व्यवस्था हो।

2634. जब तक संविधान संशोधन का अंतिम अधिकार संसद के पास रहेगा, तब तक इसी तरह आंदोलन होते रहेंगे और असफल होते रहेंगे। जयप्रकाश जी ने भी सत्ता के अकेन्द्रीकरण के आंदोलन को शुरू किया था, किन्तु विनोबा भावे के असहयोग के कारण वह आंदोलन असफल हो गया।

2635. मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि संसद सर्वोच्च है और उसे न्यायपालिका के जजों की नियुक्ति में हस्तक्षेप का अधिकार होना चाहिए।

किन्तु मैं इस पक्ष में भी नहीं हूं कि न्यायपालिका सर्वोच्च हो और न्यायपालिका को ही जजों की नियुक्ति के असीम अधिकार होने चाहिए।

2636. हमारी लड़ाई सरकार से नहीं है, बल्कि संसद से है और वह भी संसद के किसी विधायी या कार्यपालिक अधिकार से नहीं है। हमारी लड़ाई सिर्फ संसद के संविधान संशोधन सम्बन्धी असीमित अधिकारों को सीमित करने तक सीमित है। इसका अर्थ है कि हम संसदीय लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र में बदलना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि राज्य हमारा प्रबंधक हो, न कि सरकार।

2637. गोरे शासकों से मुक्ति के बाद नेताओं ने आजादी के नाम पर लोगों को आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक अधिकार तो दे दिए, लेकिन राजनीतिक समानता के अधिकार को चुपके से दबा लिया। परिणामस्वरूप आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक अधिकार भी संसद की दया पर निर्भर हो गये।

2638. सांसदों की नियुक्ति तो जनता द्वारा करने की व्यवस्था की गई, किन्तु उन पर नियंत्रण से जनता को बाहर कर दिया गया। जनता जिसे नियुक्त करती है, उसे अनुशासित, निलंबित या निष्कासित करने का उसे कोई अधिकार नहीं।

2639. भारतीय संसद 543 निर्वाचित सांसदों से बनती है तथा उसमें प्रत्येक सांसद को स्वतंत्रतापूर्वक बोलने का विशेषाधिकार प्राप्त है। भारत का लोकतंत्र विचित्र है, जहां सांसद संसद में भी स्वतंत्रता से बोल नहीं सकता।

2640. देश चलाने के लिए हम जिन सांसदों को पांच साल के लिए नियुक्त करते हैं, निश्चित ही वो शासक नहीं सेवक हैं। लेकिन अगर आप

उनसे कहें कि एक साल के लिए ये देश हम सीधे अपने हाथों से चलाना चाहते हैं तो ज़रा सोचिए कि उनका उत्तर क्या होगा।

2641. संसद की अवमानना पर न्यायालय विचार करे और न्यायालय की अवमानना पर संसद। संसद या न्यायालय ही अपने विशेषाधिकार भी तय कर ले, वही अवमानना भी मान ले और वही दण्डित भी करे, यह उचित नहीं।

264 विधायिका

2642. समाज के न्यायपूर्ण तथा सुव्यवस्थित संचालन हेतु विधान बनाने वाली अधिकार सम्पन्न इकाई को विधायिका कहते हैं। विधायिका का स्वरूप शासक का न होकर 'law According to Justice' तक सीमित होता है, न्यायपालिका भी 'Justice According To Law' की सीमा से बंधी है।

2643. स्वतंत्रता के बाद विधायिका ने भी समाज के समक्ष यही अवधारणा प्रस्तुत की, कि समाज न्यायपालिका की समीक्षा न्यायिक सीमाओं से बाहर जाकर नहीं कर सकता। न्यायिक प्रक्रिया की समीक्षा करनी भी होगी तो वह विधायिका ही कर सकती है और वह भी संविधान संशोधन द्वारा ही। विधायिका न्यायिक प्रक्रिया को किनारे करके कठोर कानून बनाने की दिशा में चलने लगी है। आंतरिक सुरक्षा अधिनियम सरीखे अनेक प्रतिबंधात्मक कानून इसका उदाहरण है।

2644. विधायिका, जो स्वयं अपराधियों के संरक्षण पर निर्भर है, वह अपराध नियंत्रण के ठोस उपाय लागू नहीं होने देती। अनावश्यक या मामूली अपराधों को गम्भीर घोषित करके गम्भीर अपराधों को मामूली श्रेणी में रखवाने में ये लोग पूरी तरह कुशल व सफल हैं।

2645. प्रस्तावित संविधान में भारत सरकार तथा संसद, पंच फैसला या संयुक्त राष्ट्र संघ के निर्णय को स्वीकार करेगी। यदि सरकार किसी निर्णय को स्वीकार नहीं करना चाहती है, तो उक्त मुद्दे पर संसद, संघ-सभा तथा संविधान-सभा पृथक-पृथक बहुमत से निर्णय करके सर्वसम्मति से अस्वीकार भी कर सकती है।

2646. प्रस्तावित संविधान में भारत की सीमाओं का पंद्रह किलोमीटर का भू-भाग सरकार की व्यवस्था तथा स्वामित्व का होगा। इस संशोधन के आधार पर उक्त पंद्रह किलोमीटर के क्षेत्र में या तो कोई नागरिक नहीं रहेंगे, या यदि रहेंगे तो उनके कोई मौलिक अधिकार नहीं होंगे।

2647. नीति-निर्धारण विधायिका का काम है और उसकी समीक्षा सिर्फ मतदाता ही कर सकता है, न्यायालय नहीं। लोकतांत्रिक संसद में विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के समान अधिकार होते हैं, जबकि संसदीय लोकतंत्र में संसद को विशेष अधिकार प्राप्त है। भारतीय राजनेताओं ने इस संसदीय लोकतंत्र का भरपूर दुरुपयोग किया है। वर्तमान भारत में न्यायपालिका भी दुरूपयोग कर रही है।

2648. भारत का संविधान स्वतंत्रता के समय ही अवयस्क था, उसे धीरे-धीरे मजबूत होने की आवश्यकता थी, किन्तु संविधान तो स्वतंत्रता के तुरंत बाद ही संसद की जेलों में डाल दिया गया। संसद ने जेलखाने में बंद हमारे संविधान का भरपूर दुरूपयोग किया।

2649. पहले विधायिका ने लोकतंत्र को दूषित करके कार्यपालिका और न्यायपालिका के काम में हस्तक्षेप किया। स्वाभाविक है कि अर्द्ध-तानाशाही का अनुभव होने लगा। विधायिका नीति-निर्धारण

बहुत कम और क्रियान्वयन ज्यादा करने लगी। विधायिका निरंतर तानाशाही की दिशा में बढ़ती गई और बढ़ते-बढ़ते उसने संविधान संशोधन द्वारा नौवीं अनुसूची को न्यायिक समीक्षा से बाहर करके न्यायपालिका को भी नपुंसक बना दिया। विधायिका की तानाशाही मनोवृति का पारिणाम था कि विधायिका ने मूल अधिकार तक को संशोधित करके, नौवीं अनुसूचि में डालने की धृष्टता कर दी। उसी का यह परिणाम हुआ कि धीरे-धीरे न्यायपालिका तानाशाह बनने लगी। उसने भी उसी तरह विधायिका और कार्यपालिका को नपुंसक बना दिया। ये दोनों स्थितियां अच्छी नहीं हैं।

2650. विधायिका के लोगों ने संविधान में एकपक्षीय व्यवस्था कर दी थी कि संविधान का पालन तो विधायिका ही करवाएगी, कानून भी वही बनाएगी तथा संविधान में संशोधन भी वही करेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि संविधान बनाते समय ही राजनेताओं की नीयत खराब थी। पंडित नेहरू जिनका विधायिका के लोग बहुत गुणगान करते हैं, उन्होंने बुलडोजरी अंदाज में न्यायपालिका के कानूनों की समीक्षा करने के अधिकारों में भी कटौती कर दी, और एक नौवीं अनुसूची बना दी, जिससे न्यायपालिका कमजोर हो जाए।

2651. लोकतंत्र में विधायिका न्याय को परिभाषित करती है, न्यायपालिका उस परिभाषा के अनुसार समीक्षा करती है और कार्यपालिका इसे क्रियान्वित करती है। आज तक विधायिका और कार्यपालिका का अंतर ही स्पष्ट नहीं हो सका। तकनीकी शब्दों में मंत्रिमंडल कार्यपालिका का भाग माना जाता है, किंतु वास्तव में वह विधायिका का भाग होता है।

2652. विधायिका को ही शासन समझने का भ्रम इसलिए पैदा हुआ,

क्योंकि विधायिका ने छल कर स्वयं संविधान संशोधन के असीम अधिकार समेट लिए तथा स्वयं को संविधान के ऊपर बना लिया।

265 कानून

2653. वही सरकार अच्छी होती है, जो न्यूनतम शासन करे अर्थात् "कम कानून-कठोर कानून।" भारत में इस सिद्धांत के विपरीत कार्य हुआ है।

2654. भारत में विधायिका ने अनावश्यक कानून बना-बनाकर अनेक जटिलताएं उत्पन्न की हैं। विधायिका का कर्तव्य है कि वह कानून बनाने के पूर्व चार परिस्थितियों की समीक्षा अवश्य करे - (क) समाज में हो रहे अन्याय। (ख) महत्व के क्रम में उक्त अन्याय की प्राथमिकता। (ग) प्रशासनिक क्षमता और (घ) कानून के लाभ और दुष्प्रभावों की तुलना। भारत की वर्तमान विधायिका सस्ती प्रशंसा के लोभ में तीन स्थितियों की समीक्षा की अवहेलना करके सिर्फ सामाजिक न्याय की दिशा में चलना शुरू कर देती है।

2655. प्रजातंत्र की अनिवार्य शर्त है कि वहां संविधान का शासन हो। यदि संविधान का शासन न होकर व्यक्ति या ग्रुप का शासन हो, तो वह प्रजातंत्र नहीं हो सकता।

266 कार्यपालिका

2660. कार्यपालिका और विधायिका को पूरी तरह स्वतंत्र तथा अलग-अलग होना चाहिए। भारत में विधायिका ने कार्यपालिका को दबा कर रखा है। विधायिका के ही कुछ लोगों को कार्यपालिका प्रमुख बना दिया गया। यही लोग सरकार बन गए तथा प्रमुख कार्यपालिका को सरकारी नौकर घोषित कर दिया गया। यह अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता का केन्द्रीयकरण है। राष्ट्रपति को कुछ अधिक अधिकार सम्पन्न होना चाहिए।

2661. निर्वाचित जनप्रतिनिधि क्षेत्र से प्रतिनिधित्व करता है, क्षेत्र का प्रतिनिधित्व नहीं करता। वर्तमान भारत में निर्वाचित प्रतिनिधि क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं, जिससे कार्यपालिका की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप होता है।

2662. कार्यपालिका और विधायिका को बिल्कुल अलग-अलग होना चाहिए। प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों का चयन सांसदों में से नहीं होना चाहिए। सांसदों की भूमिका कानून बनाने तक सीमित हो। सांसद क्षेत्रीय प्रतिनिधि न होकर संसदीय प्रतिनिधि माना जाना चाहिए। कार्यपालिका के पास न्यूनतम दायित्व तथा अधिकतम शक्ति होनी चाहिए। वर्तमान समय में कार्यपालिका के पास अधिकतम दायित्व किन्तु न्यूनतम शक्ति है। किसी भी अपराध या गैर-कानूनी कार्य के होने पर कार्यपालिका को यह अधिकार होना चाहिए कि अपराधी को विधि के अनुसार दण्ड दे सके। आरोपी पीड़ित परिवार अथवा सम्बन्धित सभा कार्यपालिका के निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इस परिवर्तन से अनेक समस्याएं हल हो सकती हैं।

2663. चुनाव में रिजर्व सीट से सामान्य उम्मीदवार तथा सामान्य सीट पर रिजर्व उम्मीदवार की व्यवस्था शुरू करना ठीक रहेगा। इसी तरह आयोगों में भी महिला आयोग, आदिवासी-हरिजन आयोग आदि में उसी वर्ग के व्यक्ति के चयन को रोक कर भिन्न व्यक्ति को नियुक्त करें।

2664. संसद को निर्दलीय होना चाहिए। संविधान बनाते समय निर्दलीय संसद का जो प्रारूप सोचा गया था वह बाद में धीरे-धीरे बदल दिया गया। अब निर्दलीय संसद के लिए एक आंदोलन करना चाहिए।

267 सरकार

2670. कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका के समन्वित स्वरूप को तंत्र, राज्य अथवा सरकार अथवा शासन कहते हैं। प्रजातंत्र में कार्यपालिका, न्यायपालिका तथा विधायिका एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं और (Check And Balance) सन्तुलन स्थापित करने वाले भी। राज्य के तीनों अंग पूरक तथा संतुलन (Balancing) बनाने का कार्य न करके शक्ति संचय की प्रतिस्पर्धा में लग जाते हैं, तो राज्य कमजोर हो जाता है और यदि यह स्थिति लम्बे समय तक बनी रहे, तो प्रजातंत्र की विश्वसनीयता समाप्त हो जाती है। वर्त्तमान भारत में राज्य के तीनों अंग शक्ति संचय की प्रतिस्पर्धा में लगे हैं।

2671. संविधान की सीमाओं में रहकर कानून के द्वारा कार्यपालिका को निर्देश देना विधायिका का दायित्व है। विधायिका संविधान द्वारा इंगित सीमाओं का किसी भी स्थिति में अतिक्रमण नहीं कर सकती है। हमारे संविधान निर्माताओं ने पक्षपातपूर्वक राज्य को एकपक्षीय शक्तिशाली बना दिया। अब देश के समाजशास्त्रियों को मिलकर संविधान के मूल तत्वों पर विचार-मंथन करके कुछ निष्कर्ष निकालने चाहिए तथा राज्य और समाज के अधिकारों की सीमाओं की पुनः व्याख्या का आंदोलन शुरू करना चाहिए।

2672. व्यवस्था की सहायता के लिए समाज द्वारा बनाई गई किसी मूर्त्त इकाई को राज्य या सरकार कहते हैं। व्यवस्था समाज की होती है और कार्यान्वयन सरकार का। 'समाज' सम्पूर्ण विश्व का प्रतिनिधित्व करता है और 'सरकार' समाज का। अतः सम्पूर्ण विश्व का एक ही संविधान होना चाहिए और एक ही सरकार।

समाज का कोई स्थिर स्वरूप न होने से राष्ट्रों ने स्वयं को समाज घोषित कर दिया जो कि अस्थाई स्वरूप है।

2673. प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा और उच्छृंखलता पर नियंत्रण का दायित्व संभालने वाली व्यवस्था को सरकार कहते हैं। लोकतांत्रिक व्यवस्था में सरकार का अर्थ होता है न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका का समन्वित व सम्मिलित स्वरूप। वर्तमान समय में सरकार का अर्थ सिर्फ कार्यपालिका तक सीमित कर दिया गया है।

2674. आदर्श स्थिति तो यह होती है कि कार्यपालिका पूरी तरह स्वतंत्र होती है और विधायिका कानून बनाने तक सीमित रहती है। विधायिका के ही कुछ लोग कार्यपालिका के नाम पर एक अलग समूह बना लें और उस समूह को ही सरकार कहने लग जायें यह घाल-मेल आदर्श लोकतंत्र नहीं है।

2675. महिला हो या पुरुष सबके अधिकार समान हों, सबका महत्व समान हो, साथ ही समाज की सामाजिक गतिविधियों पर सरकार का कोई अंकुश न हो। सरकार स्वयं को समाज से भी ऊपर मानने की भूल न करे। सरकार का काम न तो सुविधा देना होता है, न ही सुरक्षित रखना। सरकार का सिर्फ एक काम होता है - अपराध नियंत्रण।

2676. सरकार हमेशा श्रमजीवियों के पक्ष में दिखती है, किन्तु हमेशा बुद्धिजीवियों के पक्ष में रहती है। साम्यवादी इस मामले में सबसे अधिक सक्रिय हैं। वे बुद्धिजीवियों के पक्ष में रहते हैं और श्रमजीवियों के साथ दिखते हैं।

2677. पूंजीपति, शहरी, बुद्धिजीवी तथा उपभोक्ताओं को शोषितों की सहायता के लिए प्रेरित करना सामाजिक कार्य होगा। सरकार को इस कार्य से बिल्कुल दूर रहना चाहिए।

268 शासक

2680. लोकतंत्र में निर्वाचित इकाई की यह अन्तिम सीमा होती है कि वह मालिक नहीं हो सकती, भले ही वह प्रबंधक, प्रतिनिधि, या सहायक हो सकती है। वर्तमान विश्व में तंत्र ने स्वयं को शासक और लोक को शासित मान भी लिया और कहना भी शुरू कर दिया। यही प्रथा और शब्द भारत में प्रचलित हुआ, जो गलत है।

2681. राज्य समाज के प्रबन्ध के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता भी है और बुराई भी, जैसे किसी गाड़ी के लिए ब्रेक। गाड़ी ब्रेक रहित नहीं, ब्रेक मुक्त होनी चाहिए। हमारे समाज को कभी भी किन्हीं भी परिस्थितियों में शासन पर पूरी तरह निर्भर नहीं हो जाना चाहिए। समाज सर्वोच्च है और शासन समाज का अंग होता है। शासन द्वारा सर्वोच्च बनने का प्रयास करना अनाधिकृत चेष्टा है, परन्तु शासन सफलतापूर्वक यह प्रयास कर रहा है।

2682. अधिकारों का राजनीतिज्ञों के पास अधिकाधिक ध्रुवीकरण राजनीतिज्ञों के दूषित व्यवहार या आचरण का कारण है। ऐसे ध्रुवीकरण को समाज को रोकना चाहिए। अधिकारविहीन समाज और सर्वाधिकार सम्पन्न शासन की स्थापना अनुचित और अवांछनीय है।

2683. वर्तमान समाज के अनेक प्रवक्ता किसी धर्म, राजनीतिक दल, निश्चित धारणा वाले गुट, राष्ट्रीय आदि विभिन्न रंगों के चश्में से वास्तविकताओं को देखकर तदनुसार उनका विश्लेषण करते हैं।

समाज को किसी व्यक्ति या समूह द्वारा प्रस्तुत किसी विश्लेषण पर विचार करने के पूर्व उसके विचारों की प्रतिबद्धता को देख लेना चाहिए कि वह धर्म, राजनीति आदि में किसी प्रकार से प्रतिबद्ध तो नहीं है।

2684. हमारे विधायक या सांसद क्षेत्र से प्रतिनिधित्व करते हैं, क्षेत्र का नहीं। वे कानून बनाने के लिए नियुक्त होते हैं। वे कानून बनाने में गंभीर न होकर नल, बिजली, नियुक्ति, सड़क आदि वह तमाम कार्य करते हैं, जो कि एक सामान्य कर्मचारी का होता है।

2685. कानूनी समस्याओं का कानूनी समाधान, आर्थिक समस्याओं का आर्थिक समाधान तथा सामाजिक समस्याओं का सामाजिक समाधान खोजा जाना चाहिए। वर्तमान समय में कानूनी समस्याओं का सामाजिक समाधान खोजा जा रहा है। अपराध-उन्मूलन हेतु हृदय परिवर्तन को उचित मार्ग बताया जाता है और छुआछूत, दहेज, शराब-बंदी आदि सामाजिक समस्याओं के लिए कानूनों का सहारा लेने की मांग की जाती है, जो उचित नहीं है।

2686. जब देश की सीमाओं को खतरा हो, तब शक्ति की पूजा के नगाड़े भी बज सकते हैं, किन्तु यदि शासक को आदत पड़ जाये कि वह समाज को गुलाम बनाकर रखने के लिए रोज ही सीमाओं पर आवाज लगाने लगे तो ऐसे झूठे-मक्कार शासक से पिण्ड छुड़ा लेना चाहिए।

269 आपातकाल

2690. किसी समस्या विशेष से निपटने में सामान्य उपायों की विफलता निश्चित होने पर व्यवस्था को प्रदत्त विशेष अधिकारों की परिस्थितियों को आपातकाल कहते हैं। आपातकाल की तीन

परिस्थितियां होती है (1) राष्ट्रीय आपातकाल, जब विदेशी आक्रमण का गंभीर खतरा हो, (2) आर्थिक आपातकाल, जब आर्थिक असमानता अनियंत्रित हो जाए अथवा श्रम और बुद्धि के मूल्य और सम्मान में दूरी बहुत अधिक हो जाए। (3) सामाजिक आपातकाल, जब समाज के लोग अपराधियों के विरुद्ध गवाही देने से डरते हों तथा अपराध नियंत्रण सम्भव न हो रहा हो। राष्ट्रीय आपातकाल में प्रत्येक परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दस प्रतिशत तक आपात-कर लगाने का अधिकार व्यवस्था को होना चाहिए। आर्थिक आपातकाल में प्रत्येक परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति पर दो प्रतिशत आपात-कर लगाकर प्रत्येक नागरिक में बराबर-बराबर बाँटने का अधिकार व्यवस्था को होना चाहिए। सामाजिक आपातकाल में उस जिले के कलेक्टर, एस.पी. और जिला सत्र न्यायाधीश को मिलकर गुप्त मुक़दमा प्रणाली शुरू करने की स्वीकृति देने का अधिकार होना चाहिए।

2691. किसी भी प्रकार के आपातकाल की घोषणा सिर्फ संवैधानिक आधार पर ही की जा सकती है। मंत्रिमंडल राष्ट्रीय या आर्थिक आपातकाल का प्रस्ताव राष्ट्रपति को दे सकता है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति तथा प्रधान न्यायाधीश सर्वसम्मति से घोषणा कर सकते हैं। राष्ट्रीय आपातकाल में पूरी व्यवस्था राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधान न्यायाधीश तथा प्रधानमंत्री मिलकर करेंगे तथा दो माह बाद कानून के अनुसार आगे का काम करेंगे। सामाजिक आपातकाल जिले के कलेक्टर, एस. पी. और जिला न्यायाधीश जिले तक कर सकते हैं। आपातकाल यदि राष्ट्रीय स्तर पर घोषित करना हो, तो मुख्य न्यायाधीश, राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री मिलकर सर्वसम्मति

से कर सकते हैं। सामाजिक आपातकाल में दो माह में जिला सभा, राष्ट्र सभा या किसी ऊपर की सभा से सहमति आवश्यक होगी।

2692. किसी भी प्रकार के आपातकाल में व्यक्ति की सहमति के बिना उसके मौलिक अधिकारों में कोई कटौती नहीं की जा सकती।

2693. जब कोई जनमत जागरण किसी आंदोलन की दिशा में जाए, तब आप उस पर कानूनी कार्यवाही कर सकते हैं किन्तु जिस प्रकार सरकारें भयभीत होकर कदम उठाती हैं, वे कदम तो वास्तव में तानाशाही के कदमों की शुरूआत है।

2694. कलेक्टर, पुलिस अधीक्षक और जिला न्यायाधीश यदि महसूस करें कि उनके क्षेत्र में भय और आतंक के कारण न्याय में बाधा है, तो वे अपने जिले में सामाजिक आपातकाल घोषित कर सकते हैं।

2695. राष्ट्रीय या आर्थिक आपातकाल की घोषणा करते समय सरकार को पूरी स्वतंत्रता होगी, किन्तु एक माह के अन्दर ऐसे आपातकाल को संसद की स्वीकृति मिलनी चाहिए। राष्ट्रीय आपातकाल के समय भी सरकार मूल अधिकारों को समाप्त नहीं कर सकती, बल्कि सिर्फ इतना ही कर सकती है कि सम्पत्ति पर दस प्रतिशत का अतिरिक्त कर लगाकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति करे।

2696. आपातकाल में सरकार जब चाहे किसी भी व्यक्ति को बिना तत्काल कारण बताये जेल में बन्द कर सकती है। ऐसे व्यक्ति के जेल में बन्द होने की समीक्षा न्यायाधीशों की टीम तीन माह में करेगी।

2697. आपातकाल में सामाजिक लोगों को अपनी प्राथमिकताएं बदल देनी चाहिए अर्थात् असामाजिक लोगों के साथ दूरी घटा लेनी चाहिए।

2698. मंत्रिमंडल यदि आपातकाल का निर्णय करता है, तो राष्ट्रपति, मुख्य न्यायाधीश और उपराष्ट्रपति की सलाह लेकर आपातकाल लगा सकते हैं। इन तीनों को विशेषाधिकार होगा कि वे विवेकाधिकार का उपयोग करें अर्थात् ऐसे मामले पर विचार करके निर्णय करने में वे तीनों व्यक्तिगत रूप से सक्षम होंगे। राष्ट्रपति को मंत्रिमंडल से सलाह नहीं लेनी होगी या मुख्य न्यायाधीश भी जजों की टीम से कोई राय लेने हेतु बाध्य नहीं होंगे। ये तीन मिलकर आपातकालीन फैसले कर सकते हैं, जिसमें प्रधानमंत्री की भूमिका नहीं होगी।

270 चुनाव

2700. यह कहना गलत है कि चुनाव सुधारों से बहुत कुछ सुधर सकता है। चुनाव सुधार वर्तमान विकृतियों में पांच या दस प्रतिशत ही प्रभाव डाल सकते हैं। वर्तमान विकृतियां सत्ता के केन्द्रीकरण का परिणाम है। अधिकारों का विकेन्द्रीकरण इसका एकमात्र समाधान है।

2701. राजनैतिक अस्थिरता से व्यवस्था भी अस्थिर होती है और बार-बार चुनावों का डर भी बना रहता है। राजनैतिक स्थिरता के लिए लोकसभा को इस तरह स्थिर कर दिया जाए कि उसके चुनाव प्रतिवर्ष 1/5 सीटों के हों। राज्यसभा अस्थिर हो सकती है। राज्यसभा के चुनाव पांच वर्ष के लिए एक बार हो सकते हैं। इस प्रणाली से कई लाभ होंगे—(1) अनावश्यक राजनैतिक परिवर्तन नहीं होगा, (2) प्रत्येक राजनैतिक दल को प्रतिवर्ष चुनावों का अवसर मिलने से स्थिरता आयेगी, (3) चुनावों में विदेशी सक्रियता समाप्त हो जायेगी, (4) चुनावों का खर्च एक बार में न होकर प्रतिवर्ष समान रूप से होगा और (5). राजनीति में निरन्तरता आयेगी।

2702. चुनाव के तीन उद्देश्य होते हैं—(1) अच्छे व्यक्ति को सत्ता सौंपना,

(2) अच्छे राजनैतिक दल को सत्ता सौंपना, (3) लोकतंत्र पर मुहर लगाना। चुनाव की दोषपूर्ण प्रक्रिया व्यवस्था के परिणामों पर गंभीर असर डालती है। अतः चुनाव प्रक्रिया तथा चुनाव सम्पन्न कराने वाली इकाई को सक्षम, विश्वसनीय एवं पारदर्शी होना चाहिए।

2703. संघ सभा या संसद अपने चुनाव की चुनाव प्रणाली और परिवार या ग्राम सभा अपनी चुनाव प्रणाली तय करके चुनाव आयोग को देगी। हो सकता है कि दो परिवार अपने-अपने चुनाव दो अलग-अलग तरीकों से सम्पादित करें। इस तरह इकाइयों की इकाईगत स्वतंत्रता मजबूत होगी। लेकिन संविधान निर्माण के मामले में उक्त इकाई के प्रत्येक सदस्य की सहमति अनिवार्य होगी।

2704. किसी भी चुनाव में मतदान गुप्त होगा। प्रत्यक्ष रूप से सर्वसम्मति होने के बाद भी चुनाव आयोग गुप्त मतदान द्वारा सर्वसम्मति या सहमति की पुष्टि करेगा।

2705. किसी भी चुनाव में कुल वैध मतदान का आधे से अधिक मत प्राप्त करना आवश्यक होगा। अभी तो स्थिति यह है कि कुल मतों का 10 प्रतिशत मत पाने वाला भी जीत जाता है, भले ही 90 प्रतिशत लोग उसे न चाहें।

2706. निर्वाचन का महत्व सापेक्ष होता है, निरपेक्ष नहीं। महत्व उस कार्य को दिये जाने वाले महत्व से तौला जाता है। यदि किसी ऐसी तिजोरी का पहरेदार रखा जाए, जिस तिजोरी में पच्चीस हजार से ज्यादा रखा ही नहीं जाता, तो उस पर नियुक्त किए जाने वाले पहरेदार की अपेक्षा, उस पहरेदार की नियुक्ति में अधिक सतर्कता बरतनी पड़ती है, जिस तिजोरी में करोड़ों रूपया रखा जाता हो, और यदि रखे जाने वाले धन की मात्रा अरबों में होगी तो, पहरेदारों की नियुक्ति में उतनी ही अधिक सतर्कता बरतनी पड़ेगी।

2707. चुनाव का अर्थ है—वर्तमान गुलाम संविधान के समर्थन की मुहर लगवाना, जो पूरी तरह लोकतांत्रिक तरीके से हमारे विरुद्ध षड्यंत्र है। यह कैसी स्वतंत्रता है जिसमें भारत का मतदाता संसद के अधिकारों की कोई सीमा कभी न तय कर सकता है, न ही उन अधिकारों में कभी भी किसी भी परिस्थिति में किसी भी तरीके से कोई कटौती कर सकता है, किन्तु संसद हमारे अधिकारों को कभी भी किसी भी सीमा तक किसी भी तरीके से सीमित कर सकती है, कटौती कर सकती है, शून्यवत् कर सकती हैं।

2708. कोई भी व्यक्ति स्वयं चुनाव लड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं होता, बल्कि अन्य लोग उसका नाम प्रस्तावित करते हैं, तब वह अपनी सहमति मात्र देता है।

2709. सुविधा और बचत को ध्यान में रखते हुए मैंने यह सुझाव दिया है कि परिवार से ऊपर के होने वाले सभी चुनाव में परिवार का मुखिया ही वोट दे और उसके उतने वोट गिने जाएं जितने उस परिवार के सदस्य हैं। स्वराज्य व्यवस्था में कोई दिक्कत नहीं होगी। हम अपना सांसद चुनते हैं, और यही सांसद, राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री चुनते हैं, तब तो यह मांग नहीं उठती कि सब लोग वोट दें। मैंने यदि यह व्यवस्था कर दी कि परिवार के लोग मुखिया चुनेंगे और मुखिया सांसद चुनेगा, तो बहुत बड़ी दिक्कत क्या आ जायेगी?

271 निर्वाचक और निर्वाचित

2710. किसी भी राजनैतिक व्यवस्था में सर्वसम्मति एक आदर्श स्थिति है, किन्तु अन्तिम निर्णय के लिए सर्वसम्मति को आधार नहीं बनाया जा सकता। बहुमत से निर्णय ही व्यावहारिक मार्ग है। यदि किसी चुनाव में जीतने वाला उम्मीदवार चालीस प्रतिशत से भी

कम मत प्राप्त करे, तो निकटतम उम्मीदवार के साथ रेन्डम प्रणाली से चुनाव करा देना चाहिए। रेन्डम प्रणाली वह है जिसमें किसी एक मतदाता संख्या के मतदाता ही वोट कर सकते हैं।

2711. निर्वाचित इकाई के महत्व के आधार पर ही चुनाव प्रणाली का महत्व घटता व बढ़ता है। निर्वाचित संसद की शक्ति जितनी अधिक होगी, उतना ही अधिक निर्वाचन का महत्व भी होगा और उतना ही अधिक अपराधी तत्व निर्वाचित होने का प्रयास करेंगे।

2712. निर्वाचक, निर्वाचित से ऊपर होता है। निर्वाचन प्रणाली निर्वाचित लोग नहीं बना सकते। निर्वाचन प्रणाली बनाने का काम किसी अलग इकाई को या निर्वाचक समूह को करना चाहिए।

2713. जब तक संविधान में विशेष उल्लेख न हो, तब तक किसी भी चुनाव में मतदान अवश्य और गुप्त होना चाहिए, चाहे परिवार का हो या संसद का।

272 निर्वाचन प्रणाली

2720. अब तक हम लोग सूर्य ऊर्जा पद्धति से चल रहे हैं, जहां सारे अधिकार मतदान के द्वारा ऊपर वाले को देते हैं तथा वह इच्छानुसार धीरे-धीरे हमारी व्यवस्था करता है। अब हम अग्नि ऊर्जा पद्धति अपनाना चाहते हैं जिसमें अधिकार धीरे-धीरे ऊपर की ओर आवश्यकता अनुसार बढ़ते हैं।

2721. जब स्वतंत्रता के बाद के प्रारंम्भिक वर्षों में चुनाव प्रणाली विकसित हो रही थी, तब ऐसा अंदाज नहीं था कि संसद समाज के सारे कार्य अपने पास समेटकर इतनी महत्वपूर्ण हो जाएगी। उस समय तो सोचा गया था कि समाज के सभी अंग अपना-अपना कार्य करेंगे और उन्हीं अंगों में से एक अंग संसद भी होगी। हम आज भी देखते

हैं कि किसी धर्मशाला के चुनाव में वैसी मारामारी नहीं होती, जैसी सांसद के चुनाव में होती है क्योंकि धर्मशाला के अध्यक्ष और किसी सांसद के अधिकारों में असीमित अंतर होता है।

2722. निर्वाचन प्रणाली को अधिक मजबूत करने की अपेक्षा निर्वाचित जन प्रतिनिधि के अधिकार, दायित्व, हस्तक्षेप और अवसर को ही घटा दिया जाए, तो निर्वाचन का महत्व भी अपने आप कम हो जाएगा और उसमें होने वाली मारामारी भी कम हो जाएगी।

2723. वर्तमान स्थिति में भारतीय संसद की चुनाव प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है। कोई भी व्यक्ति ईमानदारी और नैतिकता के आधार पर न चुनाव जीत रहा है, न जीत सकता है। चुनावों में बल प्रयोग के अतिरिक्त किसी अन्य तरीके से आपसी सहमति पर कोई प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। लोभ-लालच से वोट लेना-देना कोई अपराध नहीं होना चाहिए। चुनाव उम्मीदवार के खर्च की कोई सीमा नहीं होनी चाहिए।

2724. किसी भी निर्वाचित प्रतिनिधि की शक्ति जनता की अमानत होती है, उसका अधिकार नहीं। वर्तमान नेता उसे अपना अधिकार समझते हैं। किसी भी उम्मीदवार को चुनाव लड़ने और उम्मीदवार स्वयं बनने की कोई स्वतंत्रता नहीं होती। किसी प्रस्तावक के प्रस्ताव पर उम्मीदवार अपनी सहमति मात्र देता है। अमानत और अधिकार का अन्तर समझना चाहिए।

2725. चुनाव के समय निर्वाचक के समक्ष निर्वाचित होने वाले की स्थिति स्पष्ट होनी चाहिए कि वह दल प्रतिनिधि है या जन प्रतिनिधि। हमारी चुनाव प्रणाली को विकृत करने में दल-बदल विधेयक का भी योगदान है। यह स्पष्ट नहीं है कि निर्वाचन व्यक्ति के लिए है या दल के लिए।

2726. भारत की चुनाव प्रणाली पारदर्शी है और चुनाव आयोग लगभग निष्पक्ष। विपक्ष ने इवीएम पर सवाल खड़े करके अपनी मूर्खता प्रमाणित की है।

273 राष्ट्रपति प्रणाली

2730. वर्तमान संसदीय लोकतंत्र की तुलना में राष्ट्रपतीय प्रणाली अच्छी है। राष्ट्रपतीय प्रणाली का अर्थ है कि निर्वाचित मुखिया प्रत्येक सदस्य को आदेश देने के लिए स्वतंत्र हो, और मुखिया पूरी इकाई के सामूहिक आदेश को मानने के लिए बाध्य हो। इसका अर्थ हुआ कि कोई भी सदस्य मुखिया के आदेश के विरुद्ध संयुक्त इकाई के समक्ष अपील कर सकता है। अन्तिम निर्णय संयुक्त इकाई का होगा। परिवार से केन्द्र सरकार तक यही व्यवस्था लागू होनी चाहिए।

2731. मेरे विचार में राष्ट्रपतीय या अध्यक्षीय प्रणाली लोकस्वराज्य से तो अच्छी नहीं है, किन्तु संसदीय लोकतंत्र से अच्छी है। विशेषकर भारत के लिए जहां परिवार व्यवस्था से लेकर समाज व्यवस्था तक केन्द्रीत व्यवस्था के प्रति लोगों में आकर्षण है। अध्यक्षीय प्रणाली भारत के लिए एक अच्छी शुरुआत हो सकती है। मैं यह भी समझता हूं कि राष्ट्रपतीय प्रणाली के लिए आम सहमति बनाना कठिन भी है और लाभ भी अनिश्चित है, किन्तु यदि निर्दलीय लोकतंत्र विकसित किया जाये, तो यह आसान होगा।

273 मतदान जनमत संग्रह

2732. वर्तमान राजनैतिक ढांचे में ईमानदार मिलना तो अपवादस्वरूप ही है, खोजना भी व्यर्थ है, क्योंकि ईमानदार होगा तो जीतेगा नहीं और जीत गया तो परेशान होकर किनारे हो जायेगा।

2733. यदि भारत के मतदाता को जाति, धर्म, शराब, पैसा या भय से मुक्त कर दिया जाय, तो वोट का प्रतिशत बहुत नीचे गिरना निश्चित है।

2734. किसी निर्वाचित इकाई के बीस प्रतिशत सदस्य यदि किसी प्रस्ताव के विरुद्ध वीटो कर दें, तो प्रस्ताव को विवादास्पद मान लेना चाहिए। ऐसा प्रस्ताव मतदान हेतु निर्वाचक इकाई के पास जाना चाहिए, जो साधारण बहुमत से पक्ष या विपक्ष में प्रस्ताव पारित करे। यह व्यवस्था स्थानीय इकाई से लेकर संसद तक प्रत्येक निर्वाचित इकाई में लागू करना चाहिए। निर्वाचक इकाई यदि बहुत बड़ी हो तो उसके बीच एक और इकाई बनाई जा सकती है। कोई निर्वाचित सदस्य लगातार तीन बार असफल वीटों का उपयोग करे, तो उसका यह अधिकार समाप्त कर देना चाहिए।

2735. भारत, दक्षिण एशिया के उन गिने-चुने देशों में शामिल है, जहां न किसी कानून के लिए जनमत संग्रह का कोई प्रावधान है, न ही संविधान संशोधन के लिए। यहां तक कि केशवानंद भारती प्रकरण के द्वारा न्यायपालिका असंवैधानिक कदम उठाकर मूल अधिकारों को संविधान संशोधन से आंशिक रूप से बाहर नहीं करती, तो भारत का तंत्र तो लोक को गुलाम बनाकर रखने के सारे अधिकार अपने पास रख ही चुका था। यदि लोक के पास संविधान संशोधन के सारे अधिकार चले जायें, तो अधिक अच्छा होगा, जिसका अर्थ हुआ कि संविधान संशोधन के किसी भी प्रस्ताव पर जनमत संग्रह आवश्यक होगा।

274 चुनावी राजनीति

2740. भारत में चुनावों के दो पक्ष हैं—(1) सैद्धांतिक पक्ष और (2) व्यावहारिक पक्ष। कोई भी उम्मीदवार स्वयं न तो उम्मीदवार बन

सकता है, न ही चुनाव लड़ सकता है, क्योंकि सैद्धांतिक रूप से सत्ता जनता की अमानत होती है, सत्ताधीशों का अधिकार नहीं। लेकिन व्यावहारिक रूप से जीता हुआ उम्मीदवार सत्ता को अमानत न मानकर अपना अधिकार मानता है।

2741. चुनावों के पूर्व ऐसा नहीं लगता था कि पतन के पाताल तक गई हुई राजनीति पर जल्दी कोई विराम लग पायेगा किन्तु दस वर्ष के कार्यकाल में ही यह स्पष्ट दिखने लगा कि यदि दृढ़ निश्चय हो और परिस्थितियाँ भी अनुकूल हों तो पतन की पराकाष्ठा को बदला जा सकता है।

2742. यदि समाज किसी अपराधी को भी चुनाव लड़ाकर संसद में भेजना चाहे, तो उसे किसी कानून के द्वारा नहीं रोका जाना चाहिए। क्योंकि वह व्यक्ति अपराधी है, यह समाज जानता है और समाज ने यह बात जानते हुए भी उसे उस पद के योग्य माना है।

2743. मतदाता एक प्रकार से अपनी गुलामी पर मुहर लगाने के अलावा कुछ और नहीं करता। जब तक संविधान संसद की गुलामी से मुक्त न हो जायें, तब तक लोकतंत्र संविधान अथवा अन्य सारे प्रयत्न हमारी गुलामी के हथकंडे ही माने जाने चाहिए।

275 राइट टू रिकॉल

2750. नियुक्तिकर्ता को पूरा अधिकार होता है कि वह नियुक्त को कभी भी निलंबित या बर्खास्त कर सकता है। कोई भी सांसद लोक अर्थात् जनता द्वारा नियुक्त होता है, अतः जनता को उसे वापस बुलाने का स्वाभाविक अधिकार होता है। वर्तमान व्यवस्था ने जनता का यह अधिकार छीनकर गलत किया है। जयप्रकाश से लेकर अन्ना हजारे तक ने कई बार उसकी मांग की, किन्तु राजनेताओं ने इसे अव्यावहारिक बताकर अस्वीकार कर दिया।

2751. राइट टू रिकॉल के कई तरीके हो सकते हैं। किसी निर्वाचित सांसद के क्षेत्र के—(1) विकास खण्ड प्रमुखों के प्रस्ताव पर सरपंचों द्वारा मतदान या जनमत संग्रह द्वारा, (2) आम चुनाव के साथ कुछ ऐसे लोगों का चयन, जिनके प्रस्ताव पर जनमत संग्रह या रेन्डम मतदान द्वारा। इसी तरह कोई अन्य तरीका भी हो सकता है, किन्तु जब तक कोई जिम्मेदार इकाई राइट टू रिकॉल के लिए सहमत न हो, तब तक तरीके पर विचार करना घातक है।

2752. राइट टू रिजेक्ट अर्थात् नोटा की मांग राइट टू रिकॉल की मांग को कमजोर करने के उद्देश्य से राजनेताओं ने कराई और लागू कर दिया, जबकि उसका कोई महत्व नहीं है। राइट टू रिकॉल निर्वाचन के बाद का भय है और रिजेक्ट निर्वाचन पूर्व की सतर्कता। रिजेक्ट की मांग करने वालों की नीयत ठीक नहीं थी।

2753. राजनैतिक व्यवस्था पर किसी न किसी प्रकार का अंकुश आवश्यक है। ऐसे अंकुश के लिए ग्राम सभा सशक्तिकरण तथा राइट टू रिकाल की बहुत उपयोगिता है। राइट टू रिकाल एकमात्र ऐसा समाधान है जो राजनेताओं की बढ़ती उच्छृंखलता पर अंकुश में सहायक हो सकता है। राइट टू रिकाल लोक और तंत्र के बीच बढ़ती दूरी को कम करने का एक अच्छा आधार है। दुर्भाग्य से मोरारजी भाई ने इस मांग को नकार दिया था।

2754. विशेषज्ञ वह है, जो बीमारी की जड़ तक जाकर उसके इलाज पर शोध करता है। विशेषज्ञ तो दूसरे शब्दों में वैज्ञानिक होता है जो विद्वान से बहुत ऊपर होता है।

280 समान नागरिक संहिता

2800. समान नागरिक संहिता का अर्थ है—'भारत के प्रत्येक नागरिक के

लिए समान कानून।' भारत अपनी सम्पूर्ण जनसंख्या का देश होगा न की धर्म, जाति, भाषा, लिंग अथवा राज्यों का देश।

2801. समाज में टकराव तथा वर्ग-विद्वेष दूर करने हेतु नागरिक संहिता समान होना आवश्यक है। समान नागरिक संहिता तत्काल लागू कर देने से महिलाओं, आदिवासियों, हरिजनों, विकलांगों, गरीबों तथा वृद्धों पर बुरा असर पड़ सकता है। इस प्रभाव को ठीक करने के लिए निम्न कार्य किए जा सकते हैं—(1) महिलाओं को परिवार की सम्पत्ति में समान अधिकार देना। (2) आदिवासियों, हरिजनों को श्रम मूल्य वृद्धि द्वारा। (3) विकलांगों तथा वृद्धों को शासन के पास बची राशि सभी नागरिकों में समान रूप से बांटकर, तथा ऐसे असहाय जो अकेले हों ऐसे लोगों के सम्पूर्ण भरण-पोषण का दायित्व लेकर।

2802. यदि कोई व्यक्ति समाज निर्मित किसी आचार संहिता का उल्लंघन करे, तो समाज उस व्यक्ति का बहिष्कार कर सकता है किंतु उसे दण्ड नहीं दे सकता। यदि व्यक्ति नागरिक संहिता का उल्लंघन करे, तब राज्य दण्ड दे सकता है। नागरिक संहिता बनाने में राज्य को किसी प्रकार का वर्ग-भेद नहीं करना चाहिए। वर्ग-भेद हमेशा घातक होता है।

2803. भारत में व्याप्त अधिकांश सामाजिक समस्याओं का समाधान समान नागरिक संहिता में ही है। सरकारें समस्याओं को जीवित रखने के उद्देश्य से समान नागरिक संहिता से तो दूरी बनाकर रखती है तथा आचार संहिता में हस्तक्षेप करती हैं। भारत में समान नागरिक संहिता लागू हो जाये तो भारत की अधिकांश समस्याएं अपने आप सुलझ जायेंगी तथा भारत दुनिया में मानवाधिकार के नाम पर अग्रणी देशों में गिना जाने लगेगा।

2804. स्वतंत्रता के पूर्व प्रबल जनमत, जाति-धर्म आधारित राजनैतिक, संवैधानिक व्यवस्था के विरुद्ध समान नागरिक संहिता के पक्ष में था। महात्मा गांधी पूरी तरह धर्म-जाति आधारित राजनैतिक व्यवस्था के विरोधी थे। बाद में हमारे नेताओं ने बुरी नीयत से वर्ग विद्वेष के कानून बना दिये।

2805. प्राकृतिक या मौलिक अधिकार सबके समान होते हैं, जिसमें बालक, युवक और वृद्ध का कोई अंतर नहीं होता। पारिवारिक, सामाजिक और संवैधानिक अधिकारों में कुछ भिन्नता हो सकती है। बालक जब तक बालिग नहीं हो जाता, तब तक परिवार उसका संरक्षक होता है, मालिक नहीं। परिवार में बालक समाज या राज्य की अमानत नहीं होता, बल्कि परिवार का एक सहभागी सदस्य होता है।

2806. मैं इस पक्ष में हूं कि श्रम मूल्य वृद्धि के लिए कृत्रिम ऊर्जा का मूल्य बढ़ाकर सब प्रकार के आरक्षण खत्म कर दिये जायें, साथ ही समान नागरिक संहिता लागू कर दी जाये।

2807. किसी परिवार में जितने सदस्य हों, उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति में सबको समान अधिकार दे देना चाहिए। किसी प्रकार का महिला-पुरुष का भेद नहीं होना चाहिए। हिन्दू कोड बिल या महिला सशक्तिकरण जैसे किसी भी कानून को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए। कमजोरों को भी कोई विशेष अधिकार नहीं दिया जा सकता। उन्हें सरकार चाहे तो विशेष सुविधा मात्र दे सकती है, किन्तु विशेष अधिकार नहीं। जब तक समान नागरिक संहिता का अर्थ प्रत्येक नागरिक को समान स्वतंत्रता से नहीं जोड़ा जायेगा, तब तक समान नागरिक संहिता का नारा सफल नहीं होगा।

2808. भारत सरकार अपनी सारी शक्ति लगाकर भारत में समान नागरिक संहिता लागू कर दे, तो सम्भवतः हिन्दू-मुसलमान, आदिवासी, हरिजन, सवर्ण, स्त्री-पुरुष, के झगड़े तत्काल समाप्त हो सकते हैं।

2809. जो लोग आज मोदी से उम्मीद कर रहे हैं वे अपने गिरेबान में झांककर देखें कि जब मोदी ने समान नागरिक संहिता की इच्छा व्यक्त की, तो कितनों ने उसका ठीक उत्तर दिया? क्या मुसलमानों के बहुमत की ओर से कोई सकारात्मक उत्तर मिला ? यदि भारत धर्मों का देश न होकर एक सौ चालीस करोड़ व्यक्तियों का देश हो जाये, अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक के अधिकारों का आधार समाप्त करके प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार, समान स्वतंत्रता दे दी जाये तो मुसलमान पक्ष में क्यों नहीं रहेगा?

2810. नागरिक संहिता को ठीक से लागू करने के लिए राज्य को कुछ विशेष अधिकार दिये जाते हैं। इन अधिकारों का उल्लंघन गैर-कानूनी होता है और राज्य उसके पालन के लिए भी आपको अनुशासित कर सकता है। व्यक्ति ज्यों ही किसी अन्य के मौलिक अधिकारों की सीमाओं का अतिक्रमण करता है, त्यों ही उस पर नागरिक संहिता लागू हो जाती है और यही नागरिक संहिता उसके कार्य को अपराध घोषित करती है तथा उसे दण्डित भी करती है।

2811. नागरिक संहिता तो वहां से शुरू होती है, जब भारतीय संविधान अपने नागरिक के लिए कोई नियम या कानून बनाता है। वास्तविकता तो यह है कि संविधान या राज्य को व्यक्ति के व्यक्तिगत पारिवारिक या सामाजिक मामलों में कोई नियम-कानून बनाने से बचना चाहिए तथा व्यक्ति, परिवार, समाज को भी चाहिए कि वह संविधान या राज्य के बनाये कानूनों में कोई हस्तक्षेप न करे।

2812. भविष्य में जब भी भारत में श्रम और बुद्धि का तुलनात्मक विश्लेषण होगा, तब अम्बेडकर जी द्वारा श्रम से विश्वासघात के लिए उनका नाम काले अक्षरों में लिखा जाएगा। अब इसका समाधान है समान नागरिक संहिता। क्योंकि जब तक वर्तमान जन्मना जाति प्रथा का अंत नहीं होगा, तब तक सामाजिक एकता सम्भव नहीं हैं। सामाजिक एकता को छिन्न-भिन्न करने वाले अनेक कारकों में से जन्मना जाति प्रथा भी एक महत्वपूर्ण कारक है।

281 आचार संहिता

2813. समान नागरिक संहिता (Common Civil Code) तथा समान आचार संहिता (Common Code of Conduct) बिल्कुल भिन्न विषय हैं। दोनों का अंतर न समझने के कारण भ्रम होता है। नागरिक संहिता नागरिक के लिए होती है, राजनैतिक व्यवस्था से जुड़ी होती है, सामूहिक होती है। जबकि आचार संहिता व्यक्ति की होती है, व्यक्तिगत होती है, समाज तथा राज्य के दबाव से मुक्त होती है। नागरिक संहिता प्रत्येक नागरिक के लिए समान होती है तथा आचार संहिता समान होना सम्भव नहीं है। व्यक्ति का व्यक्तिगत आचरण तब तक आचार संहिता है, जब तक वह किसी अन्य व्यक्ति को किसी भी रूप में प्रभावित न करे। यदि किसी व्यक्ति का कोई आचरण किसी अन्य व्यक्ति को उसकी सहमति के बिना प्रभावित करता है, तब नागरिक संहिता लागू होती है। नागरिक व्यवहार ही नागरिक का सामाजिक व्यवहार होता है। इस सम्बन्ध में समाज के प्रतिनिधि के रूप में राज्य हस्तक्षेप भी कर सकता है और नियम भी बना सकता है। धर्म, जाति, भाषा, व्यवसाय, लिंग आदि के आधार पर किए गए कार्य तब तक व्यक्तिगत आचरण

हैं, जब तक वे किसी अन्य के वैसे ही आचरण में कोई हस्तक्षेप न करे। शासन या समाज को व्यक्ति के ऐसे मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

2814. समान नागरिक संहिता का यह अर्थ नहीं है कि व्यक्ति के अपने स्वंतत्र अधिकार नहीं होंगे। व्यक्ति और नागरिक एक न होकर बिल्कुल अलग होते हैं। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तिगत अधिकार अलग होते हैं तथा नागरिक अधिकार अलग। किसी परिवार का सदस्य होने के बाद भी उसके मौलिक अधिकार व्यक्तिगत होंगे, जिन्हें न राष्ट्र छीन सकता है, न समाज, न परिवार। परिवार एक संगठन है तथा संगठन में शामिल होना न होना व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता है किन्तु संगठन में शामिल होने के बाद उसके अधिकार सामूहिक हो जाते हैं।

2815. आचार संहिता व्यक्ति के लिए स्वैच्छिक होती है और नागरिक संहिता बाध्यकारी। आचार संहिता व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है तथा उसमें कोई नागरिक संहिता तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकती, जब तक किसी अन्य व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध उसकी स्वतंत्रता में बाधा न पहुँचायी जाये।

2816. प्रत्येक नागरिक को समान संवैधानिक अधिकार, समान नागरिक संहिता मानी जाती है। समान नागरिक संहिता, समान आचार संहिता से बिलकुल विपरीत है। समान नागरिक संहिता में धर्म, जाति, भाषा, लिंग, उम्र, क्षेत्रीयता, गरीब-अमीर, उत्पादक-उपभोक्ता आदि का भेद नहीं होता।

2817. समान आचार संहिता समाज की समस्याओं के समाधान में बाधक हो सकती है, पर राष्ट्रीय भावना से संबंधित समस्याओं के समाधान में सहायक होगी।

282 धार्मिक विषय

2820. संघ परिवार की समान नागरिक संहिता सिर्फ मुसलमानों पर अंकुश लगाने तक सीमित है। समान नागरिक संहिता लागू होने पर गो-हत्या बंद करने की मांग निरर्थक हो जाएगी। भाजपा यह स्वीकार नहीं कर सकती। समान नागरिक संहिता मुसलमानों के व्यक्तिगत व्यवहार में बाधक नहीं है, क्योंकि विवाह राज्य का विषय न होकर व्यक्तियों का आपसी, पारिवारिक या सामाजिक विषय होता है। समान नागरिक संहिता लागू होते ही हिन्दू कोड, सब प्रकार के आरक्षण तथा विशेषाधिकार के वर्तमान प्रचलित कानून अपने आप समाप्त हो जाएंगे।

2821. समान नागरिक संहिता में देश की राजनैतिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त होते हैं जबकि हिन्दू राष्ट्र में नहीं हो सकते। गो-हत्या बन्दी का कानून उस देश में नहीं बन सकता, जहां समान नागरिक संहिता लागू है। भारत में आज तक समान नागरिक संहिता लागू नहीं है। समान नागरिक संहिता के अभाव में आप हिन्दू राष्ट्र भी मांग सकते हैं और गो-हत्या बन्दी भी। हिन्दू राष्ट्र अथवा गौ हत्या बंदी का कानून लागू करने के पूर्व जनमत संग्रह अथवा संविधान में ऐसा उल्लेख आवश्यक होगा।

2822. जब-जब हिन्दुओं ने समान नागरिक संहिता की बात उठाई, तो साम्प्रदायिक मुसलमानों ने तो विरोध किया ही, किन्तु अन्य लोगों ने भी खुलकर समर्थन की पहल नहीं की। आपको अपने दिल से दुविधा निकालनी होगी। तभी आप मुसलमान होते हुए भी साम्प्रदायिकता के संदेह से बच सकेंगे। समान नागरिक संहिता

भारत का मुसलमान खुद मांगने लगेगा। जैसे-जैसे संगठित हिन्दुत्व मजबूत होगा, वैसे-वैसे समान नागरिक संहिता की मांग बढ़ेगी।

2823. भारत की वर्तमान राजनैतिक स्थिति में गाय, गंगा, मंदिर की तुलना में समान नागरिक संहिता की अधिक उपयोगिता है, क्योंकि भारतीय जीवन-पद्धति इतनी अधिक सुविचारित और वैज्ञानिक आधार पर स्थापित है कि कोई अन्य उसका मुकाबला नहीं कर सकेगा। आज भारत में समान नागरिक संहिता तथा धर्म परिवर्तन कराने के प्रयत्नों पर प्रतिबंध, मंदिर या धारा 370 से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। समान नागरिक संहिता लागू होने के बाद धर्म के आधार पर कोई कानून नहीं बनाया जा सकता, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो।

2824. समान नागरिक संहिता एक ऐसा विषय है, जिस पर भारत के मुसलमान सहमत भी नहीं होंगे और विरोध भी नहीं कर सकेंगे। विश्व जनमत भी समर्थन कर सकता है। यदि जल छींटने से सांप मर जाये, तो लाठी-डंडे, गोली, बंदूक की आवश्यकता क्या है?

2825. भविष्य में किसी भी प्रकार का सामाजिक या राजनैतिक विभाजन न हो, इसका सिर्फ एक ही समाधान है और वह है समान नागरिक संहिता। भारतीय संविधान से धर्म शब्द को निकालकर समान नागरिक संहिता लागू कर देना चाहिए। राज्य के समक्ष व्यक्ति एक इकाई हो। कोई अल्पसंख्यक, बहुसंख्यक का भेद न हो।

2826. सामान्य मुसलमान समान नागरिक संहिता के पक्ष में है लेकिन कट्टरवादी मुसलमान उन्हें खुलकर बोलने से रोक देते हैं। संघ परिवार द्वारा समान आचार संहिता को ही नागरिक संहिता बता देने के कारण भी यह भ्रम पैदा होता है।

283 मुस्लिम सांप्रदायिकता

2830. मुस्लिम देश सांप्रदायिक नहीं होते हैं बल्कि सांप्रदायिक भावना व्यक्तियों में होती है और वही सांप्रदायिक भावना संगठित होकर राष्ट्र की पहचान बन जाती है। यदि कोई मुस्लिम बहुल देश आम मुस्लिम धारणा के विरुद्ध न्याय की बात करने लगे तो वह लम्बे समय तक नहीं टिक पाता। भले ही राजनैतिक परिस्थितियों के कारण बहुत से मुस्लिम देश भारत के पक्ष में रहे, किन्तु उन देशों के कट्टरवादी मुसलमानों की सहानुभूति व सक्रियता कश्मीर के मामलों में भारत के विरुद्ध रही।

2831. मुस्लिम साम्प्रदायिकता ने जिस तरह धार्मिक हिन्दुत्व के समक्ष असमंजस की स्थिति पैदा कर दी है, उससे मुक्ति के लिए भारत सरकार को तत्काल पहल करनी चाहिए। सौभाग्य से वर्तमान भारत सरकार इस दिशा में निरन्तर सक्रिय है।

2832. मुस्लिम साम्प्रदायिकता उग्रवाद की दिशा में बढ़ी किन्तु हमने कभी उसे कुचलने का प्रयास नहीं किया। परिणामस्वरूप वह आतंकवाद की दिशा में बढ़ गई। अब सर्वोच्च प्राथमिकता के आधार पर उसे नष्ट करना ही एकमात्र मार्ग है।

283 पर्सनल ला

2833. प्रत्येक व्यक्ति के पर्सनल ला में कोई सरकार न कोई कानून बना सकती है, न ही हस्तक्षेप कर सकती है। पर्सनल ला अर्थात् स्व-निर्णय प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। मुसलमान जिसे पर्सनल ला कहते हैं, वह सामुदायिक अधिकार है, व्यक्तिगत नहीं। महिला और पुरुष के व्यक्तिगत अधिकारों में कोई भेद नहीं हो सकता। सरकार तलाक पर कोई कानून नहीं बना सकती, क्योंकि

किसी भी व्यक्ति को किसी भी समय तलाक की स्वाभाविक स्वतंत्रता होती है।

2834. पर्सनल ला व्यक्ति का व्यक्तिगत कानून होता है, जिसे व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सीमा में स्वतंत्रतापूर्वक बना भी सकता है, बदल भी सकता है तथा कार्यान्वित भी कर सकता है। कोई सरकार या समाज व्यक्तिगत कानूनों में न कोई दखल दे सकता है, न ही कोई सीमा बना सकता है। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि पर्सनल ला सिर्फ अकेले व्यक्ति का ही हो सकता है, नागरिक का नहीं।

2835. यदि किसी व्यक्ति के किसी कार्य का संबंध किसी अन्य व्यक्ति से जुड़ जाता है, तब वह सामाजिक या संवैधानिक स्वरूप ग्रहण कर लेता है, पर्सनल ला नहीं रहता। मुस्लिम पर्सनल ला किसी भी रूप में पर्सनल ला के दायरे में नहीं आता, बल्कि सामाजिक कानूनों के दायरे में आता है। कोई भी समझौता और धार्मिक मान्यता व्यक्ति के पर्सनल ला के अधिकार में कभी कोई कटौती नहीं कर सकता।

2836. किसी भी समझौते के आधार पर किसी भी व्यक्ति को बलपूर्वक बंधक बनाकर नहीं रखा जा सकता, जब तक उसने कोई अपराध न किया हो। तलाक के संबंध में बनाये गये सभी कानून गलत हैं। समझौता तोड़ने की स्वतंत्रता दोनों पक्षों को समान रूप से है। यदि उस समझौते में कोई एकपक्षीय बात लिखी है, तो उसकी समीक्षा समाज भी कर सकता है और राज्य भी कर सकता है क्योंकि कोई भी समझौता किसी की पूर्व सहमति से भी मौलिक अधिकारों के विपरीत क्रियान्वित नहीं किया जा सकता।

2837. पहले हिन्दुओं पर लगाये जा रहे अन्यायपूर्ण प्रतिबंधों की मुसलमानों ने परवाह नहीं की, तो अब यदि उसी आधार पर

भारत सरकार मुसलमानों के बहु-विवाह पर प्रतिबंध लगा दे, तो मुसलमान कैसे आवाज उठा सकते हैं। पर्सनल ला प्रत्येक व्यक्ति के समान होते हैं, उसमें हिन्दू-मुसलमान का भेद नहीं होता है। सत्तर वर्षों तक मुसलमानों ने संगठित वोट के आधार पर भारत के बहुसंख्यक हिन्दुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक बनाकर रखा। इसलिए स्पष्ट है कि यदि कोई स्वयं के हितों के लिए दूसरे समूह पर हो रहे अत्याचार पर चुप रहता है, तो उस पर भी वह अत्याचार हो सकता है।

2838. आप रोजा, नमाज, हज, जकात, कलमा को अपने धार्मिक अधिकार कह सकते हैं। किन्तु तलाक, बहु-विवाह, मांसाहार आदि आपके धार्मिक अधिकार नहीं हो सकते। कोई भी कानून आपको एक से अधिक विवाह करने से रोक सकता है, क्योंकि आपको धर्म में चार तक विवाह करने की छूट दी है न की चार विवाह करने का आदेश दिया है।

2839. जिस समय हिन्दुओं के पति-पत्नी के बीच संबंध-विच्छेद में कानूनी हस्तक्षेप करने का प्रावधान बना, वह भी पूरी तरह गलत था।

284 हिन्दू कोड बिल

2840. हिन्दू कोड बिल भारतीय समाज व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने का घातक प्रयास रहा है। यह कानून समाज की छाती में एक कील के समान चुभा हुआ है। हिन्दू कोड बिल पंडित नेहरू और डॉ अम्बेडकर की सांप्रदायिक सोच से पैदा हुआ कानून है। हिन्दू कोड बिल सांप्रदायिक है, असंवैधानिक है, समानता के विरुद्ध तथा बुरी नीयत से लाया गया कानून है। हिन्दू कोड बिल हमारी परिवार

व्यवस्था को तोड़ने में पूरी तरह सहायक है। हिन्दू कोड बिल का कोई भी अंश स्वीकार करने योग्य नहीं है।

2841. धर्मनिरपेक्षता और धर्म के आधार पर कानूनों का निर्माण दो विपरीत अवधारणा है। हिन्दू कोड बिल ने हिन्दू समाज में असुरक्षा की भावना पैदा की। इसने भारत को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक के रूप में बांट दिया। हिन्दू कोड बिल बनाना धर्मनिरपेक्षता के बिल्कुल विपरीत है और आज भी भारतीय लोकतंत्र के लिए एक कलंक है। इस बिल की आवश्यक बातें तो सभी पर समान रूप से लागू कर दी जाये और अनावश्यक प्रावधानों को हटा दिया जाये। वैसे इसमें समाज और परिवार को तोड़ने वाले प्रावधान ज्यादा हैं और जोड़ने वाले कम।

2842. हमारे नेताओं ने ही हिन्दू कोड बिल में लिखा कि कितनी पीढ़ी तक के सगोत्रीय विवाह मान्य होंगे, और कितने नहीं। अमान्य विवाह को दण्डनीय अपराध माना गया।

2843. हिन्दू कोड बिल बनाने की मांग नेहरू, अम्बेडकर के द्वारा स्वतंत्रता के तत्काल बाद शुरू कर दी गई थी। मुसलमानों की आबादी बढ़ती रहे, ऐसा सोचकर हिन्दू कोड बिल में यह प्रावधान किया कि हिन्दू एक से अधिक विवाह नहीं कर सकते और मुसलमान कर सकते हैं। इस प्रावधान को उन्होंने उन हिन्दू महिलाओं के प्रति न्याय बताया, जिस हिन्दू धर्म से उनके मन में सदैव घृणा रही।

2844. हिन्दू कोड बिल सामाजिक सुधार के उद्देश्य से न लाकर हिन्दुओं की पारिवारिक व्यवस्था को तहस-नहस करने के उद्देश्य से लाया गया था। आदर्श स्थिति तो यह होगी कि हिन्दू कोड बिल सरीखे परिवार तोड़क, समाज तोड़क कानूनों को समाप्त कर दिया जाये।

2845. पंडित नेहरू तथा अम्बेडकर ने मिलकर मुसलमानों और साम्यवादियों को खुश रखने के लिए एक ऐसा हिन्दू कोड बिल बना दिया, जिसने भारत में रहते हुए हिन्दुओं को दूसरे दर्जे का नागरिक बना दिया। हिन्दू कोड बिल भारत के लिए एक कलंक था और रहेगा। हिन्दू कोड बिल ने हिन्दू और मुसलमान के बीच एक स्थाई दीवार खड़ी कर दी है। हिन्दू कोड बिल भारत के हिन्दुओं की छाती में एक ऐसी कील की तरह चुभा हुआ है, जो निरंतर दर्द पैदा कर रहा है किन्तु समाधान नहीं दिखता।

290 लोकपाल

2900. लोकपाल व्यवस्था भ्रष्टाचार का समाधान नहीं है। लोकपाल भ्रष्टाचार नियंत्रण से ध्यान हटाने का एक उपकरण मात्र है। वर्तमान भ्रष्टाचार वृद्धि की गति को लोकपाल कुछ कम कर सकता है। भ्रष्टाचार कम नहीं कर सकता।

2901. यह भ्रष्ट व्यवस्था राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के भ्रष्ट अध्यक्ष की नोटिसों से नहीं सुधरने वाली है न ही सुप्रीम कोर्ट के पार्ट टाइम निगरानी या कार्यक्रमों से, न ही इसके खिलाफ होने वाली लोकपाल क्रांति को सामाजिक न्याय और धर्मनिरपेक्षता की दीवारों से रोका जा सकेगा।

291 दल-बदल कानून

2910. दल-बदल कानून भारतीय लोकतंत्र का सबसे अधिक घातक, अलोकतांत्रिक तथा असंवैधानिक कानून है। इस कानून के कारण राजीव गांधी का इतिहास हमेशा कलंकित रहेगा, क्योंकि यह कानून सांसदों का जनप्रतिनिधित्व छीनकर उसे दल प्रतिनिधि बना देता है। यह कानून सांसदों के संसद में वाक्-स्वातंत्र्य का

संवैधानिक अधिकार छीन लेता है। निर्वाचित जनप्रतिनिधि को रोबोट, गुलाम या भेड़-बकरी के समान बना देता है, दलों में आंतरिक लोकतंत्र को समाप्त करके तानाशाही को बढ़ाता है तथा भ्रष्टाचार का केन्द्रीकरण करता है। अब राजनैतिक क्रय-विक्रय खुदरा में न होकर थोक में ही हो सकता है।

292 भाषा

2920. अपने मनोभाव और विचार दूसरे व्यक्ति तक ठीक उसी अर्थ में पहुंचाने के माध्यम को भाषा कहते हैं। भाषा सर्वदा श्रोता की होती है, वक्ता की नहीं। भाषा सर्वदा ऐसी होनी चाहिए, जिससे श्रोता, वक्ता के मनोभावों को आसानी से समझ सके।

2921. भाषा को राष्ट्र, संस्कृति या धर्म के साथ जोड़ना गलत भी है और हानिकारक भी। अटल जी का संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी भाषा का प्रयोग करना हानिकारक प्रयास था। जहां पर विचारों का महत्व अधिक हो, वहां भाषा को महत्वपूर्ण बनाना उचित नहीं।

2922. किसी इकाई को किन्हीं अन्य इकाइयों के आपसी संवाद की भाषा तय करने का कोई अधिकार नहीं है। उक्त इकाई अपने संवाद की भाषा निश्चित करने हेतु स्वतंत्र है। किन्तु जब उनका सम्बन्ध किसी अन्य इकाई से आता है, तब वे दोनों इकाइयां अपनी भाषा तय कर लेंगी।

2923. उर्दू यदि हिन्दी के साथ प्रतिस्पर्धा में पिछड़ रही है, तो इसमें उर्दू की अक्षमता का दोष है, हिन्दी का नहीं। भाषा के नाम पर अंग्रेजी समर्थकों ने हिन्दी के साथ सौतेला व्यवहार किया।

2924. यदि कोई श्रोता हमारी भाषा नहीं जानता है, तो उसे इशारे से भी समझाना पड़ता है। किन्तु अटल जी ने अनदेखी करके अपनी

भाषा स्वयं तय की, जबकि भाषा श्रोताओं के आधार पर तय करनी चाहिए थी।

2925. भाषा के आधार पर प्रान्त रचना करना गलत था। भाषा के आधार पर प्रशासनिक इकाइयां बनाने के कारण भाषा विवाद भी बढ़े और क्षेत्रीयता भी बढ़ी।

293 कूटनीति

2930. कूटनीति हमेशा ही शासन में सहायक होती है और व्यवस्था में घातक।

2931. आज देश को ऐसे कृष्ण की आवश्यकता है, जो हर बात पर युद्ध का नगाड़ा न बजाने लगे, वह पहले हर तरह समझौते का प्रयास करे और यदि अंतिम स्थिति होगी और युद्ध अवश्यम्भावी हो जायेगा तो उस स्थिति में भी मजबूती के साथ टक्कर दी जाये।

2932. कूटनीति का उपयोग शत्रु के विरुद्ध तो हो सकता है, किन्तु प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध यदि नीचे स्तर की कूटनीति होती है, तो वह पूरी तरह अनैतिक कार्य माना जाता है।

294 हड़ताल

2940. अधिकांश हड़तालें संगठित समूहों द्वारा अधिकाधिक अधिकार प्राप्ति के लिए होती हैं जो अन्य असंगठितों के शोषण का माध्यम है। अधिकांश हड़तालें या चक्का जाम व्यवस्था को ब्लैकमेल करने के उद्देश्य से होते हैं। अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ये दूसरों को कष्ट देते हैं। जब अपने अधिकारों की प्राप्ति का कोई भी प्रजातांत्रिक मार्ग शेष न हो, तभी हड़ताल चक्का जाम या आंदोलन का मार्ग अपनाया जा सकता है। गुलाम भारत में यह उचित था और प्रजातांत्रिक भारत में अनावश्यक। अधिकांश

आंदोलनों में समाज-विरोधी तत्वों का वर्चस्व हो रहा है। पुराने समय में राजनीतिक दल या सामाजिक संस्थाएं समस्याओं के समाधान के लिए हड़ताल या आंदोलन का सहारा लेती थी। अब हड़तालों या आंदोलनों के लिए समस्याएं खोजी जाती हैं।

2941. हड़ताल करना प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है। हड़ताल कराना राष्ट्र विरोधी कार्य है तो चक्का जाम अपराध होता है। हड़ताल कराने या चक्का जाम को पूरी तरह प्रतिबंधित कर देना चाहिए। लोकतंत्र में हड़ताल या चक्का जाम पूरी तरह गलत कार्य है, किन्तु सभी संगठन समाज और राज्य को ब्लैकमेल करने के लिए इनका सहारा लेते हैं।

2942. भारत का सरकारी कर्मचारी यह मानता है कि जब भारत के राजनेता दोनों हाथों से देश लूट रहे हैं, तो लूट के माल में उनका हिस्सा क्यों नहीं होना चाहिए?

294 अनशन

2943. स्वतंत्रता के काल में जन जागृति के उद्देश्य से सत्याग्रह होता था तथा अनशन का उपयोग अपने लोगों के मार्ग परिवर्तन के लिए किया जाता था। वर्तमान समय में अनशन का मूल अर्थ बदलकर जन जागृति के लिए करने की परम्परा हो गई है। गांधी जी ने अंग्रेजों पर दबाव बनाने के लिए सत्याग्रह का ही सहारा लिया था, अनशन का नहीं।

294 अपराध

2944. अपराध पूरी दुनिया में सिर्फ पाँच ही होते हैं— (1) चोरी, डकैती, लूट, (2) बलात्कार, (3) दादागिरी, आतंक, (4) मिलावट, (5) जालसाजी, धोखाधड़ी। धूर्त्त लोग अपराध की विकृत परिभाषा

बनाकर हमे भ्रमित कर देते हैं। वे गैर-कानूनी कार्यों को भी अपराध कहना शुरू कर देते हैं। जुआ, शराब, गांजा, ब्लैक, वैश्यावृति, छुआछूत, दहेज, तस्करी आदि हजारों गैर-कानूनी कार्य अपराधों में शामिल होकर वास्तविक पाँच अपराधों की पहचान धूमिल कर देते हैं।

2945. पांच प्रकार के अपराधों को तीन नम्बर और अन्य गैर-कानूनी कार्यों को दो नम्बर कहना एक अच्छा और सुविधाजनक तरीका हो सकता है। इससे अपराधियों की अलग पहचान बनाने में मदद मिलेगी। हम लोगों ने रामानुजगंज में इस तरीके का सफल प्रयोग किया।

295 सैनिक

2950. वर्तमान समय में सैनिक दो तरह के होते हैं—(1) देश के लिए लड़ते हैं, (2) सरकारी नौकरी करते हैं। जो देश के लिए लड़ते हैं, वे कभी किसी आंदोलन में नहीं आते। वे कभी सुविधाओं की मांग नहीं करते। जो नौकरी करते हैं, वे हमेशा सुविधा व सम्मान की मांग करते हैं। भारत में सैनिकों को पर्याप्त सम्मान और सुविधा प्राप्त है।

296 अन्य

2960. राजनीति के दस नाटक—

1. समाज का आठ आधारों पर वर्ग विभाजन करके वर्ग-विद्वेष फैलाना और उसे वर्ग-संघर्ष तक ले जाना।
2. समस्याओं का ऐसा समाधान खोजना कि उस समाधान से ही एक नई समस्या पैदा होती हो।
3. समस्या की प्रवृत्ति के विपरीत समाधान की प्रकृति।

4. राष्ट्र शब्द को ऊपर उठाकर समाज शब्द को नीचे गिराना।
5. वैचारिक मुद्दों पर बहस को पीछे करके भावनात्मक मुद्दों को आगे लाना।
6. समाज को शासक और शासित में बांटकर दोनों के मनोबल में फर्क करने का संगठित प्रयास।
7. समाज द्वारा स्वयं को अपराधी मानने की भावना का विकास।
8. शासन की भूमिका बिल्लियों के बीच बंदर के समान।
9. आर्थिक असमानता वृद्धि का प्रजातांत्रिक स्वरूप।
10. प्राथमिकताओं के क्रम में सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा जन कल्याणकारी कार्यों को उच्च स्थान पर रखना।

❒

3

राजनैतिक

300 विकृत लोकतंत्र

3000. स्वतंत्रता के पूर्व जब लोकतंत्र भारत में नहीं था, तब से ही भारत के आम नागरिक किसी व्यवस्था के प्रति निष्ठा न रखकर व्यक्ति के प्रति रखते रहे हैं। राजा के प्रति सम्मान भाव था, राज्य व्यवस्था के प्रति नहीं, क्योंकि व्यवस्था से राजा न बनकर राजा की व्यवस्था होती थी। स्वतंत्रता के बाद भी उक्त व्यक्ति आधारित निष्ठा प्रणाली में कोई बदलाव नहीं आया।

3001. अव्यवस्था की एक विशेष पहचान होती है कि वहां असंगठित समाज पर संगठित गिरोह हावी हो जाता है। सैद्धान्तिक सत्य है कि दो संगठित व्यक्तियों का समूह, बीस असंगठित व्यक्तियों पर भारी पड़ता है।

3002. लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था वाले देशों में भारत एकमात्र ऐसा देश है, जहां लोकतंत्र की जड़ें बहुत गहराई तक जमीं हुई हैं, अर्थात् यहां के नागरिकों में किसी हद तक अव्यवस्था सहन कर सकने की क्षमता मौजूद है।

3003. वर्तमान संसदीय प्रणाली बहुमत एवं अल्पमत के कारण विरोध की राजनीति बन कर रह गयी है। विरोध के इसी जहर ने विकेन्द्रीकृत होकर ग्रामीण जीवन को पंगु कर दिया है और आज गाँव एक परिवार न होकर टुकड़े-टुकड़े में बंट गया है। पंचायतें राजनीतिज्ञों की दूसरे दर्जे की टीम के खिलाड़ियों का खेल बनकर रह गयी हैं। संसदीय लोकतंत्र असफल है, इसे सहभागी लोकतंत्र के रूप में बदलना चाहिए। भारत को इस दिशा में पहल करनी चाहिए।

3004. लोकतंत्र हमारा लक्ष्य है। हम संवैधानिक सत्ता को समझाकर या जनमत का भय दिखाकर, किसी एक दिशा के लिए सहमत कर सकते हैं। यदि फिर भी संवैधानिक सत्ता न समझे, तो हम उस सत्ता को बदल सकते हैं और फिर भी न माने, तो हम संवैधानिक तरीके से संविधान में बदलाव कर सकते हैं।

3005. प्रजातंत्र भी दो तरह का है—(1) आदर्श, (2) विकृत। आदर्श प्रजातंत्र वह है, जिसमें शासन के अधिकार तो बहुत होते हैं, किन्तु शासन का हस्तक्षेप कम होता है और दायित्व भी। प्रजातंत्र तब विकृत हो जाता है, जब शासन के पास अधिकारों के साथ-साथ दायित्व तथा हस्तक्षेप अधिक हो जाता है।

3006. पूरे देश में अधिकारों की असमानता बढ़ती गई। एक-एक कर समाज के सभी अधिकार शासन के पास केन्द्रित होते गये और भारत लोकतंत्र का कंकाल मात्र रह गया।

3007. राजनैतिक रूप से भारत दो विचारधाराओं का संगम है—(1) वामपंथी और (2) दक्षिणपंथी। वामपंथियों का नेतृत्व साम्यवादियों के पास है और दक्षिणपंथियों का संघ परिवार के पास। दोनों ही समूह पूरी तरह साम्प्रदायिक हैं। साम्यवाद मुस्लिम तुष्टीकरण और

संघ परिवार हिन्दू तुष्टीकरण का खुला उपयोग करते हैं। दोनों ही केन्द्रित सत्ता के पक्षधर हैं। साम्यवाद की नीति अधिक से अधिक केन्द्रित सत्ता को लेकर चलती है और संघ परिवार भी अधिक से अधिक मजबूत केन्द्र का समर्थक है। दोनों में से कोई भी शासन के पास न्यूनतम अधिकार, हस्तक्षेप और दायित्व के पक्षधर नहीं हैं।

3008. भारत की राजनीति ने दो समूहों में बंटकर लोकतंत्र को सत्ता संघर्ष का मैदान बना दिया। इस सत्ता संघर्ष ने ही लोकतंत्र को इस सीमा तक विकृत कर दिया है कि परिणाम पूरी तरह विपरीत हो गया और चोरी, डकैती, बलात्कार, मिलावट, कम तौलना, धोखाधड़ी, जालसाजी, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातीय टकराव, श्रम-शोषण, आर्थिक विषमता जैसी समस्याएं लगातार बढ़ने लगी और बढ़ती ही जा रही हैं।

3009. लोकतंत्र दो तरह का होता है—आदर्श और विकृत। आदर्श लोकतंत्र में व्यक्ति के मौलिक अधिकार प्रकृति प्रदत्त होते हैं और विकृत लोकतंत्र में मौलिक अधिकार संविधान दे और ले सकता है। आदर्श लोकतंत्र में लोक नियंत्रित तंत्र होता है, लोक मालिक और तंत्र प्रबंधक। विकृत लोकतंत्र में तंत्र शासक और लोक शासित रहता है। जब न्याय और कानून में टकराव होता है, तब आदर्श लोकतंत्र में न्याय महत्वपूर्ण होता है और विकृत लोकतंत्र में कानून। विकृत लोकतंत्र में संगठन शक्तिशाली होते हैं, संस्थाएं कमजोर। आदर्श लोकतंत्र में संस्थाएं मजबूत होती हैं और संगठन कमजोर।

3010. किसी व्यक्ति के मूल अधिकारों में कोई कटौती या आक्रमण कोई भी अन्य इकाई तभी कर सकती है, जब या तो उस व्यक्ति की

सहमति प्राप्त हो अथवा सर्वोच्च इकाई ने व्यवस्था के अंतर्गत उसे अधिकार दिया हो।

3011. पिछले 30-40 वर्षों से दल की अपेक्षा व्यक्ति का महत्व चुनावों में बढ़ता गया। दल केन्द्रित लोकतंत्र के स्थान पर व्यक्ति केन्द्रित दल का लोकतंत्र मजबूत होने लगा। इसका परिणाम हुआ कि सभी दल, व्यक्ति केन्द्रित होने लगे। इसका श्रेय दल-बदल कानून को जाता है।

3012. सीधा-सा सिद्धांत है कि लुटेरे, लूट की कार्यवाही को अंजाम देते समय एकजुट रहते हैं, किन्तु किसी तरह का खतरा समाप्त होने के बाद लूट का माल बंटवारा करते समय उनमें आपस में विवाद पैदा हो जाता है। तंत्र से जुड़ी वर्तमान व्यवस्थाओं में वर्तमान समय में यही लूट के माल में बंटवारे का संघर्ष चल रहा है।

3013. लोकतंत्र के तीन स्तम्भ माने जाते हैं—(1) विधायिका, (2) न्यायपालिका, (3) कार्यपालिका। पूरे विश्व में लोकतंत्र की प्रतिष्ठा बढ़ी और वही तानाशाही का एकमात्र विकल्प मान लिया गया। लोकतंत्र के तीनों स्तम्भों के पास अधिकार और शक्ति तो बढ़े और इसी अनुपात में लोकतंत्र के तीनों स्तम्भों में विकृतियां भी बढ़ीं। आज लोकतंत्र वरदान है या अभिशाप यह भी एक चर्चा का विषय बन गया है।

3014. विकृत लोकतंत्र में लोकहित को छोड़कर लोकप्रिय कदम उठाने की प्रतिस्पर्धा होने लगी है। यह प्रतिस्पर्धा दक्षिण एशिया के भारत सहित सभी देशों में हो रही है।

3015. लोकतांत्रिक भारत में, केन्द्र में सारी सत्ता एक ही परिवार के इर्द-गिर्द ही घूमती रही। या तो वह परिवार स्वयं सत्ता में रहा अथवा

विपक्ष की भूमिका में भी रहकर मौलिक परिवर्तन के कोई अवसर नहीं दिये। लोकतंत्र के नाम पर एक खानदानी नेतृत्व में एक छोटे-से गिरोह के ही शासन को आज तक लोकतंत्र कहा गया, क्योंकि उस गिरोह के विकल्प के रूप में खड़ा विपक्ष सिर्फ सत्ता-लोलुप व्यक्तियों का समूह था, जिसमें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखता था, जो प्रधानमंत्री पद को अपना स्वाभाविक अधिकार न समझकर जनता की अमानत समझे। आज भी वह परिवार प्रधानमंत्री पद को जनता की अमानत मानने के लिए तैयार नहीं है।

3016. पूरी दुनिया में आठ विकृतियों का सहारा लेकर लोकतंत्र, शेष समाज को गुलाम बनाने के लिए प्रयत्नशील है—

(1) विचार-मंथन की जगह विचार-प्रचार को अधिक प्रभावोत्पादक बना दिया जाये।

(2) संचालक और संचालित के बीच दूरी लगातार बढ़ायी जाये।

(3) राजनीति और समाजसेवा का व्यवसायीकरण कर दिया जाये।

(4) भौतिक पहचान का संकट पैदा कर दिया जाये और योग्यता की जगह पूजा, पोशाक, बाल-दाढ़ी आदि की पहचान को ही योग्यता का मापदण्ड बना दिया जाये।

(5) समाज को तोड़कर वर्ग में बदलने का प्रयास हो तथा वर्ग-निर्माण, वर्ग-संघर्ष, वर्ग-विद्वेष को प्रोत्साहित किया जाये।

(6) समाज व्यवस्था निष्प्रभावी हो जाये।

(7) मानव स्वभाव ताप वृद्धि का निरंतर विस्तार होता रहे।

(8) मानव स्वभाव स्वार्थ वृद्धि भी लगातार बढ़ती रहे।

3017. अभी सिस्टम की तानाशाही को ही हम लोकतंत्र के नाम से पुकारते हैं, जो वास्तव में विकृत या संसदीय लोकतंत्र है। आदर्श लोकतंत्र को लोकस्वराज्य या सहभागी लोकतंत्र कहते हैं। तानाशाही से लोकतंत्र इसलिए अच्छा होता है कि लोकतंत्र से लोकस्वराज्य की ओर जाना आसान है, तानाशाही में कठिन।

3018. लोकतंत्र का समाधान लोकस्वराज्य ही है, तानाशाही नहीं। दुनिया के किसी भी देश में यदि लोकतंत्र लोकस्वराज्य की दिशा में न जाकर सत्ता तक सीमित रह जाता है, उसे विकृत लोकतंत्र कहते हैं।

3019. सर्व विदित है कि विकृत लोकतंत्र हमेशा ही अव्यवस्था का विस्तार करता है, जिसका मात्र दो ही समाधान है—(1) लोकतंत्र को लोकस्वराज्य की दिशा देना और (2) तानाशाही।

3020. अभी तक हम, सरकार शासक और समाज शासित की भूमिका में रहे हैं। यह स्थिति आदर्श लोकतंत्र की न होकर प्रदूषित लोकतंत्र की है। पिछले पचहत्तर वर्षों से भारत में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था लागू है। किंतु भारत में प्रारम्भ से ही प्रदूषित लोकतंत्र रहा है, आदर्श नहीं।

3021. संसद में विपक्ष और विरोधी की भूमिका अलग-अलग होती है। यदि विपक्ष विरोधी की भूमिका में आ जाये, तो लोकतंत्र विकृत हो जाता है। संसद को देश हित, समाज हित के मुद्दों पर एक साथ बैठकर स्वतन्त्रतापूर्वक विमर्श करना चाहिए। कानून बनाते समय पक्ष और विपक्ष के स्थान पर सभी सांसदों को अपनी बात रखने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

302 आदर्श लोकतंत्र

3022. लोकतंत्र दो प्रकार का है, आदर्श और विकृत। आदर्श लोकतंत्र जीवन-पद्धति से शुरू होकर शासन पद्धति तक जाता है, तो विकृत लोकतंत्र सीधा शासन पद्धति तक आ जाता है। आदर्श लोकतंत्र लोकस्वराज्य की ओर झुका होता है, तो विकृत लोकतंत्र तानाशाही की ओर। पश्चिम के देशों में लोकतंत्र जीवन पद्धति से शासन पद्धति तक गया, तो दक्षिण एशिया के देशों में सीधा शासन पद्धति तक आया।

3023. आदर्श लोकतंत्र तो लोक नियंत्रित तंत्र होता है, लोक नियुक्त नहीं। आदर्श लोकतंत्र वह शासन पद्धति है, जिसमें व्यक्ति के प्रकृति प्रदत्त अधिकारों के साथ कोई भी अन्य किसी भी परिस्थिति में कटौती नहीं कर सकता तथा राज्य व्यक्ति की ऐसी स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी देता है।

3024. पश्चिम के देशों में आदर्श लोकतंत्र है, क्योंकि वह लोकस्वरज्य की दिशा में झुका हुआ है। जबकि भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, इराक, नेपाल, श्रीलंका, अफगानिस्तान आदि दक्षिण एशिया के देशों में विकृत लोकतंत्र है, जो पश्चिम से आयातित या थोपा हुआ है। जीवन पद्धति में लोकतंत्र न आया, न आने दिया गया। इन सभी देशों में लगातार अव्यवस्था का बढ़ना उसी का परिणाम है।

3025. लोकतंत्र की, लोकतंत्र विरोधी मान्यताएं ही भारत में लोकतंत्र मान ली गई हैं। भारत में व्यवस्था कुछ सुधर तो सकती है, किन्तु आदर्श लोकतंत्र सम्भव नहीं। लोकतंत्र के नाम पर समाज को परोसी जा रही गुलामी, राजनेताओं की नीयत का खोट है।

3026. दुनिया में लोकतंत्र कई प्रकार का है। संसदीय लोकतंत्र, राष्ट्रपतीय

प्रणाली, सहभागी लोकतंत्र, तानाशाही लोकतंत्र। भारत का लोकतंत्र, संसदीय प्रणाली और साम्यवादी देशों का तानाशाही लोकतंत्र माना जाता है।

3027. आदर्श लोकतंत्र में तंत्र लोक का सुरक्षा प्रहरी मात्र होता है। उसका काम समाज की सुरक्षा और न्याय तक ही सीमित है। लोकतंत्र में शासक नहीं होता, बल्कि व्यवस्थापक होता है। भारत का लोकतंत्र अप्रत्यक्ष रूप से तंत्र की तानाशाही के रूप में है, आदर्श लोकतंत्र नहीं। यहां तंत्र मालिक है और लोक गुलाम।

3028. आदर्श लोकतंत्र में व्यक्ति को व्यक्तिगत मामलों में निर्णय की पूर्ण स्वतंत्रता होती है अर्थात् स्व-निर्णय व्यक्ति का मौलिक अधिकार होता है। भारत में मौलिक अधिकारों की संख्या तो अनावश्यक रूप से बढ़ाते-बढ़ाते सात कर दी गई किन्तु स्व-निर्णय को उसमें शामिल नहीं किया गया। स्व-निर्णय ही जब मौलिक अधिकारों में शामिल नहीं है, तो अन्य मौलिक अधिकारों का क्या महत्व रह जाता है।

3029. भारतीय राजनीति पूरी तरह उच्छृंखल और बेलगाम हो गई है। उसे 2% अपराधियों पर नियंत्रण और 98% को सुरक्षा देना चाहिए था। भारतीय व्यवस्था ने 2% अपराधियों से सामंजस्य और 98% के सामाजिक जीवन में अधिकाधिक हस्तक्षेप किया।

3030. आदर्श लोकतंत्र में व्यवस्था नीचे से ऊपर की ओर जाती है, ऊपर से नीचे नहीं आती।

3031. तानाशाही में शासक का संविधान होता है, तो लोकतंत्र में संविधान का शासन। आदर्श लोकतंत्र लोक नियंत्रित तंत्र होता है और तानाशाही में तंत्र नियंत्रित लोक।

3032. लोकतंत्र की चरम आदर्श स्थिति लोकस्वराज्य ही है। यह एक जीवन पद्धति है, शासन पद्धति नहीं। इसमें समाज भेड़-बकरी न होकर मालिक होता है और राज्य मालिक न होकर मैनेजर।

303 लोकतंत्र

3033. लोकतंत्र की यह विशेष शर्त होती है कि उसमें विधायिका, न्यायपालिका तथा कार्यपालिका के बीच अनिवार्य संतुलन हो। अर्थात् किसी भी रूप में, किसी भी परिस्थिति में तीनों में से न कोई अंग लेशमात्र भी मजबूत हो, और न कोई कमजोर। तीनों अंग एक-दूसरे के सहायक भी हों और नियंत्रक भी।

3034. लोकतंत्र की मूल अवधारणा में 'लोक' समाज शब्द का प्रतिनिधित्व करता था और प्रशासन तंत्र का। सोच यह रही कि संसद लोक का प्रतिनिधित्व करेगी और संसद का नियंत्रण तंत्र पर रहेगा। न संविधान बनाने वालों की मनोवृत्ति में लोकतंत्र था, न ही उस संविधान के आधार पर लोकतंत्र स्थापित करने वालों के मन में ही ऐसा कुछ था। संसद से लोक प्रतिनिधि के रूप में तंत्र पर नियंत्रण की अपेक्षा की गयी थी, किन्तु हुआ इसके ठीक विपरीत। लोक की भूमिका सिमटकर मंत्रिमंडल तक आ गयी और वही तंत्र का नियंत्रक भी बन गया। इस तरह भारत में लोकतंत्र का अर्थ 'लोक नियंत्रित तंत्र' की खानापूर्ति हो गयी। लोकतंत्र का वर्तमान स्वरूप लोक नियुक्त तंत्र है, जिसमें समाज की भूमिका व्यवस्थापकों का चयन करने तक सीमित है।

3035. लोकतंत्र की तुलना हम व्याकरण के उस लिंग से कर सकते हैं, जो पुलिंग और स्त्रीलिंग के बीच तीसरा लिंग माना जाता है।

3036. अपने भूगोल और अपने नागरिकों की रक्षा का धर्म हमेंलोकतंत्र ही सिखाता है।

3037. लोकतंत्र कोई एक शब्द नहीं, वह दो शब्दों को मिलाकर बनता है। लोकतंत्र का आदर्श माना जाता है, लोक नियंत्रित तंत्र।

3038. लोकतंत्र के लिए जनक्रांति की यह लहर कई जगह शुरू हुई, किन्तु निर्णायक स्थान तक नहीं पहुंच सकी, क्योंकि अन्य देशों में क्रांति की लहर स्व-स्फूर्त न होकर ट्युनीशिया, मिश्र की नकल मात्र थी।

3039. अब जमाना गया, जब अमेरिका को गाली देना ही गुट निरपेक्षता कही जाती थी। अब अमेरिका और अमेरिका विरोधी के बीच ध्रुवीकरण नहीं हो रहा। अब ध्रुवीकरण हो रहा है, लोकतंत्र समर्थक और लोकतंत्र विरोधी के बीच। मुस्लिम देशों में लोकतंत्र का उदय अब धर्म को भी समाप्त करने का लक्षण है। भारत की अपनी विदेश नीति ठीक दिशा में चल रही है।

3040. लोकतंत्र दो प्रकार का होता है—(1) मौलिक, (2) नकल या आयातित, दोनों की पहचान बिल्कुल अलग-अलग होती है। मौलिक लोकतंत्र पहले समाज की जीवन पद्धति में आता है और बाद में शासन पद्धति में, जबकि आयातित लोकतंत्र पहले शासन में आता है और बाद में समाज में। मौलिक लोकतंत्र में समाज मालिक होता है और राज्य प्रबंधक। आयातित लोकतंत्र में तंत्र शासक होता है और समाज अनुगामी। मौलिक लोकतंत्र समाज व्यवस्था, परिवार व्यवस्था को अपनी व्यवस्था करने की छूट देता है, किन्तु आयातित लोकतंत्र समाज सुधार के सारे निर्णय स्वयं करता है। आयातित लोकतंत्र में सत्ता को नियुक्त करने का अधिकार समाज को होने से सत्ता अपने मतदाताओं को खुश

रखने का प्रयत्न करती है। इससे समाज की, स्वयं की निष्कर्ष निकालने की क्षमता कम हो जाती है तथा समाज हर मामले में राज्य पर निर्भर होता है। राज्य वोट लेने के लिए जनहित के कार्य करने के स्थान पर जनप्रिय कार्यों को ज्यादा महत्व देने लगता है। मौलिक लोकतंत्र में संस्थाएं मजबूत होती हैं और संगठन कमजोर। आयातित में संस्थाएं कमजोर होती हैं और संगठन मजबूत।

3041. सारे विश्व में लोकतंत्र मजबूत हो रहा है। राजनैतिक प्रतिबद्धताएं छिन्न-भिन्न हो रही हैं। ऐसे समय में भी यदि देश-काल, परिस्थिति अनुसार भारत ने अपना रंग नहीं बदला, तो इतिहास के दुहराने का खतरा तो रहेगा ही। भारत सरकार को यह स्वीकार करना चाहिए कि वह, इस्लामिक या साम्यवादी व्यवस्था का अंग न होकर लोकतांत्रिक व्यवस्था का अंग है। उसे लोकतांत्रिक विश्व का पूरा-पूरा सम्मान और सहभागिता करनी चाहिए।

3042. गांधी या जयप्रकाश की लोक नियंत्रित तंत्र की परिभाषा आज भी कल्पना से दूर है। आज भी भारत में यह स्पष्ट नहीं है कि लोकतंत्र की वास्तविक परिभाषा क्या है अथवा लोकतंत्र की व्याख्या करने का अंतिम अधिकार किसे है।

3043. लोकतंत्र में संगठन वर्ग-संघर्ष का आधार होता है और वर्ग-संघर्ष विभाजन की स्थितियां पैदा करता है। वर्तमान लोकतांत्रिक दुनिया में यही हो रहा है।

3044. यदि हम वर्तमान विश्व की शांति व्यवस्था की समीक्षा करें, तो दुनिया में लोकतंत्र निर्णायक बढ़त लेने के बाद भी युद्ध के खतरों से मुक्ति का विश्वास नहीं दिला पाया।

3045. विश्व के अधिकांश भाग में लोकतंत्र की वर्तमान परिभाषा "लोक

नियुक्त तंत्र" है। अर्थात् समाज द्वारा नियुक्त प्रतिनिधियों का शासन। इस परिभाषा को बदलकर लोक नियंत्रित तंत्र अर्थात् "समाज द्वारा नियंत्रित शासन कर देना चाहिए"। इसका अर्थ स्पष्ट है कि संविधान जनता द्वारा बनाया जाना चाहिए। उसमें तंत्र का कोई निर्णायक हस्तक्षेप न हो।

305 संसदीय लोकतंत्र

3046. लोकतंत्र में जनता सर्वोच्च होती है। विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका जनता द्वारा बनाये गये संविधान के द्वारा घोषित सीमाओं के अंदर ही काम करने को बाध्य हैं। लोकतंत्र में तथाकथित सरकार, लोक रूपी वास्तविक सरकार की व्यवस्थापक होती है, कस्टोडियन (अभिरक्षक) नहीं।

3047. संसदीय लोकतंत्र दो प्रकार का है—(1) आदर्श, (2) विकृत। आदर्श लोकतंत्र में सुराज्य होता है और विकृत लोकतंत्र में अव्यवस्था।

3048. वर्तमान भारत में संविधान पर लोक प्रश्न उठाये, तो यही संसदीय लोकतंत्र संविधान की पवित्रता की दुहाई देना शुरू कर देता है तथा उस संसदीय लोकतंत्र के पालित-पोषित तथाकथित विचारक लोक की आलोचना करने लगते हैं।

3049. लोकतंत्र हमारा आदर्श न था, न है। विकल्प के अभाव में हमने लोकतंत्र का मार्ग चुना, क्योंकि लोकस्वराज्य की अवधारणा ही कभी साफ नहीं हुई, इसलिए तानाशाही या लोकतंत्र में एक को हमने चुन लिया। दोष न सांसद का है, न संसद का, सच्चाई यह है कि यह सारा संसदीय लोकतंत्र प्रणाली का दोष है। जब लोक, तंत्र को नियुक्त ही कर सकता है, नियंत्रित नहीं, तब आप ऐसी बांझ-वैश्या से किस परिणाम की उम्मीद कर रहे हैं?

3050. भारत में संसदीय लोकतंत्र होना ही नहीं चाहिए था, बल्कि संसदीय लोकतंत्र की जगह लोकतांत्रिक संसद होनी चाहिए थी, जैसा गांधी जी मानते थे या जयप्रकाश भी मानते रहे और वर्तमान में कुछ-कुछ अन्ना हजारे भी समझते हैं।

3051. संसदीय लोकतंत्र में संसद सर्वोच्च होती है और संसद ही संविधान का संचालन करती है। उसके नीचे संविधान, संविधान के नीचे न्यायपालिका और कार्यपालिका और इन सबसे नीचे देश का नागरिक, जो संसद सदस्यों के निर्वाचन तक अपनी भूमिका सीमित रखता है। इसके विपरीत लोक स्वराज्य में लोकतांत्रिक संसद होती है, जिसमें सबसे ऊपर होता है समाज, उसके नीचे होता है संविधान और संविधान के नीचे विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका और सबसे नीचे व्यक्ति।

3052. सम्पूर्ण संसदीय लोकतंत्र ही अपनी धुरी से खिसक रहा है और उस खिसकने की छीना-झपटी में इसके विभिन्न घटक एक-दूसरे को नैतिकता का पाठ इस तरह से पढ़ा रहे हैं कि उनकी अनैतिकता इस हो-हल्ले में कुछ दिनों के लिए दब जाय।

3053. संसदीय लोकतंत्र का सिर्फ एक ही विकल्प होता है और वह होता है सहभागी लोकतंत्र। सहभागी लोकतंत्र को ही लोक स्वराज्य भी कहा जाता है। सहभागी लोकतंत्र लोक नियंत्रित तंत्र होता है, जबकि संसदीय लोकतंत्र लोक नियुक्त तंत्र होता है।

3054. संसदीय लोकतंत्र में लोक, तंत्र को नियुक्त मात्र कर सकता है, नियंत्रित नहीं। जबकि सहभागी लोकतंत्र में समाज तंत्र को नियुक्त भी कर सकता है और नियंत्रित भी।

3055. भारत को अपने आंतरिक लोकतंत्र के सुधार के लिए संसद में सत्ता और विपक्ष की शासन प्रणाली को बदलकर निर्दलीय संसद व्यवस्था की भी पहल करनी चाहिए।

305 लोकतंत्र और जीवन पद्धति

3056. तानाशाही और धर्मतंत्र में अव्यवस्था नहीं हो सकती। लोकतंत्र की यह विशेषता है कि यदि लोकतंत्र जीवन पद्धति से हटकर शासन पद्धति की ओर झुका, तो अव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता।

3057. लोकतंत्र एक जीवन पद्धति है, शासन पद्धति नहीं। दुनिया के दूसरे लोकतांत्रिक देशों में लोकतंत्र को जीवन पद्धति के रूप में बढ़ाने की अपेक्षा शासन पद्धति के रूप में बढ़ाने की भूल की। स्वाभाविक परिणाम है 'अव्यवस्था' और लम्बी अव्यवस्था का परिणाम है 'तानाशाही।'

3058. गांधी जी लोकतंत्र को और अधिक आदर्श स्वरूप में लागू करने की योजना में लगे थे जिसका आधार था लोक नियंत्रित तंत्र और परिणाम होता लोकतांत्रिक जीवन पद्धति, जिसका आंशिक लाभ पश्चिम के लोकतंत्र में दिख रहा था। भारत के राजनेताओं ने लोकतंत्र को जीवन पद्धति के रूप में स्वीकार न करके शासन पद्धति के रूप में स्वीकार कर लिया। इस कार्य के लिए उन्होंने लोक नियंत्रित तंत्र को लोक नियुक्त तंत्र के रूप में प्रचारित किया, जो हमारा आदर्श नहीं था।

306 राजनैतिक व्यवस्था

3060. सांसद ही सत्ता के अधिक से अधिक पद आपस में बांट लें और देश की सम्पूर्ण राजनैतिक सत्ता कुछ परिवारों तक सिमट जाये,

यह लोकतंत्र का मजाक ही है। जीते हुए खिलाड़ी यदि सांत्वना पुरस्कार भी अन्य खिलाड़ियों से छीनने का तिकड़म करें तो, इसे लोकतंत्र का कौन-सा रूप कहा जाय?

3061. राजनैतिक व्यवस्था हमारे वेतन भत्ते तो तय कर सके, किन्तु उनके अपने वेतन भत्ते वे जब चाहें, तब स्वयं तय कर लें, यह कैसा लोकतंत्र है? न्यायपालिका, विधायिका या सरकार के अधिकारों की समीक्षा हो। यह घोषित हो कि राज्य, संसद अथवा न्यायपालिका के अधिकारों की सीमाएँ क्या हों? ये सीमाएँ लोक द्वारा संविधान के माध्यम से लगायी जानी चाहिए थीं।

3062. लोकतंत्र में विधायिका को देश-काल, परिस्थिति अनुसार स्वतंत्र विचार करने की आदत डालनी चाहिए। विधायिका को सिर्फ विचारों तक सीमित रहना चाहिए। विधायिका का कार्यपालिका में हस्तक्षेप शून्य होना चाहिए। लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ तो यह है कि न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधायिका बिल्कुल अलग-अलग हों।

3063. लोकतंत्र की यह खास विशेषता होती है, कि उसमें शासन वास्तविक समस्याओं का समाधान न करके, सिर्फ उन्हीं समस्याओं के समाधान का नाटक करता है, जिसके विस्तार के मूल में शासन स्वयं ही होता रहा है।

3064. न्यायपालिका, विधायिका तथा कार्यपालिका का समन्वित स्वरूप ही लोकतंत्र होता है। लोकतंत्र में न्यायपालिका, विधायिका तथा कार्यपालिका एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं तथा नियंत्रक भी। इन तीनों में से कोई अंग कमजोर पड़ रहा हो, तो शेष दो उसे शक्ति दें और यदि कोई अंग अधिक मजबूत हो रहा हो, तो उसके पंख कतर

दें। लोकतंत्र की सबसे घातक स्थिति वह होती है, जब तीनों अंग एक-दूसरे को कमजोर करके स्वयं शक्तिशाली होने की प्रतिस्पर्धा में जुट जायें। लगता है कि वर्तमान भारत में न्यायपालिका और विधायिका के बीच ऐसी प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई है।

3065. सबसे पहली भूल हुई कि भारत में संसदीय लोकतंत्र आया। यदि स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही सहभागी लोकतंत्र होता, तो न भ्रष्टाचार बढ़ता और न ही अपराध। संसदीय लोकतंत्र के कारण संसद बहुत ज्यादा शक्तिशाली हुई और शक्ति संतुलन बिगड़ा।

3066. लोकतंत्र एक ऐसी व्यवस्था है, जो न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका के समन्वय से चलती है। तीनों का समन्वय इसकी अनिवार्य शर्त है। यह पूरी दुनिया को पता है कि सुव्यवस्था के लिए तानाशाही ही सरलतम मार्ग होता है। लोकतंत्र में अव्यवस्था के खतरे बहुत अधिक होते हैं। फिर भी विश्व जनमत तानाशाही से मुक्त होने के लिए छटपटा रहा है। समाज को कोई अन्य मार्ग नहीं मिल रहा है, इसलिए वह मजबूरी में लोकतंत्र की तरफ बढ़ रहा है।

3067. पचहत्तर वर्षों में हम इतना भी नहीं समझ सके कि लोकतंत्र का पहला पाठ ही व्यवस्था के तीन अंगों—(1) 'न्यायपालिका', (2) 'विधायिका', (3) 'कार्यपालिका' के समन्वय से शुरू होता है। आज भारत में वह समन्वय प्रतिस्पर्धा में बदल गया है। दुर्भाग्य से ये तीनों संस्थाएं न तो अपना दायित्व ही समझ सकी और न ही सीमाएं ही। लोकतंत्र में तीनों संस्थाएं एक-दूसरे की पूरक भी होती हैं और नियंत्रक भी।

3068. लोकतंत्र में विधायिका न्याय को परिभाषित करती है और न्यायपालिका उक्त परिभाषा के अनुसार न्याय करती है।

न्यायपालिका को न्याय करने का कोई अधिकार नहीं है और न ही उसे यह भ्रम पालना चाहिए किन्तु न्यायपालिका ने यह भ्रम पाल लिया कि उसे न्याय करने का अधिकार है। सच्चाई यह है कि वह सिर्फ कानून के अनुसार ही न्याय के लिए बाध्य है।

3069. लोकतंत्र में विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका एक-दूसरे के पूरक भी होते हैं, और नियंत्रक भी। तीनों के अधिकार भी बराबर होते हैं तथा सीमाएं भी। लोकतंत्र की तीनों इकाईयों में से कोई एक सर्वोच्च होने की बात सोच भी नहीं सकती। नेहरू जी ने कार्यपालिका प्रमुख राष्ट्रपति को सम्बंधों के आधार पर पूरी तरह पंगु कर दिया, जिससे कार्यपालिका अब तक नहीं उबर सकी है। नेहरू जी ने समय-समय पर न्यायपालिका के भी पंख कतरे तथा शीघ्र ही संसद सर्वोच्च का नारा घोषित कर दिया। पण्डित नेहरू ने न्यायपालिका को इस सीमा तक कमजोर किया कि संसद सर्वोच्च की बात स्थापित होती चली गई। लोकतंत्र की दुहाई देकर लोकतंत्र को कमजोर करते जाने का खेल नेहरू जी से शुरू हुआ था तथा आज तक निर्विघ्न चलता रहा।

3070. यदि लोकतांत्रिक व्यवस्था के आधार पर दलों का आकलन करें, तो नीतियां बनती हैं विचारों के आधार पर, और कार्य होता है संस्कारों के आधार पर। विधायिका में अधिक से अधिक विचारवान लोग होने चाहिए, भले ही चरित्र का मापदण्ड आंशिक रूप से कमजोर भी क्यों न हो। दूसरी ओर कार्यपालिका में चरित्र को महत्वपूर्ण होना चाहिए, अर्थात् कार्यपालिका में चरित्र महत्वपूर्ण है, वैचारिक दृष्टि से आंशिक कमजोरी भी चल सकती है।

307 विधायिका और कार्यपालिका

3071. विधायिका की योग्यता उसके सामाजिक चिन्तन के साथ जुड़ी होती है, तो कार्यपालिका की योग्यता उसकी व्यक्तिगत क्षमता के साथ आकलित होती है। यदि कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी हो, तो आवश्यक नहीं है कि उसकी सोच सामाजिक ही होगी। और कोई अनपढ़ व्यक्ति भी है तो आवश्यक नहीं कि उसे समाजशास्त्र का ज्ञान नहीं होगा। शिक्षा की आवश्यकता इसलिए महसूस हो रही है, क्योंकि वर्तमान समय में विधायिका ने कार्यपालिका के कार्यों में भी अनावश्यक हस्तक्षेप किया है। इस हस्तक्षेप के कारण ही आज ऐसा महसूस हो रहा है कि इन्हें अर्थात् विधायिका के लोगों को अधिक शिक्षित होना चाहिए।

3072. विधायिका में अधिक से अधिक विचारवान लोग होने चाहिए भले ही चरित्र का मापदण्ड आंशिक रूप से कमजोर भी क्यों न हो। दूसरी ओर कार्यपालिका में ईमानदार लोगों का बहुमत होना चाहिए, अर्थात् कार्यपालिका में चरित्र महत्वपूर्ण है, वैचारिक दृष्टि से आंशिक कमजोरी भी चल सकती है। लोकतंत्र में विधायिका को देश-काल, परिस्थिति अनुसार स्वतंत्र विचार करने की आदत डालनी चाहिए।

3073. संविधान निर्माण में विधायिका की भूमिका महत्वपूर्ण होने से विधायिका ने थोड़ा-सा पलड़ा अपनी ओर झुका लिया और कार्यपालिका में मामूली-सी घुसपैठ बना ली। 1973 के बाद न्यायपालिका ने विधायिका को कमजोर करके अपनी ओर पलड़ा झुका लिया। अब दोनों में टकराव चल रहा है।

3074. लाभ के पदों पर रोक होने से कार्यपालिका के कुछ उच्च पदों पर

सांसदों की नियुक्ति पर रोक भले ही लग गई, लेकिन कार्यपालिका के कार्यों पर राजनेताओं का नियंत्रण बढ़ता ही जा रहा है।

3075. जब तीन में से कोई एक अपनी सीमाओं का उल्लंघन करने लगे, तो शेष दो उसे वैसा करने से रोक दे। किन्तु रोकने के क्रम में उन्हें अपनी सीमाएं नहीं छोड़नी चाहिए। भारत में विधायिका और न्यायपालिका ने न तो अपना दायित्व समझा और न ही अपनी सीमाएं।

3076. विधायिका ने कार्यपालिका के साथ मिलकर कुछ ही वर्षों में दो सौ अस्सी कानून न्यायिक समीक्षा से अलग कर दिये गये जिसका परिणाम आपातकाल तक भुगतने के रूप में दिखा। शर्म की बात है कि आज भी भारत का हर नेता नेहरू युग को स्वर्ण-काल और उस व्यवस्था को आदर्श लोकतंत्र कहता है, जबकि उस काल से लोकतंत्र के पतन की शुरूआत मानी जानी चाहिए।

3077. यदि बहकाने की क्षमता रखने वाले लोग ही सर्वशक्तिमान हो जाएं, तब समाज का क्या होगा। जिनकी नीयत पर संदेह है, उन्हें सारी शक्ति नहीं दी जा सकती। लोकतंत्र में विधायिका और कार्यपालिका के बीच भिन्न प्रकार की योग्यताओं का समन्वय होना चाहिए।

3078. लोकतंत्र में न्यायपालिका, विधायिका तथा कार्यपालिका एक सीमा तक स्वतंत्र तथा सीमा उल्लंघन की स्थिति में एक-दूसरे के नियंत्रक होते हैं। तीनों की सीमाएं संविधान तय करता है, जो समाज द्वारा नियंत्रित होता है। न्यायपालिका, विधायिका तथा कार्यपालिका के बीच संतुलन अनिवार्य है।

3079. भारत एक लोकतांत्रिक देश है और यहां निष्कर्ष निकालने के लिए दो इकाइयां हैं—(1) सामाजिक निष्कर्ष निकालने के लिए कुछ विचारकों की भूमिका, (2) राजनैतिक निष्कर्ष निकालने के लिए विधायिका अथवा संसद। सामाजिक निष्कर्ष निकालने के मामलों में विचारकों की भूमिका या तो शून्यवत कर दी गई है अथवा नगण्य।

3080. विधायिका और कार्यपालिका का कार्य लोकसभा और राज्यसभा जैसी चुनी हुई तथा उच्च पदस्थ शासकीय अधिकारियों के समन्वय से चलता है। चुने हुए लोग नीति और नीयत का तथा अधिकारी कार्य क्षमता का प्रतिनिधित्व करते हैं। चुने हुए लोग ज्ञान और विवेक तथा अधिकारी लोग बुद्धि का प्रतिनिधित्व करते हैं। सांसदों या विधायकों के लिए न्यूनतम योग्यता का मापदण्ड गलत है। यहां तक कि पागलपन या विदेशी होना भी अयोग्यता का आधार नहीं होना चाहिए, क्योंकि भारत के आम नागरिकों की योग्यता से अधिक और कोई योग्यता का मापदण्ड उचित नहीं। चुने हुए लोगों की योग्यता की एकमात्र कसौटी नागरिकों का विश्वास है। कार्यपालिका की योग्यता के लिए उनकी उम्र, बौद्धिक क्षमता या अन्य मापदण्ड बनाए जा सकते हैं।

3081. कार्यपालिका के लोगों की कार्यक्षमता विशेष महत्व रखती है, नीयत का कम महत्व माना जाता है। जबकि विधायिका के किए कार्यक्षमता की तुलना में नीयत का महत्व अधिक है। विधायिका में सम्मिलित लोग सिर्फ संविधान और कानून बनाते हैं, किंतु क्रियान्वित नहीं कर सकते, इसलिए उनकी नीयत पर विश्वास अधिक महत्व रखता है। कार्यक्षमता कम महत्व की मानी जाती

है। यदि शिक्षा को मापदंड घोषित किया गया, तब कबीरदास कभी विधायक या विधायिका के आगे नहीं बन सकते। यदि विधायिका के चयन में भी कार्यपालिका के समान ही नीयत की तुलना में कार्यक्षमता को अधिक महत्वपूर्ण मान लिया गया तब चेक एंड बैलेंस का महत्व समाप्त हो जाएगा।

3082. विधायिका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी रूप से कार्यपालिका में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। भारतीय शासन प्रणाली में विधायिका अपने अन्दर से ही मंत्रिमंडल बनाकर उसे कार्यपालिका में असीमित हस्तक्षेप का दायित्व देती है। यही कारण है कि विधायिका कार्यपालिका के ऊपर हावी हो गई है।

309 लोकतंत्र में हिंसा

3090. तानाशाही में व्यवस्था परिवर्तन का कोई मार्ग उपलब्ध नहीं होता और तब हिंसा ही एक मार्ग दिखता है। किन्तु लोकतंत्र हो तब हिंसा-अहिंसा पर बहस अर्थहीन हो जाती है, क्योंकि लोकतंत्र में हिंसा का कोई स्थान नहीं होता। लोकतंत्र में हिंसक क्रान्ति की कल्पना या तो निराश लोग किया करते हैं, या तानाशाह। हिंसक क्रान्ति के समर्थक लोकतांत्रिक हो ही नहीं सकते, यह अब भी मेरी धारणा है।

3091. लोकतंत्र की प्रशंसा करने वाले लोग या तो हार मानकर समाज सेवा में लगे हुए समाजशास्त्री हैं या लोकतंत्र का आनन्द उठा रहे राजनीति शास्त्र से जुड़े लोग। यथार्थ में तो लोकतंत्र अव्यवस्था का आधार बना हुआ है।

3092. लोकतंत्र दो शब्दों का जोड़ है, लोक एवं तंत्र। तंत्र जब लोक-नियंत्रित होता है तब वह लोकतंत्र कहलाता है। पर जब तंत्र, लोक

को नियंत्रित करने का षडयंत्र रचने लगता है तब वह ठोकतंत्र या लूटतंत्र बन जाता है। जैसा वर्तमान में दिख रहा है।

3093. लोकतंत्र में राज्य का दायित्व होता है कि वह समाज को न्याय और सुरक्षा की गारंटी दे। यदि समाज सुरक्षा के प्रति आश्वस्त नहीं रहेगा, तो उसे अपनी सुरक्षा स्वयं करने की तैयारी रखनी आवश्यक है और यह तैयारी हिंसा की मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करती है।

3094. लोकतंत्र में किसी भी प्रकार की हिंसा का विरोधी हूं, चाहे वह हिंसा देश भक्ति के लिए ही क्यों न की गई हो।

3095. लोकतंत्र में सामाजिक बल प्रयोग की अनुमति नहीं दी जा सकती। यदि कोई व्यक्ति कानून तोड़ता है, तो राज्य को आमतौर पर संतुलित और आवश्यक हो तो अधिकतम बल प्रयोग करना चाहिए। राज्य द्वारा न्यूनतम बल प्रयोग मानने के कारण ही कानून तोड़ने की आदत बन गई है और समाज में हिंसा बढ़ रही है।

3096. समाज में यदि कोई दल हिंसा का प्रत्यक्ष या परोक्ष भी समर्थन करता है, तो यह पूरा-पूरा संदेह होता है कि वह तानाशाही की दिशा में सोच रहा है।

310 लोकतंत्र और साम्यवाद

3100. प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वाभाविक चरित्र होता है कि वह स्वयं तो अधिकतम स्वतंत्र रहना चाहता है और दूसरों को अधिकतम अपने अनुसार चलाना चाहता है।

3101. यदि साम्यवादी भी अपने राजनैतिक जीवन में लोकतंत्र न लाकर अपने राजनैतिक शासन में लोकतंत्र लाने की कोशिश करते तो अब तक टूट कर बिखर जाते। यही कारण है कि चीन और रूस

अपनी शासन व्यवस्था में लोकतंत्र से दूरी बनाते हैं और बाहर के देशों में अधिकतम लोकतंत्र की मांग करते हैं।

3102. गुजरात की घटनाएं अनियोजित होने से अव्यवस्थित थी, जबकि साम्यवादी नंदीग्राम की घटनाएं महीनों तक सोच-समझकर तथा योजना बनाकर अंजाम दी गयी। नंदीग्राम का पूरा घटनाक्रम रूढ़िवादी वामपंथ और संशोधित वामपंथ के बीच वैचारिक संघर्ष के रूप में आया है, जिसका प्रत्यक्ष स्वरूप नंदीग्राम का हिंसक संघर्ष है। कोई सरकार व्यवस्था को बनाये रखने के लिए असंवैधानिक, अलोकतांत्रिक तरीकों के उपयोग के लिए मजबूर हो जाये, यह गंभीर विचार-मंथन का विषय है। भविष्य में इस बात का समाधान कैसे होगा, जब लोकतंत्र की अव्यवस्था से निपटने के लिए अलोकतांत्रिक बल प्रयोग आवश्यक दिखने लगे?

3103. नक्सलवाद संसदीय लोकतंत्र के विरुद्ध तानाशाही का पक्षधर है। साम्यवाद भी आंशिक रूप से वैसा ही है।

3104. आज संपूर्ण विश्व में लोक और तंत्र के बीच संबंधों के पुनर्निर्धारण की लगातार आवाजें उठ रही हैं। साम्यवाद का पतन उसका एक उदाहरण है।

3105. भारत उन देशों में शामिल है, जहां पूरी तरह लोकतंत्र है। जहां दुनिया के अन्य लोकतांत्रिक देशों ने पश्चिमी प्रणाली के लोकतंत्र को अपनाया, वही भारत ने साम्यवाद के साथ मिलकर एक नये प्रकार का समाजवादी लोकतंत्र बनाने का प्रयास किया।

3106. साम्यवाद, जब सत्ता से बाहर रहता है, तो सिर्फ अधिकारों की बात करता है और सत्ता में आते ही वह अधिकारों की बात बंद कर अधिकार सम्पन्न और अधिकार विहीन के रूप में दो

वर्ग स्वीकार करता है। वह समाज में प्रवृत्ति के आधार पर वर्ग नहीं बनने देता, बल्कि वह धर्म, आर्थिक स्थिति और उत्पादक-उपभोक्ता के आधार पर वर्ग-निर्माण कर वर्ग-विद्वेष फैलाता और वर्ग-संघर्ष तक ले जाता है।

310 लोकतंत्र और धर्म

3107. मुस्लिम धार्मिक कट्टरवाद के विरुद्ध हिन्दू धार्मिक कट्टरवाद सफल हो नहीं सकता, क्योंकि हिन्दू को कट्टर बनाने में कई सौ वर्ष लगेंगे और उतनी प्रतीक्षा करते-करते तो इस्लाम की आंधी कुछ बचने ही नहीं देगी।

3108. साम्यवाद और धर्मतंत्र का तो लोकतंत्र से कोई संबंध है ही नहीं। साम्यवाद भारत में अव्यवस्था के परिणामस्वरूप अपनी तानाशाही स्थापित करने के सपने देख रहा है और धर्मतंत्र पूरी तरह रूढ़ियों में जकड़ा हुआ है।

3109. धर्म को राजनैतिक सत्ता के लिए उपयोग करना, समाज व्यवस्था को बहुत नुकसान कर सकता है। धर्म को तंत्र अर्थात् शासन से जोड़कर देखना इस्लामिक व्यवस्था है। हम न तो लोकतंत्र के नाम पर साम्यवाद या धर्मतंत्र की स्थापना का सपना पूरा होते देख सकते हैं, न ही लोकतंत्र को हाईजैक करके सत्ता का खेल खेलने वालों का उद्देश्य पूरा होने दे सकते हैं। तंत्र ने लोक को यह समझा दिया है कि वर्तमान शासन व्यवस्था ही लोकतंत्र है, समाज व्यवस्था नहीं। जबकि सच्चाई यह है कि समाज व्यवस्था ही सर्वोच्च होती है। तंत्र तो समाज का मैनेजर होता है।

311 लोकतंत्र और संविधान

3110. वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था येन-केन-प्रकारेण इस लोकतंत्र को

सुरक्षित रखना चाहती है और नक्सलवादी इस लोकतंत्र को उखाड़ फेंककर अपनी नई व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं। दोनों के बीच में संघर्ष का प्रतीक बना है भारतीय संविधान। वही संविधान, जिसके नाम पर पिछले साठ वर्षों से भारतीय समाज व्यवस्था को गुलाम बनाकर रखा जा रहा है। नक्सलवादी इस संविधान की जगह अपना संविधान थोपना चाहते हैं।

3111. भारत में तंत्र से जुड़े लोगों ने मिलजुल कर समाज पर एक ऐसा संविधान थोप दिया, जिसमें लोकतंत्र के नाम पर अनन्त काल तक समाज को गुलाम बनाकर रखने के सभी उपकरण मौजूद हैं।

3112. भारत में समाज को कैसा स्वराज्य मिला? क्या संविधान बनाने में समाज की कोई भूमिका है? क्या कानून हम बना सकते हैं? सामाजिक स्वराज्य तो जितना अग्रेजों के समय था वह भी हमसे छिन गया, क्योंकि अंग्रेज तो विदेशी होने के कारण भारत की समाज व्यवस्था में छेड़छाड़ से डरते थे। अब तो चूंकि शासक भारतीय हैं, इसलिए इन्हें किसी भी प्रकार के कानून बनाने से कोई डर नहीं है।

3113. लोक, तंत्र को नियुक्त तो कर सकता है, किन्तु नियंत्रित नहीं। गांधी के मरते ही तंत्र ने संविधान नामक अपनी किताब में लिख दिया कि तंत्र शासक और लोक शासित होगा, जबकि गांधी जी तंत्र को मैनेजर और लोक को मालिक बनाना चाहते थे।

3114. लोकतंत्र में जन प्रतिनिधि संविधान के अंतर्गत ही कार्य करने का ढोंग करते रहते हैं, क्योंकि उन्होंने तो संविधान संशोधन तक के अधिकार भी अपने पास रखे हुए हैं, जबकि लोकस्वराज्य में संविधान निर्माण या संशोधन का अधिकार सिर्फ समाज का ही है

और वह उसके लिए पृथक कमेटी बना सकता है या कोई अन्य व्यवस्था भी कर सकता है।

3115. सन् 1973 के पहले तक भारत में संसदीय तानाशाही थी, जो बदलकर वर्तमान भारतीय लोकतंत्र की एकमात्र व्याख्या न्यायिक तानाशाही के रूप में हो गई, क्योंकि संविधान संशोधन पर उसका असीमित अधिकार हो गया। भारतीय लोकतंत्र में संवैधानिक तरीके से तंत्र से यह लाठी छीनकर किसी नई इकाई को दे दें, जो संविधान संशोधन तक ही सीमित हो, किन्तु किसी भी रूप में तंत्र का भाग न हो। मैंने ऐसी इकाई के रूप में ही संविधान सभा का प्रस्ताव दिया है।

3116. जहां आयातित लोकतंत्र है, वहां संविधान का शासन नाम के लिए होता है, बल्कि संविधान पर पूरी तरह तंत्र का ही नियंत्रण होता है।

3117. संविधान की संरचना कुछ ऐसी की गई है कि लोकतंत्र की तीनों इकाइयां एक-दूसरे की सहायक भी रहें और नियंत्रक भी। यदि अपने कार्य में कोई इकाई कमजोर पड़ती है, तो अन्य इकाइयां उसकी सहायता करती हैं और यदि कोई इकाई अपने अधिकारों का दुरूपयोग शुरू कर दे, तो अन्य इकाइयां उसे नियंत्रित करती हैं।

3318. लोकतंत्र में जन प्रतिनिधि को वापस बुलाने की कोई संवैधानिक व्यवस्था नहीं है, जबकि लोकस्वराज्य में होगी। लोकतंत्र में अधिकार ऊपर से नीचे आते हैं और ये अधिकार देना न देना राजनेताओं के अधिकार क्षेत्र में है, जबकि लोकस्वराज्य में कुछ विशेष अधिकारों को छोड़कर बाकी सारे अधिकार प्राकृतिक रूप से नीचे होते हैं और आवश्यकतानुसार ऊपर दिये जा सकते हैं।

312 लोकतंत्र और लोक

3120. अब लोक का काम है देना और तंत्र का काम है लेना, 'लोक वोट देगा और तंत्र लेगा', 'लोक कर देगा और तंत्र लेगा', लोक से कितना कर लेना है यह तंत्र तय करेगा, लोक नहीं कर सकता। क्योंकि लोक ने तो वोट देकर तंत्र को अपना गवर्नमेंट घोषित कर दिया। अब लोक का काम पाँच वर्ष के लिए खतम। पाँच वर्ष के बाद भी सिर्फ एक दिन के लिए ही वोट देते समय लोक अपने को मालिक समझता है।

3121. हमारा वेतन भोगी अपना वेतन चाहे जितना तय कर ले, उस कमेटी में लोक का एक भी सदस्य नहीं होगा, क्योंकि हमारे वेतन भोगी ही हमारे प्रतिनिधि भी हैं। वे जितना भी वेतन तय करेंगे, उतना लोक देने के लिए बाध्य है। यह है भारत का कानून और संविधान। गंभीर चिन्ता का विषय है कि कितना गुना वेतन हो कि हाथी का पेट भरे और चूहे रूपी गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, किसान के अपनी जमीन के उत्पादन और उपभोग की वस्तुएं कर-युक्त हों।

3122. लोक नियंत्रित तंत्र के लिए, चाहे अन्ना हजारे जी या रामदेव जी आंदोलन करें, चाहे आप आंदोलन करें, परिणाम होना चाहिए कि लोक हो मजबूत और तंत्र हो कमजोर। वर्तमान समय में ऐसा कोई आंदोलन नहीं चल रहा है। जो भी आंदोलन हो रहे हैं, वे लूट के माल में अधिक से अधिक हिस्सेदारी तक सीमित हैं।

3123. लोकतंत्र में ऐसे किसी भी आंदोलन का कोई औचित्य नहीं हो सकता, जो व्यक्ति के मूल अधिकारों पर आक्रमण करता हो। ऐसे किसी भी आंदोलन को पूरी तरह या तो रोक देना चाहिए या कुचल देना चाहिए।

3124. चोर को चोर कहने से अगर संसद की अवमानना हो भी जाती हो तो इसमें कोई बुराई नहीं है, क्योंकि हम जिस लोकतंत्र में रह रहे हैं, वह गुलाम लोकतंत्र है।

3125. भारत में लोकतंत्र लोक नियंत्रित तंत्र की बजाय लोक नियुक्त तंत्र तक ही बनकर रह गया है। लोक की दशा इतनी कमजोर कर दी गई है कि वह अपने ही द्वारा नियुक्त तंत्र से सवाल नहीं पूछ सकता।

3126. लोकतंत्र की और विशेषकर भारतीय लोकतंत्र की खास विशेषता मानी जाती है कि उसका तंत्र और लोक के बीच बंदर और बिल्ली के समान रिश्ता होता है। तंत्र हमेशा बंदर के रूप में रहता है, जो बिल्ली रूपी लोक की किसी भी समस्या को सुलझने भी नहीं देता, उसे समस्या का भान और याद भी कराता रहता है तथा वह लोक को यह भी आभास कराता रहता है कि वह निरंतर उक्त समस्या के समाधान में सक्रिय है।

3127. तंत्र से जुड़ी तीनों इकाइयों ने अपनी सारी सीमाएं तोड़कर लोक को लगातार गुलाम बनाकर रखने की जो तत्परता दिखाई, उसी के विरुद्ध लोक ने अन्ना हजारे को प्रतीक मानकर अपना शक्ति प्रदर्शन किया। लेकिन अन्ना के साथ भी राजनेताओं ने ऐसा ही छल किया, जैसा जयप्रकाश या गांधी के साथ हुआ था।

3128. लोक और तंत्र की वर्तमान भूमिका गलत है। वर्तमान व्यवस्था 'लोक नियुक्त तंत्र' के रूप में काम कर रही है। इसे 'लोक नियंत्रित तंत्र' होना चाहिए। लोक की भूमिका वोट देने तक सीमित करके, तंत्र ने सारे अधिकार अपने पास समेट लिए हैं। अप्रत्यक्ष रूप से तंत्र सरकार बन गया है और लोक सरकार आश्रित।

3129. यदि लोक और तंत्र की तुलना करें तो एक सौ पैंतालिस करोड़

का लोक शराबी, कबाबी, भ्रष्ट, मूर्ख हो सकता है, किन्तु वह धूर्त, अत्याचारी, ठग नहीं। शराबी, कबाबी, मूर्ख होना अपराध नहीं, किन्तु उसे सुराज का धोखा देकर गुलाम बनाकर रखने वाले एक दो करोड़ तंत्र से जुड़े लोग अपराधी हैं। ये अपराधी तंत्र से जुड़े लोग इतने वाकपटु होते हैं कि ये अपनी सारी गलतियों का दोष भी लोक अर्थात् एक सौ पैंतालिस करोड़ पर ही डाल देते हैं।

3130. मेरे विचार से तंत्र संचालक है और लोक संचालित, क्योंकि लोक के सारे अधिकार तंत्र तय करता है और अपने सारे अधिकार भी तंत्र ही तय करता है। लोक को ऐसा कोई अधिकार नहीं, जिसे तंत्र नियंत्रित न करे। दूसरी ओर तंत्र का ऐसा कोई अधिकार नहीं, जिसे लोक नियंत्रित करे। लोक और तंत्र के इस संबंध को बदलने का प्रयास व्यवस्था परिवर्तन है। यदि इनके अतिरिक्त कोई और कार्य व्यवस्था परिवर्तन के नाम पर हो रहा है, तो वह आपके लिए भी चिन्ता का विषय होना चाहिए और हमारे लिए भी। व्यावहारिक परिस्थिति में लोक और तंत्र एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए, परन्तु है नहीं। क्योंकि दोनों के पूरक होने में संविधान पुल का काम करता है, जिसपर वर्तमान में तंत्र ने नियंत्रण कर रखा है। अतः स्पष्ट है कि न तो व्यक्ति दोषी है न ही समाज, बल्कि व्यक्ति और समाज पर तंत्र का पड़ता हुआ प्रभाव दोषी है।

3131. आदर्श स्थिति में न तो लोक और तंत्र किसी भी रूप में समानार्थी हैं, और न ही एक-दूसरे के पूरक। लोक के बिना तंत्र का कोई अस्तित्व नहीं है, यह सही है, किन्तु तंत्र के बिना लोक का तो अस्तित्व सम्भव है। लोक एक मौलिक इकाई है और तंत्र एक कृत्रिम या उसका एक भाग।

3132. स्वतंत्रता के पूर्व ही लोक और तंत्र के बीच आपसी संबंधों और सीमाओं को लेकर दो धारणाएं थी- एक गांधी जी की विचारधारा जो लोक को मालिक और तंत्र को प्रबंधक के रूप में मानकर चलती थी, दूसरी उन राजनेताओं की विचारधारा थी, जो तंत्र को संरक्षक और लोक को संरक्षित मानकर चलती थी।

3133. लोकतंत्र में सर्वोच्च तो सिर्फ लोक ही होता है। तंत्र तो प्रबंधक मात्र होता है। तंत्र के तीनों भाग समकक्ष होते हैं, ऊपर-नीचे नहीं।

3134. सुविधा और स्वतंत्रता में से स्वतंत्रता की बात करने वाले कोई नहीं दिखता। सभी सुविधाओं की ही बात करते हैं। आज इसी का परिणाम है कि लोक और तंत्र के बीच मालिक और गुलाम सरीखे संबंध बन गये हैं। तंत्र ने वोट देने का अधिकार देकर बाकी सारे अधिकार अपने पास समेट लिए हैं। लोक भिखारी और तंत्र दाता बन गया है।

3135. लोक सर्वोच्च है और तंत्र प्रबंधक। वर्तमान में तंत्र संरक्षक बन गया है और लोक संरक्षित।

3136. न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका मिलकर भी सर्वोच्च नहीं हो सकते, क्योंकि सर्वोच्च तो होता है लोक और उसका व्यवस्थापक होता है तंत्र।

313 लोकतंत्र और भ्रष्टाचार

3137. मनमोहन सिंह के कार्यकाल में लालू प्रसाद की मांग पर तत्कालीन वित्तमंत्री प्रणव मुखर्जी ने कह दिया था, कि बिल चाहे जब पास हो किन्तु वह एक वर्ष पूर्व से ही लागू माना जायेगा। “लोकतंत्र में लूट है लूट सके तो लूट, नहीं लूटे तो पछतायेगा जब जाय सांसदी छूट” वह तो ठीक समय पर राहुल गांधी की आत्मा जग गयी और वह बिल पास नहीं हो सका।

314 स्वराज्य

3140. स्वराज्य का अर्थ है प्रत्येक इकाई को अपना आंतरिक संविधान बनाने और क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय संविधान बनाने में सहभागिता। ग्राम स्वराज्य और लोकस्वराज्य शब्दों के अभिप्राय लगभग समान होते हैं, फिर भी लोकस्वराज्य शब्द अधिक व्यापक, स्पष्ट और सुविधाजनक है। दोनों प्रयत्नों को एक-दूसरे के साथ समन्वय करना चाहिए। भारत विदेशी गुलामी से मुक्त हुआ और स्वदेशी गुलामी में जकड़ गया। भारत में स्वराज्य आना शेष है।

3141. आदर्श ग्राम और स्वराज्य ग्राम पृथक परिणाम वाले प्रयास हैं। स्वराज्य ग्राम, आदर्श ग्राम की ओर बढ़ने का एक आवश्यक कदम है। किन्तु बिना ग्राम स्वराज्य के आदर्श ग्राम अर्थात् ग्राम स्वावलम्बन, स्वरोजगार, कुरीति निवारण आदि के प्रयास न सिर्फ मृगतृष्णा हैं बल्कि ग्राम स्वराज्य में बाधक भी हैं। शासन मुक्ति हमारा प्रथम प्रयास होना चाहिए। गांधीजी शासन मुक्ति के प्रबल पक्षधर थे, किन्तु गांधी जी के बाद शासन मुक्ति के प्रयत्नों को किनारे करके अभाव मुक्ति और शोषण मुक्ति का असम्भव प्रयास किया गया।

3142. नेता बेलगाम हैं, संत गुरु नाकाम हैं, हम सब आज गुलाम हैं, अपराधी खुलेआम हैं, अब स्वराज्य का नारा दो, हम पर राज हमारा हो।

3143. स्वराज्य के परिणाम स्वरूप सुराज्य तो आ सकता है, किन्तु सुराज्य कभी स्वराज्य नहीं आने देगा। क्योंकि सुराज्य के बाद स्वराज्य की भूख ही खतम हो जायेगी।

3144. स्वराज्य का एक ही उपयुक्त अर्थ हो सकता है कि प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता। स्वराज्य की इस परिभाषा में व्यक्ति, परिवार या गाँव को कोई निर्णय करने की स्वतंत्रता हो ऐसा नहीं है, बल्कि वे इकाईगत निर्णय ही कर सकते हैं, अर्थात् ऐसे निर्णय, जो किसी अन्य इकाई की स्वतंत्रता में बाधक न हो। इसके अतिरिक्त स्वराज्य की कोई भी परिभाषा अधूरी ही रहेगी।

3145. स्वराज्य ही सुराज्य का मार्ग प्रशस्त करता है। जब इकाई को अपने हित-अहित के अनुसार निर्णय करने और उसका क्रियान्वयन करने की स्वतंत्रता होगी, तभी व्यवस्था दोष रहित होगी।

3146. स्वराज्य का अर्थ है सम्पूर्ण विश्व के संविधान के निर्माण और संशोधन में प्रत्येक व्यक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका तथा अपने आंतरिक कानून बनाने और क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता। इसे ही हम लोकस्वराज्य कहते हैं।

3147. आम नागरिकों की कुशल व्यवस्था के लिए स्वराज्य की स्थापना आवश्यक है और स्वराज्य की सुरक्षा के लिए अपराधियों के मन में कानून का डर भी अनिवार्य है। वर्तमान समय में अपराधी पूरी तरह स्वराज जैसा महसूस कर रहे हैं और आम लोग अपराधियों से भी डरे हुए हैं और कानून से भी।

3148. अनेक समाजशास्त्री तो स्वराज्य समाज के स्थान पर आदर्श समाज की कल्पना को साकार करने में दिन-रात लगे हैं। ये लोग हर कार्य के गुण-दोष स्वयं तय करके, वैसा ही सरकार से कानून बनवाने की जिद करते रहते हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि जब तक स्वराज नहीं आता, तब तक समाज आदर्श मान ही नहीं सकता।

3149. स्वराज्य व्यवस्था में समाज मालिक होता है और राज्य की भूमिका एक निगम के रूप में होती है।

3150. प्रजातंत्र का अर्थ मैं यह समझता हूं कि इसमें नीचे से नीचे और ऊँचे से ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिले। वर्तमान समय में ऊपर के लोग तो बहुत तेज गति से आगे बढ़ रहे हैं और नीचे के लोग चींटी की चाल से।

315 लोकतंत्र और लोकस्वराज्य

3151. लोकतांत्रिक जीवन पद्धति या लोकस्वराज्य के बिना लोकतांत्रिक शासन पद्धति सफल हो ही नहीं सकती। पश्चिम के देश बड़ी चालाकी से अपने देशों की जीवन पद्धति में लोकतंत्र के नाम पर लोकस्वराज्य प्रणाली का विकास कर रहे हैं, जबकि अन्य देशों में वे लोकतांत्रिक शासन पद्धति थोपकर उनकी समूची सामाजिक व्यवस्था को अव्यवस्था और तानाशाही के बीच झूलते रहने का मार्ग दिखा रहे हैं।

3152. लोक नियुक्त तंत्र रूपी लोकतंत्र का विकल्प लोक नियंत्रित तंत्र या लोकस्वराज्य हो सकता है। यदि हां, तो उसका स्वरूप क्या हो? और कैसा हो? यह आज हमारे सामने मुख्य प्रश्न है।

3153. लोकतंत्र और लोकस्वराज्य बिल्कुल अलग-अलग अर्थ रखते हैं। लोकतंत्र में तंत्र अधिकतम अधिकार सम्पन्न होता है तथा लोक न्यूनतम। लोकतंत्र में अधिकार का अर्थ शक्ति से होता है, जिसे अंग्रेजी में पावर कहते हैं। लोकस्वराज्य में तंत्र के पास न्यूनतम शक्ति होती है, जिसका उपयोग विशेष परिस्थिति में ही होता है। लोकस्वराज्य में लोक के पास अधिकार भी होते हैं तथा कर्तव्य भी। लोकस्वराज्य में अधिकार का अंग्रेजी अर्थ पावर नहीं बल्कि राईट होता है। दुर्भाग्य से लोकतंत्र राईट और पावर का हिन्दी अर्थ एक कर देते हैं। लोकतंत्र में तंत्र के निर्देशानुसार, लोक कार्य

करता है, जबकि लोकस्वराज्य में वह अपनी स्थानीय इकाई के निर्देशानुसार कार्य करता है। लोकतंत्र में लोक और तंत्र के बीच दूरी असीम होती है, जबकि लोकस्वराज्य में लोक और तंत्र के बीच दूरी नगण्य होती है। लोकतंत्र में लोक नियुक्त तंत्र होता है, जिसमें सर्वाधिकार सम्पन्न व्यवस्था चुनने तक लोक की भूमिका होती है, जबकि लोकस्वराज्य में लोक निरंतर अपनी भूमिका में सक्रिय रहता है। लोकतंत्र में लोक तंत्र का मुखापेक्षी होता है। उसकी निर्णय करने की क्षमता घटती जाती है, जबकि लोकस्वराज्य में लोक अपना मुखापेक्षी होता है तथा उसकी निर्णय करने की क्षमता बढ़ती जाती है।

3154. लोकतंत्र में व्यक्ति के अधिकारों की अधिकतम सीमा तंत्र तय करता है। तंत्र के अधिकारों की अधिकतम सीमा संविधान तय करता है। दूसरी ओर संविधान तंत्र का गुलाम होता है और तंत्र जब चाहे, उसमें मनमाना फेरबदल कर सकता है। इस तरह लोकतंत्र में संविधान एक धोखा है, जो लोक को भ्रम में डाले रखने के लिए बनाया जाता है। स्पष्ट है कि तंत्र व्यक्ति या लोक के अधिकारों की सीमा भी तय करता है तथा अपनी सीमाएं भी तय करता है। तंत्र लोक के कर्तव्य घोषित करता है तथा अपने अधिकार घोषित करता है। तंत्र अपने अधिकारों में बढ़ोत्तरी बिना लोक से पूछे कभी भी कर सकता है। लोकस्वराज्य में प्रत्येक इकाई अपनी अधिकतम सीमा निश्चित करने के लिए तब तक स्वतंत्र है, जब तक वह सीमा किसी अन्य इकाई की सीमा तक न पहुँच जाये। जब ऐसी सीमाओं में टकराव होता है, तब तंत्र की भूमिका शुरू होती है। अन्यथा सामान्यतया तंत्र की कोई भूमिका नहीं होती। तंत्र

को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी इकाई के अधिकारों की अधिकतम सीमा तय कर सके, भले ही वह इकाई व्यक्ति ही क्यों न हो। तंत्र को कभी यह अधिकार नहीं कि वह किसी व्यक्ति की सम्पत्ति की अधिकतम सीमा भी तय कर सके। मैं जानता हूं कि तंत्र में अपनी भूमिका स्थापित करने की दौड़ में शामिल अनेक लोग सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निश्चित करने की भी वकालत करते हैं। ऐसे वामपंथी विचारों के लोग अप्रत्यक्ष रूप से तानाशाही के समर्थक माने जाते है, जो परिस्थितिवश लोकतंत्र का नकाब लगाकर राजनीति करते रहते हैं।

3155. लोकतंत्र यदि लोकस्वराज्य की तरफ झुका, तो लोक मजबूत और मालिक होता है तथा तंत्र कमजोर और व्यवस्थापक। यदि लोकतंत्र सत्ता के एकत्रीकरण की दिशा में झुका, तो तंत्र मजबूत और मालिक बन जाता है तथा लोक सिर्फ मतदान तक सीमित होकर तंत्र का मुखापेक्षी हो जाता है।

3156. तानाशाही में सत्ता का केन्द्रीकरण होता है, लोकतंत्र में विकेन्द्रीकरण और लोकस्वराज्य में अकेन्द्रीकरण। लोकस्वराज्य संसदीय लोकतंत्र को कमजोर करेगा, जिसका अंतिम परिणाम होगा तंत्र के अधिकारों में कटौती और लोक सशक्तिकरण।

3157. संविधान सभा यानि गुलामी से मुक्ति, लेकिन यह भारत तक सीमित है, विश्व पटल पर इसका कोई महत्व दिखायी नहीं देता। लेकिन लोकस्वराज्य का प्रस्ताव विश्व की समस्याओं का समाधान है और संविधान सभा इस समाधान का आधार।

3158. लोकस्वराज्य को स्वप्न बताकर वर्तमान असफल हो चुके लोकतंत्र को बचाने की कोशिश ठीक नहीं। हम जितनी जल्दी इस

सड़ी-गली लाश से मुक्त होकर लोकस्वराज्य की राह पकड़ लें उतना ही अच्छा होगा।

3159. साम्यवादी, संघ परिवार, इस्लामिक रूढ़िवादी तो लोकस्वराज्य को समझेंगे नहीं, किन्तु समाजवादी, गांधीवादी, कांग्रेसी भी जिनकी नीयत ठीक है, वे समझ सकते हैं। यही सोचकर लोकतंत्र के शुद्धिकरण के लिए लोकस्वराज्य की अवधारणा विकसित की जा रही है। लेकिन वर्तमान स्थिति में संघ परिवार लोकस्वराज्य को समझने की कोशिश कर रहा है।

3160. लोकतंत्र लोक नियुक्त तंत्र तक सीमित होने के कारण तानाशाही से अच्छा होता है, किन्तु समाज को गुलाम बनाकर रखता है। इसमें वोट देकर चुनने के अधिकार के अतिरिक्त सभी अधिकार संसद के पास इकट्ठे हो जाते हैं, जबकि लोकस्वराज्य में संसद से लेकर परिवार तक अधिकार तथा दायित्वों का बंटवारा हो जाता है। लोकस्वराज्य प्रणाली में जीवन पद्धति का विकास होता है, जबकि लोकतंत्र में शासन पद्धति का। लोकस्वराज्य को सहभागी लोकतंत्र कह सकते हैं, जबकि लोकतंत्र की पहचान संसदीय लोकतंत्र से होती है।

3161. यदि हम स्वशासन निश्चित कर लें, तो सुशासन तो अपने आप हो जायेगा। सुशासन स्वशासन का निश्चित परिणाम होता है, किन्तु सुशासन से स्वशासन की ओर बढ़ना कठिन है।

3162. लोकतंत्र में वही नेता सफल होता है, जो समाज को वर्गों में बांटकर वर्ग-विद्वेष तथा वर्ग-संघर्ष कराने में माहिर हो। जो नेता धर्म, जाति, लिंग आदि के आधार पर समाज का विभाजन नहीं कर सकता, वह सफल हो ही नहीं सकता। तानाशाही में वर्ग भेद घातक होता

है और लोकस्वराज्य प्रणाली में अनावश्यक। किन्तु लोकतंत्र में तो यह बहुत मारक हथियार माना जाता है।

3163. लोकतंत्र विकृत होकर असफल हो चुका है। अब इस मरी हुई लाश को दफनाकर लोकस्वराज्य के पौधे को मजबूत करना ही उचित है। लोकतंत्र को लोकस्वराज्य प्रणाली में बदलना ही है, जिसका अर्थ है लोक नियुक्त तंत्र को लोक नियंत्रित तंत्र में बदलना।

3164. पश्चिम के देशों में लोकतंत्र के नाम पर जो व्यवस्था चल रही है, उसमें मौलिक लोकतंत्र है। वहां का लोकतंत्र लोकस्वराज्य की दिशा में झुका रहता है। इसके विपरीत भारत तथा अन्य दक्षिण एशिया के देशों का लोकतंत्र तानाशाही की दिशा में झुका रहता है।

3165. मेरे विचार से सहभागी लोकतंत्र संसदीय लोकतंत्र की अगली सीढ़ी है। संसदीय लोकतंत्र कहीं भी सहभागी लोकतंत्र में बाधक नहीं है। पूंजीवाद भी सहभागी लोकतंत्र में बाधक नहीं होगा।

3166. दुनिया जानती है कि लोकतंत्र एक असफल सिद्धांत है, जो तानाशाही की जगह मजबूरी में स्वीकार किया जाता है। किन्तु यदि लोकतंत्र लोकस्वराज्य की दिशा में न जाये, तो वहां अव्यवस्था होना निश्चित है। वर्तमान समय में लोकतंत्र सबसे कम बुरी व्यवस्था है। इसे लोकस्वराज की दिशा में जाना चाहिए।

3167. लोकतंत्र कभी भी भारत की विचारधारा नहीं रही। भारत में या तो राजतंत्र था या लोकस्वराज्य, जिसे आजकल सहभागी लोकतंत्र भी कहते हैं।

3168. लोकतंत्र लोक नियुक्त तंत्र होता है और लोकस्वराज्य लोक नियंत्रित तंत्र। लोकतंत्र में तंत्र द्वारा बनाई गई व्यवस्था से संविधान बनता है, तो लोकस्वराज्य में लोक द्वारा बनाई गई व्यवस्था से

संविधान बनता है या संशोधित होता है। लोकतंत्र में लोक एक तंत्र बनाता है और वही तंत्र संविधान बनाता है, जो पूरी तरह गलत प्रक्रिया है। लोक को संविधान बनाना चाहिए और संविधान के अनुसार तंत्र बनना और कार्य करना चाहिए।

3169. लोकस्वराज्य का अर्थ है लोकनियंत्रित तंत्र अर्थात् तंत्र पर लोक का हावी होना। व्यक्ति पर कानून का, कानून पर संसद का, संसद पर संविधान का और संविधान पर लोक का सशक्त होना ही आदर्श लोकतंत्र का मार्ग है। व्यक्ति पर कानून, कानून पर संसद और संसद पर संविधान का शासन तो हैं, किन्तु दुर्भाग्य से संविधान पर लोक का हस्तक्षेप न होकर उस पर पलटकर संसद का ही अधिकार हो गया और लोक को सांसद की नियुक्ति करने तक का आंशिक अधिकार तो रहा, किन्तु नियंत्रण का अधिकार नहीं रहा। यही एकमात्र कारण है कि लोकतंत्र विकृत हो गया।

3170. लोक स्वराज्य प्रणाली, लोकतंत्र का एक अच्छा विकल्प है। आदर्श लोकतंत्र में शासन के अधिकार तो बहुत होते हैं, किन्तु दायित्व तथा हस्तक्षेप कम होता है। लोकस्वराज्य में शासन के दायित्व तथा हस्तक्षेप के साथ-साथ अधिकार भी बहुत कम होते हैं। लोकतंत्र में यदि जन प्रतिनिधियों की नीयत खराब हो जाये, तो वे लोकतंत्र का दुरूपयोग भी कर सकते हैं, किंतु लोकस्वराज्य में नहीं कर सकते।

3171. लोकस्वराज्य में संविधान की भी एक भिन्न परिभाषा होती है 'तंत्र के अधिकतम तथा लोक के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएं निश्चित करने वाला दस्तावेज'।

317 लोकस्वराज्य आंदोलन

3172. लोकस्वराज्य आंदोलन इस सड़े-गले संसदीय लोकतंत्र को लोकस्वराज्य की दिशा देने का पहला कदम है। जब तक हमारे समक्ष गुलामी और तानाशाही का खतरा था, तब तक हम इस सड़े-गले लोकतंत्र की पूजा करते रहे। अब हमारे समक्ष न गुलामी का डर है, न तानाशाही का।

3173. राजनैतिक शक्तियां इतनी आसानी से हार मानने वाली नहीं। इसके लिए तो निरंतर सक्रिय होना होगा और सिर्फ सक्रियता ही नहीं, बल्कि सूझ-बूझ से सक्रिय होना होगा, क्योंकि सूझ-बूझ के अभाव में सक्रियता घातक हो जाया करती है।

318 लोक स्वराज्य

3180. भारत की समस्याओं का दीर्घकालिक समाधान तो सहभागी लोकतंत्र या लोकस्वराज्य ही है, जिस आंदोलन की शुरूआत जयप्रकाश जी ने की थी तथा बाद में अन्ना जी ने आगे बढ़ाया।

3181. लोकस्वराज्य प्रार्थना का प्रारूप इस प्रकार है कि "हे प्रभु! आप मुझे शक्ति दो कि मैं दूसरों को अपनी इच्छानुसार संचालित करने की इच्छा अथवा दूसरों द्वारा संचालित होने की मजबूरी से दूर रह सकूं, यदि ऐसा न हो सके, तो इसके लिए सबको सहमत कर सकूं और फिर भी ऐसा न हो, तो ऐसी इच्छाओं का अहिंसक प्रतिरोध करूं"। यह प्रार्थना प्रत्येक व्यक्ति में श्रद्धा, तर्क और आत्मविश्वास बढ़ाने का उचित आधार है।

3182. सबसे अच्छी व्यवस्था तो है लोकस्वराज्य, जिसमें राज्य सत्ता और अर्थ सत्ता विकेन्द्रित होकर प्रत्येक ऊपर की इकाई के पास सीमित मात्रा में रह जाती है।

3183. मेरी सलाह है कि चुनावों में यदि कोई दल लोकस्वराज्य की स्पष्ट अवधारणा घोषित करे तभी दल का समर्थन किया जाय अन्यथा दलगत विचारधारा से ऊपर उठकर ईमानदार और भ्रष्ट के बीच स्पष्ट विभाजन रेखा खींच दी जाय। जो लोकस्वराज्य की दिशा में जायेगा, जो हमें मालिक बनायेगा, उसे ही हम स्वीकार करेंगे। लोक और तंत्र के बीच में अधिकारों की पुनर्व्याख्या होनी चाहिए।

3184. लोकस्वराज्य प्रणाली लोकतंत्र का विकल्प बन सकती है। लोकतंत्र और लोकस्वराज्य में सिर्फ इतना ही अंतर है कि लोक तंत्र में निर्वाचित जन प्रतिनिधि शासक होते हैं और लोकस्वराज्य में व्यवस्थापक।

3185. लोकस्वराज्य वह स्थिति होती है, जिसमें राज्य सुरक्षा और न्याय तक सीमित रहकर परिवार या समाज की अपनी आंतरिक व्यवस्था में कोई दखल नहीं देता।

3186. लोकस्वराज्य की भूमिका जनकल्याणकारी राज्य की न होकर, जनकल्याणकारी समाज के निर्माण में सहायक की होती है।

3187. मेरे विचार में समस्याओं के समाधान के लिए, तंत्र से जुड़ी तीन इकाईयों के टकराव से बचने के लिए, सहजीवन को भी व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए तथा परिवार व्यवस्था, गाँव व्यवस्था, समाज व्यवस्था को सशक्त करने के लिए सहभागी लोकतंत्र ही एकमात्र मार्ग है। भारत दुनिया का अकेला ऐसा देश है, जहां से सहभागी लोकतंत्र की आवाजें पहले भी उठती रही है तथा वर्तमान में भी उठ रही हैं।

3188. मैं बहुत पहले से ही कहता आ रहा हूं कि लोकतंत्र कभी दीर्घकालिक मार्ग नहीं है। भारत सरीखा लोकतंत्र यदि लम्बे समय

तक चला, तो अव्यवस्था निश्चित है, जिसका अन्तिम परिणाम है तानाशाही।

3189. लोकस्वराज्य का अर्थ है—समाज की जीवन पद्धति में लोकतंत्र का समावेश।

3190. यदि लोकस्वराज्य हो, तो समाज किसी से न्याय प्राप्त करने के लिये मजबूर नहीं है, बल्कि वह या तो स्वयं न्याय देता है अथवा समाज न्याय देने का दायित्व किसी इकाई को सौंपता है।

3191. लोकस्वराज्य की स्थिति आदर्श स्थिति होगी। उसमें केंद्र में एक सरकार होगी, जिसमें पाँच विभाग होंगे—(1) सेना, (2) पुलिस, (3) वित्त, (4) विदेश, (5) न्याय। छठवां कोई विभाग नहीं होगा। प्रदेश में न कोई सरकार होगी, न कोई विधानसभा। अन्य सभी अधिकार परिवारों को सौंप दिये जायेंगे। परिवार आवश्यकतानुसार गाँव से लेकर केन्द्र सभा तक को अधिकार दे सकता है।

319 गुलामी

3192. किसी व्यक्ति की सहमति के बिना उसकी स्वतंत्रता पर किसी प्रकार का अंकुश लगता है, तो हम उसे गुलामी कहते हैं। यदि किसी ने किसी मजबूरी में कोई गुलामी स्वीकार की है, उसे गुलामी नहीं बल्कि समझौता कहते हैं। गुलामी किसी भी परिस्थिति में अच्छी नहीं होती है। भारत कई सौ वर्षों तक गुलाम रहा है। पहले मुसलमानों ने भारत को गुलाम बना कर रखा, तो बाद में अंग्रेजों ने। मुसलमानों की तुलना में अंग्रेजों का कार्यकाल बहुत कम बुरा था, क्योंकि मुसलमान तानाशाह थे और अंग्रेज लोकतांत्रिक। अंग्रेजों के जाने के बाद भारत राष्ट्रीय स्तर पर स्वतंत्र हो गया, किन्तु सामाजिक तथा वैचारिक स्तर पर अब भी गुलाम है। समाज

पहले विदेशी लोहे की जंजीरों से बंधा था, तो अब स्वदेशी लोहे की है।

320 लोकतंत्र और तानाशाही

3200. केन्द्रित व्यवस्था को तानाशाही का रूप कहा जाता है तथा विकेन्द्रित व्यवस्था को लोकतंत्र कहते हैं। तानाशाही या तो व्यक्ति की होती है या ग्रुप की, जबकि लोकतंत्र बहुमत का होता है। तानाशाही में सर्वोच्च व्यक्ति या ग्रुप के पास सर्वाधिकार सुरक्षित होते हैं, किन्तु लोकतंत्र में व्यक्ति या ग्रुप के पास उतने ही अधिकार होते हैं, जितने संविधान उन्हें दे। तानाशाही में व्यक्ति के कोई मौलिक अधिकार नहीं होते, किन्तु लोकतंत्र में व्यक्ति के मौलिक अधिकार होते हैं।

3201. आधे भरे हुए गिलास को खाली गिलास कहना भी उतना ही गलत है, जितना भरा गिलास कहना। मौलिक अधिकार न इस्लामिक देशों में प्राप्त है, न साम्यवादी देशों में, न राजतंत्रों में और न ही तानाशाही के देशों में। भारत का लोकतंत्र अधूरा है क्योंकि भारत में प्रत्येक व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त होने से लोकतंत्र है और संविधान तंत्र का गुलाम होने के कारण तानाशाही है।

3202. मेरे विचार से वर्तमान समस्याओं का समाधान लोकस्वराज्य में है। यह लोकस्वराज्य तानाशाही का भी विकल्प है, और वर्तमान अव्यवस्था का भी समाधान है।

3203. तानाशाही में शासन का संविधान होता है और लोकतंत्र में संविधान का शासन। यदि कार्यपालिका, विधायिका तथा संविधान संशोधन एक ही इकाई के पास इकट्ठा हो, तो वह लोक तंत्र नहीं हो सकता। संसद लगातार तानाशाही की दिशा में बढ़ती चली गई और समाज

गुलाम होता गया। समाज की भौतिक प्रगति तो पर्याप्त हुई, किन्तु नैतिक पतन भी उसी गति से बढ़ता चला गया।

3204. तानाशाही में कभी व्यवस्था या अव्यवस्था नहीं हो सकती। या तो सुव्यवस्था होगी या कुव्यवस्था। यदि तानाशाह अच्छा आदमी है तो सुव्यवस्था, अच्छा नहीं है तो कुव्यवस्था। लोकतंत्र में न कभी सुव्यवस्था सम्भव है न ही कुव्यवस्था, लोकतंत्र में सदा अव्यवस्था ही होती है।

3205. तानाशाही में संशोधन के सभी मार्ग बन्द हो जाते हैं, जबकि लोकतंत्र में संशोधन के सभी मार्ग खुले रहते हैं। इसलिए तानाशाही में व्यवस्थात्मक गुणों के होते हुए भी तानाशाही की अपेक्षा लोकतंत्र को अच्छा माना जाता है।

3206. तानाशाही को लोकतांत्रिक तरीके से बढ़ाने का सबसे अच्छा नारा होता है 'राष्ट्रवाद'। भारत के इन शासकों ने ही राष्ट्रवाद का नारा दिया। संघ परिवार ने इसे सबसे अधिक उछाला।

3207. तानाशाही और लोकतंत्र में बहुत फर्क है। तानाशाही में नीति निर्माण और क्रियान्वयन दोनों का अन्तिम निर्णय एक व्यक्ति या ग्रुप के पास होता है, जबकि लोकतंत्र में दोनों कार्य दो अलग-अलग इकाइयों के पास होते हैं और दोनों इकाइयां किसी संविधान से बंधी होती हैं। इस तरह लोकतांत्रिक व्यवस्था में तानाशाही तो संविधान की ही होती है, जो तीनों इकाइयों को नियंत्रित करता है।

3208. लोकतंत्र यदि लोकस्वराज्य की दिशा में न बढ़े, तो उसका अन्तिम परिणाम तानाशाही ही होता है। तानाशाही भी दो प्रकार की होती है—(1) लोकतांत्रिक तानाशाही, (2) शक्ति बल से तानाशाही। हिटलर की तानाशाही लोकतांत्रिक कही जाती है, तो सद्दाम की

तानाशाही बलपूर्वक। भारत की वर्तमान राजनैतिक व्यवस्था न्यायिक तानाशाही की दिशा में जा रही है।

3209. यह दुनिया का जाना-माना सिद्धांत है कि जिन देशों में लोकतंत्र शासन व्यवस्था तक तो आ जाता है, किन्तु जीवन पद्धति अर्थात् परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था में नहीं आ पाता है, वहां अव्यवस्था निश्चित होती है और जहां लम्बे समय तक अव्यवस्था होती है, वहां समाज में तानाशाही की भूख पैदा होती है, क्योंकि जनमानस समाधान को प्राथमिकता देता है, अर्थात् यदि वह लोकतंत्र से आवे तो ठीक है, अन्यथा वह तानाशाही से भी समाधान स्वीकार कर लेगा।

3210. यदि लोकतंत्र की तानाशाही से तुलना होगी, तो लोकतंत्र अच्छा कहा जायेगा। और लोकतंत्र की तुलना लोकस्वराज्य से होगी तो लोकतंत्र बुरा कहा जायेगा।

3211. तानाशाह व्यक्ति के मूल अधिकारों का अस्तित्व स्वीकार नहीं करता, जबकि लोकतंत्र करता है। वामपंथी, साम्यवादी तथा दक्षिणपंथी हिन्दू महासभा, सावरकरवादी तानाशाही पर विश्वास करते हैं और हिंसा को अंतिम शस्त्र की जगह प्रथम शस्त्र मानते हैं। इसी तरह मुस्लिम बहुमत भी तानाशाही का ही पक्षधर है।

3212. प्रारम्भ से ही भारतीय लोकतंत्र को साम्यवादी शासन पद्धति के साथ इस तरह जोड़ा गया कि यहां न तो तानाशाही आयी और न ही लोकतंत्र रहा। बल्कि दोनों के संयोग से एक ऐसी व्यवस्था आयी, जिसे हम सिर्फ अव्यवस्था कह सकते हैं।

3213. लोकतंत्र में शासन को लोकहित की अपेक्षा लोकप्रियता की अधिक चिन्ता बनी रहती है, जबकि तानाशाही में ऐसा नहीं होता।

तानाशाही और लोकतंत्र की तुलना में लोकस्वराज्य आदर्श स्थिति होती है।

3214. लोकतंत्र एक कठिन प्रणाली है, जबकि तानाशाही आसान और सुविधाजनक। लोकतंत्र में संचालक और संचालित के बीच की दूरी न्यूनतम होती है और तानाशाही में अधिकतम।

3215. लोकतंत्र और तानाशाही के बीच लोकतंत्र को आदर्श माना जा रहा है, जबकि तानाशाही मजबूरी मानी जाती है।

3216. दुनिया में अमेरिका मजबूत हो रहा है, क्योंकि अमेरिका लोकतंत्र का नेतृत्व कर रहा है। अमेरिका को चुनौती लोकतंत्र की चुनौती मानी जा रही है। सिद्धांतविहीन तानाशाह मुस्लिम देश लोकतंत्र की राह में आगे बढ़ने के स्थान पर लोकतंत्र के विरुद्ध टकराने की असफल कोशिश में लगे हैं। लोकतंत्र की हवा में तानाशाही के तो ऐसे परिणाम होने ही हैं। बीच में भारत अनावश्यक मोह में पड़ा हुआ है। भारत को ऐसी स्थिति में अमेरिका की भी चापलूसी करनी पड़ रही है और मुस्लिम तानाशाहों की भी।

3217. लोकतंत्र यदि केन्द्रीकरण की ओर बढ़े, तो तानाशाही की ओर बढ़ा हुआ माना जाता है और लोकस्वराज्य की ओर बढ़े, तो आदर्श स्थिति मानी जाती है, किन्तु यदि लोकतंत्र किसी तरफ न बढ़े तो अव्यवस्था निश्चित है।

321 तानाशाही और साम्यवाद

3218. साम्यवाद तानाशाही का एक विकसित संशोधित स्वरूप है और लोकतंत्र लोकस्वराज्य का एक अविकसित असंशोधित स्वरूप। साम्यवाद और तानाशाही में सिर्फ इतना ही अंतर है कि साम्यवाद

एक व्यक्ति की तानाशाही न होकर एक वर्ग या समूह की तानाशाही होता है।

3219. राज्य हमेशा ही समाज पर अपना अधिकतम हस्तक्षेप बनाये रखना चाहता है। लोकतंत्र उस हस्तक्षेप में आंशिक रूप से बाधक रहा, किन्तु जब दुनिया में साम्यवाद मजबूत होने लगा, तब से लोकतंत्र के समक्ष भी संकट पैदा हुआ।

322 तानाशाही और अव्यवस्था

3220. तानाशाही अव्यवस्था का समाधान तो हो सकती है, किन्तु लोकतंत्र का समाधान नहीं हो सकती। क्योंकि तानाशाही सबसे खराब व्यवस्था है। मनमोहन सिंह के कार्यकाल में भारत में भी लोकतंत्र जिस गति से अव्यवस्था की ओर बढ़ रहा था उसमें तानाशाही की सम्भावना स्पष्ट दिखती थी। कहा नहीं जा सकता था कि वह तानाशाही व्यक्तिगत होगी या सैनिक या नक्सलवादी किन्तु लोकतंत्र का भविष्य तो उधर ही जाता दिख रहा था। लोकतंत्र का भविष्य भारत में तो निश्चित रूप से खतरे में था अर्थात् एक तरफ कुंआ रूपी अव्यवस्था तथा दूसरी तरफ खाई रूपी तानाशाही। बीच का मार्ग समाज ही निकाल सकता था। समाज ने नरेन्द्र मोदी को आगे लाकर स्थिति को सम्भाल लिया है।

3221. लोकतंत्र और तानाशाही के अलग-अलग गुण भी होते हैं और दोष भी। तानाशाही में व्यवस्था भी होती है और अनुशासन भी। लोकतंत्र में अव्यवस्था होना स्वाभाविक है।

3222. लोकतंत्र का परिणाम होता है अव्यवस्था तथा अव्यवस्था का परिणाम होता है तानाशाही। तानाशाही लोकतंत्र का वह अन्तिम

पड़ाव मानी जाती है, जहां जाकर लोकतंत्र भी समाप्त हो जाता है और अव्यवस्था भी समाप्त हो जाती है।

3223. अव्यवस्था समाज में तानाशाही की भूख पैदा करती है। तानाशाही समाज व्यवस्था का सबसे घृणित स्वरूप है, क्योंकि तानाशाही पूरी तरह गुलामी है, किन्तु अव्यवस्था होने पर आप तानाशाही से बच नहीं सकते हैं। तानाशाही से बचने का एक ही मार्ग है ग्रामसभा सशक्तिकरण। ग्रामसभा सशक्तिकरण के माध्यम से लोकतंत्र को लोकस्वराज्य में बदला जा सकता है जिससे अव्यवस्था घटे तथा तानाशाही का खतरा टले।

3224. 'अव्यवस्था' या तो स्वशासन से दूर हो सकती है अथवा तानाशाही से। स्वशासन हो, तो उसके लिए मैं सर्वोच्च प्राथमिकता मानता हूं और यदि सम्भव न हो तो तानाशाही को भी स्वीकार कर सकता हूं किन्तु अव्यवस्था को नहीं।

3225. लोकतंत्र एक ऐसी प्रणाली है, जो जीवन पद्धति में न आकर शासन पद्धति तक सीमित हो जाती है, जिसका परिणाम होता है अव्यवस्था और उसका समाधान होता है तानाशाही। इसीलिए तानाशाही का सबसे अच्छा विकल्प लोकस्वराज्य ही माना जाता है।

322 तानाशाही और हिंसा

3226. तानाशाही में व्यवस्था परिवर्तन का कोई मार्ग उपलब्ध नहीं होता और तब हिंसा ही एक मार्ग दिखता है। किन्तु लोकतंत्र हो, तब हिंसा-अहिंसा पर बहस अर्थहीन हो जाती है, क्योंकि लोकतंत्र में हिंसा का कोई स्थान नहीं होता। जब तानाशाही हो और राज्य व्यवस्था को बदलने का कोई अन्य मार्ग न हो, तब हिंसा या अहिंसा के बीच विकल्प की बात हो सकती है।

3227. लोकतंत्र में समाज को किसी भी परिस्थिति में बल प्रयोग का न ही कोई अधिकार होता है, न ही कोई आवश्यकता। सामाजिक बल प्रयोग एक अपराध माना जाता है।

3228. तानाशाही में हिंसा, टकराव का एक मार्ग हो सकता है, किन्तु लोकतंत्र में वह मार्ग नहीं हो सकता। साम्यवाद तथा इस्लाम लोकतंत्र के समर्थक नहीं हैं, क्योंकि इनकी व्यवस्था में व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं है। स्वतंत्रता के बाद भी यदि हिंसा का समर्थन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया जाता है, तो वह उचित नहीं है।

323 आयातित लोकतंत्र

3230. आयातित लोकतंत्र शासन पद्धति में आता है, जीवन पद्धति में नहीं। ऐसा लोकतंत्र भारत सहित दक्षिण एशिया के सभी देशों में है।

3231. आयातित लोकतंत्र निरन्तर अव्यवस्था की ओर बढ़ता है। इसमें न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका आपस में सहयोगी की भूमिका में न होकर प्रतिस्पर्धी हो जाते हैं।

3232. आयातित लोकतंत्र में संगठन प्रमुख हो जाते हैं, असंगठित गौण, सरकारें संगठनों पर निर्भर हो जाती हैं। यहां तक कि सरकारें संगठनों के दबाव में अल्पसंख्यक आयोग, आदिवासी आयोग, महिला आयोग जैसी समाज तोड़क शासकीय इकाइयां बनाते रहती हैं।

3233. आयातित लोकतंत्र में सरकारें जनहित की जगह जनप्रिय कार्य करने लगती हैं, जिसके परिणामस्वरूप कमजोर और मजबूत, शरीफ और बदमाश, गरीब-अमीर और श्रमजीवी तथा बुद्धिजीवी के बीच असंतुलन पैदा होता है और दूरियां बढ़ने लगती हैं।

324 लोकतंत्र

3240. लोकतंत्र में सरकारें समाज को अधिक से अधिक गुलाम मानसिकता का बना देती हैं। सरकार समाज से अधिकार लेती हैं और सुविधाएं देती हैं। इस तरह समाज राज्य का मुखापेक्षी हो जाता है।

3241. भारत का लोकतंत्र 'जनता से, जनता के लिए' तो काम करता रहा है, किन्तु लोकतंत्र 'जनता के द्वारा' कभी भी चलने की शुरूआत नहीं कर सका।

3242. हम यदि स्वतंत्रता के बाद भारत के लोकतंत्र की समीक्षा करें, तो हम देखते हैं कि पंडित नेहरू ने भारत के लोकतंत्र के साथ सबसे अधिक धोखा किया। उन्होंने भारत में लोकतंत्र का ऐसा ढांचा तैयार किया कि भारत का लोकतंत्र कई पीढ़ियों तक एक ही परिवार में सिमट कर रह गया। आज भारत के लोकतंत्र की यह दुर्दशा है कि वह कुछ व्यक्तियों के गिरोह के रूप में स्थापित हो गया है।

3243. भारत एक लोकतांत्रिक देश है। लोकतंत्र का अधिक से अधिक लाभ उठाने के उद्देश्य से राजनेता निरंतर लोकहित को छोड़कर लोकप्रिय बनने का प्रयास करते रहते हैं।

3244. जनतंत्र की वास्तविक परिभाषा यह है कि उस देश में व्यक्ति को मौलिक अधिकार प्राप्त होते हैं। मौलिक अधिकार चार प्रकार के होते हैं—(1) जीने की स्वतंत्रता (2) अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता (3) सम्पत्ति (4) स्वनिर्णय। जनतंत्र में सभी व्यक्ति मिलकर संविधान बनाते हैं और संविधान के मुताबिक तंत्र कार्य करता है।

3245. न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका द्वारा आपस में एक-

दूसरे पर आक्रमण, भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आघात है। इसे भारत की संप्रभुता पर भी आक्रमण समझा जाना चाहिए।

3246. लोकतंत्र में संविधान का शासन होता है, व्यक्ति या व्यक्तियों का नहीं। यदि एक अथवा कुछ व्यक्ति, गलत करते हैं और राज्य व्यवस्था उन्हें नहीं रोक पाती, तो असफलता संविधान की है, दोष राज्य का और अपराध व्यक्ति का। लोकतंत्र में समाज व्यक्ति को दंडित नहीं कर सकता और राज्य पर भी अंकुश नहीं लगा सकता।

3247. लोकतंत्र में अधिकार तीन प्रकार के होते हैं—(1) मौलिक, (2) सवैधानिक एवं (3) सामाजिक। लोकतंत्र में व्यक्ति और समाज के अधिकारों के बीच एक सीमा रेखा हुआ करती है, जो साम्यवाद में नहीं हुआ करती। लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकार होना अनिवार्य है, जबकि साम्यवाद में मौलिक अधिकार होते ही नहीं।

3248. लोकतंत्र में उसकी तीनों इकाइयां (विधायिका, न्यायपालिका एवं कार्यपालिका) समकक्ष होती हैं तथा तीनों एक-दूसरे की सहायक भी होती हैं और नियंत्रक भी।

3249. सर्वशक्तिमान संसद और संसदीय लोकतंत्र के अपराधियों से समझौते के विरुद्ध पहला मोर्चा खोला 'टी एन शेषन' ने चुनाव आयोग को माध्यम बनाकर। न्यायपालिका और चुनाव आयोग नाम से दो ही ऐसी संवैधानिक शक्तियां थीं, जो कुछ बची हुई थीं। चुनाव आयोग की शक्तियां सीमित थी और न्यायपालिका की संसद के समकक्ष। समाज बेबस और लाचार था। पंडित नेहरू ने न्यायपालिका को भी बेहद कमजोर कर दिया था। धीरे-धीरे उसकी संवैधानिक शक्तियां सीमित की जा रही थी। शेषन ने चुनाव

आयोग को अधिक से अधिक स्वतंत्र करने की सफल कोशिश की।

326 तानाशाही

3260. तानाशाही लक्ष्य प्राप्ति में सहायक होते हुए भी न्याय में बाधक है, अन्य लोगों की क्षमता का पर्याप्त विकास नहीं हो पाता।

3261. तानाशाही में सर्वोच्च इकाई का चयन, व्यक्तियों या परिवारों द्वारा न होकर शक्ति या परंपरा से होता है, जबकि प्रजातंत्र में सर्वोच्च इकाई का चयन आम लोग करते हैं। इस तरह प्रजातंत्र तानाशाही का एक बहुत ही सुधरा हुआ स्वरूप तो है, किन्तु वह स्वराज्य से कोसों दूर है।

3262. तानाशाही किसी बीमारी का आपरेशन तो हो सकता है, किन्तु स्वास्थ्य लाभ के लिए वह किसी दवा या टॉनिक का काम नहीं करता।

3263. 'सत्ता' जब तानाशाह होती है, तो उसकी प्रत्यक्ष लोकप्रियता भय के कारण बढ़ती है तथा अप्रत्यक्ष लोकप्रियता घटती है। तानाशाह प्रायः अपने शासन काल में बहुत लोकप्रिय हुआ करते हैं, किन्तु उनकी लाश गिरते ही उनकी लोकप्रियता पलट जाती है। यही सद्दाम का हुआ, गद्दाफी का हुआ, हिटलर का हुआ और यही हाल रूस के तानाशाहों का भी इतिहास में दर्ज है। तानाशाही के प्रशंसक भी इस चपेट में आ जाते हैं।

3264. वास्तव में कि प्रत्येक नेता जनहित के नाम पर तानाशाह बनना चाहते हैं, सरदार पटेल में तो यह गंध थी ही, पंडित नेहरू भी इससे अछूते नहीं थे, और इंदिरा जी ने तो प्रयोग करके देख लिया। रोमानिया के कम्युनिष्ट शासक के महल का इतिहास भी कोई गुप्त नहीं रहा है।

3265. तानाशाह देश में उग्रवाद या आतंकवाद न के बराबर होता है। किन्तु तानाशाह देश अपने पड़ोसी देश में हमेशा ही आतंकवाद को प्रश्रय दिया करते हैं। पंडित नेहरू तानाशाही प्रवृत्ति के व्यक्ति थे जो लोकतंत्र का मुखौटा पहने हुए थे। यदि वे तानाशाह बन जाते तो अवश्य ही पड़ोसियों को परेशान करते।

3266. कुछ व्यक्तियों के अंदर आंशिक रूप से तानाशाही की भावना है, उसे हटाने का प्रयत्न अधिक उचित होगा, न कि उनकी जगह 'किसी एक को पूर्ण तानाशाह बनने' की ओर सर्मथन करने का।

3267. इंदिरा जी ने तानाशाह बनने के लिए ही 'गरीबी हटाओ' और 'राष्ट्रीयकरण' जैसे नारे उछाले थे।

3268. भारत की भौतिक समस्याओं का समाधान तानाशाही से ही सम्भव है। भारत का वर्तमान लोकतंत्र समस्याओं में विस्तार ही करेगा और इसका समाधान या तो लोकस्वराज्य है अथवा तानाशाही।

3269. तानाशाही में संविधान निर्माण या संशोधन में समाज की भूमिका शून्य तथा राज्य की सम्पूर्ण रूप से होती है।

3270. भारत में परिवारों की आंतरिक व्यवस्था में भी तानाशाही का ही प्रभाव प्रमुख होता है। इसका अर्थ हुआ कि व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति नहीं चलता, बल्कि व्यक्ति के अनुसार व्यवस्था चलती है। व्यक्ति के अनुसार व्यवस्था परिवारों में भी है, धार्मिक व्यवस्था में भी है, राजनैतिक व्यवस्था में भी है तथा सामाजिक व्यवस्था भी इससे भिन्न नहीं है।

327 तानाशाही, लोकतंत्र और लोकस्वराज्य

3272. लोकतंत्र में संविधान का शासन और तानाशाही में शासन का संविधान होता है। शासक तंत्र तथा सरकार एक ही होते हैं।

लोकतंत्र में लोक नियंत्रित संविधान, संविधान नियंत्रित तंत्र, तंत्र नियंत्रित व्यक्ति होता है। तानाशाही में तंत्र ही संविधान पर नियंत्रण करता है, तंत्र ही कानून भी बनाता है तथा तंत्र ही क्रियान्वयन भी करता है। आदर्श लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता की सुरक्षा और उद्दंडता पर नियंत्रण की गारंटी होती है। विकृत लोकतंत्र में स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी, किन्तु उद्दंडता अनियंत्रित होती है। तानाशाही में स्वतंत्रता भी नहीं होती तथा उद्दंडता भी नहीं होती। भारतीय लोकतंत्र में स्वतंत्रता पर नियंत्रण है और उद्दंडता की छूट है। पश्चिम का लोकतंत्र विकृत, चीन एवं उत्तर कोरिया में तानाशाही, भारत-पाकिस्तान एवं लंका आदि में लोकतांत्रिक तानाशाही है। आदर्श लोकतंत्र फ़िलहाल अभी कल्पना में है।

3273. वर्तमान विश्व में तीन प्रकार की तानाशाही है—व्यक्ति की, समूह की, तन्त्र की। उत्तर कोरिया में व्यक्ति की, चीन में समूह की, भारत जैसे देशों में तन्त्र की तानाशाही है। व्यक्ति या समूह की तानाशाही में व्यक्ति के मौलिक अधिकार नहीं होते, जैसा उत्तर कोरिया या चीन में है। ऐसे देशों में तंत्र की नियुक्ति में भी वहां के नागरिकों की कोई स्वतंत्र भूमिका नहीं होती। जहां सिस्टम की तानाशाही होती है, वहां व्यक्ति के मौलिक अधिकार भी होते हैं तथा तंत्र नियुक्ति में भी लोक की स्वतंत्र भूमिका होती है, किन्तु तंत्र की तानाशाही में भी संविधान, कानून और क्रियान्वयन पर तंत्र का ही एकाधिकार होता है। भारत सहित दक्षिण एशिया के देशों में सिस्टम की तानाशाही है।

3274. (1) प्रजातंत्र या लोकतंत्र में कानून का शासन होता है। कानून तंत्र का होता है। आम नागरिकों को मौलिक अधिकार प्राप्त होते हैं।

(2) विकृत लोकतंत्र में शासक आम नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं। चुने हुए लोगों को संविधान संशोधन का पूरा अधिकार होता है। व्यवस्था में नागरिक सहयोगी होते हैं, सहभागी नहीं। संसद की भूमिका कस्टोडियन की होती है। (3) आदर्श लोकतंत्र, सहभागी लोकतंत्र और लोकस्वराज्य समान अर्थ के होते हैं। स्वराज्य और विकृत लोकतंत्र में यह अंतर होता है कि विकृत लोकतंत्र में जनता द्वारा चुने हुए लोग शासक होते हैं, जबकि स्वराज्य में जनता द्वारा चुने हुए लोग व्यवस्थापक होते हैं। स्वराज्य में चुने हुए लोगों को संविधान संशोधन में प्रस्तावक तक की भूमिका होती है, सम्पूर्ण नहीं। व्यवस्था में नागरिक सहभागी होते हैं, सिर्फ सहयोगी नहीं। संसद की भूमिका मैनेजर की होती है।

3275. लोकतंत्र तानाशाही की तुलना में अच्छा तथा लोकस्वराज की तुलना में बुरा समाधान माना जाता है। लोकतंत्र में लम्बे समय बाद अव्यवस्था निश्चित होती है और उसका समाधान होता है तानाशाही।

3276. मैं लोकस्वराज्य और तानाशाही के बीच किसी भी सीमा तक लोकस्वराज्य के पक्ष में जा सकता हूं। यही कारण है कि मैं गांधी, जयप्रकाश और अन्ना जी के समर्थन में खड़ा दिखता हूं।

3277. 'संसदीय लोकतंत्र' तानाशाही का एक अस्थायी पड़ाव मात्र है, समाधान या मंजिल नहीं। संसदीय लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र अथवा लोकस्वराज्य की दिशा में जाना चाहिए था, किन्तु व्यवस्थापकों ने स्वार्थवश संसदीय लोकतंत्र को ही मंजिल बताकर समाज को ठग लिया।

3278. जब तक लोकतंत्र का तंत्र, लोक नियंत्रित नहीं होगा तब तक

लोकतंत्र का वास्तविक उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। हमारी संवैधानिक व्यवस्था लोकतंत्र को लोक नियुक्त तक तो ले जाती है परन्तु लोक नियंत्रित नहीं कर पाती।

3279. यह मानव स्वभाव है कि वह ऊपर वाले से तो स्वतंत्रता चाहता है, किन्तु नीचे वालों को निर्णय की स्वतंत्रता नहीं देना चाहता। इसलिए ऊपर वाले और नीचे वाले के बीच एक व्यवस्था बनायी जाती है। सच्चाई तो यह है कि तानाशाही का विकल्प प्रजातंत्र है और प्रजातंत्र का विकल्प लोकस्वराज्य।

328 तानाशाही, लोकतंत्र, लोकस्वराज्य

3280. भारत में समस्याओं के समाधान के अब तक जो भी प्रयत्न हुए या हो रहे हैं वे सभी या तो समस्याओं को बढ़ाने वाले हैं अथवा समस्याओं पर से ध्यान हटाने वाले।

3281. लोकतंत्र में जनता अपने बनाये गये संविधान के अंतर्गत काम करने के लिए एक कस्टोडियन चुनती है, जिसे जनहित के किसी भी मामले में, किसी भी सीमा तक कानून बनाने तथा उसे कार्यान्वित करने का अधिकार होता है, जबकि लोकस्वराज्य पद्धति में जनता अपना एक ऐसा मैनेजर चुनती है, जिसे उतने ही अधिकार होते हैं, जितने जनता उसे समय-समय पर दे।

3282. लोकस्वराज्य प्रणाली में इकाई अपने हित की परिभाषा स्वयं तय करती है। यहां तक कि व्यक्ति के व्यक्तिगत हित में पूरी जनता भी उसकी सहमति के बिना कोई कटौती नहीं कर सकती। लोकतंत्र में लोक और तंत्र एक-दूसरे के साथ समन्वय करते हैं, जबकि लोकस्वराज्य में तंत्र की भूमिका नगण्य रहती है।

3283. लोकतंत्र में चुने हुए लोग सबकी चिन्ता करेंगे। लोकस्वराज्य

में सिर्फ अपनी चिन्ता तक करने की सीमा है, यदि दूसरी इकाई आपको अपने विषय में चिन्ता करने का अधिकार न दे।

3284. लोकतंत्र में चुनाव का बहुत महत्व है, क्योंकि चुने गये व्यक्ति और सामान्य नागरिक के बीच अधिकारों में भारी असमानता होती है, जबकि लोकस्वराज्य में चुनावों का बहुत कम महत्व है, क्योंकि अधिकारों का फर्क बहुत कम होता है।

3285. लोकस्वराज्य प्रणाली लागू होने के बाद, किसी कार्य के परिणाम से प्रभावित इकाई और कर्ता के बीच दूरी समाप्त हो जाने से कार्य की गुणवत्ता बहुत बढ़ जायेगी। यह दूरी शून्य या न्यूनतम होने से भ्रष्टाचार न्यूनतम हो जायेगा।

3286. महापुरुषों के वचन मार्गदर्शक होते हैं, प्रमाण नहीं। अन्तिम सत्य तो वही है, जो निष्कर्ष स्वयं द्वारा निकाला जाये। कभी विचारक के निष्कर्ष तथा महापुरुष के कहे वचनों के बीच भ्रम उत्पन्न हो, तो विचारक का कर्तव्य है कि ऐसे निष्कर्ष को विवादास्पद समझ कर, उस पर और गंभीर मंथन करे और तब भी यदि विचारक के अपने निष्कर्ष ही सत्य दिखे, तो महापुरुष के कथन की अपेक्षा अपने निष्कर्ष को ही सत्य मानना और उस पर आचरण करना चाहिए। मृत महापुरुषों के विचार बिना स्वयं समीक्षा किये कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए। महापुरुषों के वचन मार्गदर्शक होते हैं प्रमाण नहीं। अन्तिम सत्य तो वही है, जो स्वयं द्वारा निष्कर्ष निकाला जाये।

3287. भारत का हर राजनैतिक कार्यकर्ता स्वयं को मनुष्य समझता ही नहीं, सिर्फ नेता ही समझता है जिसका अर्थ होता है अन्य सभी मनुष्यों से श्रेष्ठ, समझदार तथा अन्य सभी मनुष्यों के विषय में उचित-अनुचित का निर्णय करने की योग्यता रखने वाला।

3288. भारत में संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर सहभागी लोकतंत्र की स्थापना होनी चाहिए।

3289. सामाजिक चरित्र-पतन ने राजनैतिक विचारधारा को प्रदूषित किया या राजनैतिक विचारधारा ने समाज का चरित्र पतन किया, यह बात अभी स्पष्ट नहीं है, लेकिन मेरा मानना है कि राजनैतिक विचारधारा ने अधिक प्रदूषण फैलाया है, इसलिए समाज परिवर्तन के सभी प्रयास तब तक निष्फल हैं, जब तक राजनैतिक प्रदूषण से समाज की सुरक्षा के उपाय न किया जा सके।

3290. भारत का वर्तमान लोकतांत्रिक स्वरूप इस प्रकार है -
संसद नियंत्रित संविधान, संविधान नियंत्रित संसद,
संसद नियंत्रित कानून, कानून नियंत्रित व्यक्ति।
इस स्वरूप को अब ऐसा परिवर्तित होना चाहिए -
समाज नियंत्रित संविधान, संविधान नियंत्रित संसद,
संसद नियंत्रित कानून, कानून नियंत्रित व्यक्ति।

3291. भारतीय राजनीति गंदी हो गई है, यह सच तो है, किन्तु राजनीति का शुद्धीकरण तब तक असम्भव है, जब तक राजनेताओं के अधिकारों में कटौती न हो।

329 सुराज स्वराज

3292. सुराज्य या सुशासन स्वराज्य का परिणाम होता है, आधार नहीं।

3293. प्रत्येक इकाई को इकाईगत निर्णय की अधिकतम स्वतन्त्रता को स्वराज्य कहते हैं। व्यक्ति को व्यक्तिगत, परिवार को पारिवारिक, गाँव को गाँव संबंधी, जिले को जिला संबंधी, प्रदेश को प्रदेश संबंधी, राष्ट्र को राष्ट्र संबंधी तथा समाज को समाज संबंधी निर्णय की स्वतंत्रता ही स्वराज्य होती है।

3294. सुशासन की अपेक्षा स्वशासन का पक्षधर होना अच्छा है, लेकिन स्वशासन और सुशासन के बीच कुशासन का पक्षधर होना नहीं।

3295. स्वराज्य की आवाज बहुत कर्णप्रिय होती है, हर व्यक्ति को सुख का अनुभव कराती है, किन्तु स्वराज्य की आवाज राजनेताओं के कलेजे में तीर की भांति चुभती है। विचारणीय प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों होता है? क्यों कोई आदमी किसी दूसरे पर उसकी इच्छा, सहमति या आवश्यकता के बिना अपने निर्णय या निष्कर्ष थोपना चाहता है? आज तक इस प्रश्न का उत्तर नहीं खोजा जा सका।

3296. राजनीति को अपनी सत्ता लिप्सा का माध्यम बनाने की शुरुआत नेहरू, पटेल, अम्बेडकर युग से हो गई। ये तीनों ही कभी विकेन्द्रीकरण के पक्षधर नहीं रहे। तीनों ने ही सुशासन की बात की है। पटेल ने स्वराज्य को सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों तरह से अस्वीकार किया और नेहरू जी ने सैद्धांतिक रूप से स्वराज्य की बात की, किन्तु व्यावहारिक रूप से हमेशा स्वराज्य के स्थान पर सुराज्य को तरजीह देते रहे। अम्बेडकर जी को न स्वराज्य से मतलब था, न सुराज्य से। वे तो जीवन भर अम्बेडकर राज्य को ही स्वराज्य भी समझते रहे और सुराज्य भी।

3297. स्वराज्य की परिभाषा गांधी जी की अपेक्षा विनोबा जी की अधिक स्पष्ट और विनोबा जी की अपेक्षा जयप्रकाश जी की और अधिक स्पष्ट थी, किन्तु स्वराज्य के लिए किये गये प्रयत्न विनोबा जी की अपेक्षा गांधी जी के या जयप्रकाश के अधिक स्पष्ट थे।

330 सत्ता का विकेन्द्रीकरण

3300. अधिकारों का अपनी मूल इकाई तक एकाएक नीचे आना अधिकारों का विकेन्द्रीकरण है। अधिकारों का धीरे-धीरे नीचे

आना सत्ता का विकेन्द्रीकरण है। अकेन्द्रित व्यवस्था में नीचे वाली इकाई ऊपर की इकाई का चयन भी करती है और अधिकार भी देती है। विकेन्द्रित व्यवस्था में नीचे वाली इकाई चयन करती है और ऊपर वाली इकाई नीचे वाली इकाई को अधिकार देती है। केन्द्रित व्यवस्था में नीचे की इकाई ऊपर की इकाई का चयन करती है, किन्तु ऊपर की इकाई नीचे की इकाई को अधिकार नहीं देती। आदर्श स्थिति में व्यवस्था अकेन्द्रित होती है। अकेन्द्रित व्यवस्था का स्पष्ट अर्थ है कि संविधान बनाने या संशोधित करने में प्रत्येक व्यक्ति की असीम भूमिका हो। वर्तमान विश्व के कुछ देशों में आंशिक रूप से ऐसी व्यवस्था है भी, किन्तु भारत जैसे अनेक देशों में संविधान संशोधन में समाज की कोई भूमिका न होकर तंत्र को ही संविधान संशोधन के असीम अधिकार प्राप्त हैं। इस तरह कुछ देशों में आंशिक अकेन्द्रित, कुछ देशों में विकेन्द्रित तथा भारत सहित कुछ देशों में आंशिक विकेन्द्रित व्यवस्था है।

3301. अधिकारों का विकेन्द्रीकरण अधिकांश समस्याओं का एकमात्र और सुविधाजनक समाधान है। गांधी जी, विनोबा जी तथा जयप्रकाश जी अकेन्द्रित व्यवस्था के पूरी तरह पक्षधर रहे। गांधी जी स्वराज्य के लिए निर्माण और संघर्ष में समन्वय के पक्षधर थे। विनोबा जी संघर्ष की अपेक्षा निर्माण पर ज्यादा जोर देते थे। जयप्रकाश जी निर्माण की अपेक्षा संघर्ष के पक्षधर थे, किन्तु उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक काम करने का अवसर नहीं मिला।

3302. किसी गुण्डे द्वारा अपराध में फंस जाने की अवस्था में हमारे नेताओं की आत्मा दया से भर जाती है, उसे छुड़ाने में थाने से कोर्ट तक मानवीय आधार पर बहुत मदद करते हैं, परन्तु किसी शरीफ

की मदद करने में कानून उनके आड़े आ जाता है। अधिकारों का केन्द्रीकरण ही राजनेताओं को गुण्डों, भविष्यवक्ताओं, धनपतियों या धूर्तों के समक्ष आत्म समर्पण करा देता है।

3303. वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में समाज में दो वर्ग है—(1) जो लोग आम नागरिकों को अक्षम, अयोग्य और अनपढ़ मानकर स्वयं को उनकी व्यवस्था का उत्तरदायी मानते हैं, उन्हें शासक या गुरु कहते हैं। (2) जो स्वयं को अक्षम, अयोग्य और अनपढ़ मानकर पहले वर्ग को अपनी व्यवस्था करने का उत्तरदायी मानते हैं, उन्हें शासित कहते हैं। प्रत्यक्ष रूप से गुरु और शासक का रूप भिन्न हैं, पर वास्तव में दोनों की कार्यप्रणाली एक ही है, कि आम नागरिकों में न तो कभी निर्णय करने की क्षमता बढ़े, न ही ऐसी इच्छाशक्ति।

3304. व्यक्ति के आचरण की मर्यादाएं शासन भी तय करता है और धार्मिक गुरु या संस्थाएं भी। किन्तु सत्ता या गुरुओं की मर्यादा, आचरण या अधिकारों की सीमाएं वे स्वयं ही तय कर सकते हैं, यह बिडम्बना है। धार्मिक गुरु राजनैतिक सत्ता प्रणाली से कम हानिकर है, क्योंकि धार्मिक गुरु स्वेच्छा से स्थापित होता है और कभी भी तोड़ा जा सकता है, जबकि राजनैतिक सत्ता को स्वीकार करना हमारी संवैधानिक मजबूरी है।

3305. स्वतंत्रता संघर्ष के बाद सुभाषचंद्र बोस अस्थाई तानाशाही के, सरदार पटेल सीमित मताधिकार के, नेहरू जी बालिग मताधिकार के और गांधी जी स्वशासन के पक्षधर थे। स्वतंत्रता के बाद गांधी जी कम से कम नियंत्रण चाहते थे और नेहरू जी अधिक नियंत्रण के पक्ष में थे। गांधी जी स्वराज्य के पक्षधर थे और नेहरू जी सुराज्य

के। गांधी हत्या के बाद नेहरू जी को अपनी नियंत्रण प्रणाली लागू करने में सुविधा हो गई। भारत की जनता को आश्वस्त किया गया कि उसको व्यक्तिगत स्वतंत्रता के स्थान पर सुराज्य प्राप्त होगा। भारत की जनता ने अपनी स्वतंत्रता पर मनमाने अंकुश स्वीकार किए, किन्तु व्यवस्था नहीं सुधरी। इस तरह हमारा स्वराज्य तो चला गया, परन्तु सुराज्य नहीं मिला। अब भी भारत के राजनैतिक दल सुराज्य का आश्वासन देते हैं, जो खोखला है। अतः "हमें सुराज्य नहीं स्वराज्य चाहिए" यह हमारा घोष वाक्य और घोषित लक्ष्य होना चाहिए।

331 इकाई

3310. प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता ही लोकस्वराज्य है। लोकस्वराज्य में सिर्फ व्यवस्था ही सम्भव है, अव्यवस्था नहीं। लोकस्वराज्य निम्नांकित पाँच आधारों पर कार्य करता है, जिनका क्रम यह है—(1) सत्ता का अकेन्द्रीकरण, (2) अपराध नियंत्रण की गारंटी, (3) आर्थिक असमानता में कमी, (4) श्रम-मूल्य वृद्धि, (5) समान नागरिक संहिता।

3311. किसी कार्य के परिणाम से प्रभावित व्यक्ति और कर्ता के बीच दूरी जितनी अधिक होगी, कार्य की गुणवत्ता उतनी ही घटती जायेगी। इस दूरी को न्यूनतम करना और प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता ही लोकस्वराज्य है।

3312. तीन इकाइयां अचल हैं, और तीन सचल। व्यक्ति, परिवार और गांव अचल हैं और जिला, प्रान्त और राष्ट्र सचल।

332 ग्राम स्वराज्य

3320. गांधी जी ने ग्राम स्वराज्य के दो लक्षण अनिवार्य बनाये थे—

(1) गांव के लोगों को गाँव संबंधी मामलों में निर्णय की पूरी स्वतंत्रता हो, (2) गांव आत्म निर्भर और स्वावलम्बी हो। पहला कार्य मौलिक तथा दूसरा पहले कार्य का परिणाम होता है। पहले कार्य को किये बिना दूसरा कार्य शुरू करना समाज को धोखा देना है। शासन के अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप से अधिकतम मुक्त हुए बिना ग्राम स्वराज्य आ ही नहीं सकता। शासन के हस्तक्षेप, दायित्व और अधिकारों के अधिक मात्रा में रहते हुए ग्राम स्वावलम्बन के प्रयास शासन की शक्ति को बढ़ने में सहायक होते हैं, घटाने में नहीं। इस संबंध में जयप्रकाश का मार्ग सही था, विनोबा का गलत। यदि विनोबा ने जयप्रकाश का साथ दे दिया होता, तो परिणाम भिन्न हो सकते थे।

3321. गांधी जी भारतीय संविधान में ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के अभाव से बहुत दुखी थे और कोई मार्ग तलाश रहे थे, लेकिन राजनेताओं ने गांधी को निराश किया।

3322. शासन से मुक्त हुए बिना न ग्राम स्वराज्य आ सकता है, न ही ग्राम स्वावलम्बन।

3323. हमें विकेन्द्रित दायित्व व्यवस्था बनानी चाहिए अर्थात् शासन के अधिकार, दायित्व तथा हस्तक्षेप न्यूनतम करके सभी दायित्व परिवार, ग्राम, जिला, प्रदेश को दे दिये जायें। सत्ता को समाज तक पहुंचाकर सत्ता के अधिकार, दायित्व, हस्तक्षेप, न्यूनतम कर दिये जायें। वर्तमान भारत में इसके ठीक विपरीत हो रहा है।

3324. यदि ग्राम स्वराज्य हो, तो रामराज्य अपने आप होगा, किन्तु यदि रामराज्य होगा, तो स्वराज्य की गारंटी नहीं होगी।

3325. पंचायती राज दो प्रकार का है—(1) लोकतंत्र में पंचायती राज,

(2) लोकस्वराज्य में पंचायती राज। हमें पंडे पुजारी वाली व्यवस्था का लोकतंत्र नहीं चाहिए। हमें चाहिए सीधा लोकस्वराज्य, जिसमें कोई बिचौलिया न हो।

3326. सही कहें तो पंचायत व्यवस्था न केवल शासन व्यवस्था के रूप में बल्कि यहां की जीवन-पद्धति के रूप में विकसित हुई थी। वैदिक काल में तो गाँव से लेकर राष्ट्र तक ही नहीं, अपितु समूचे विश्व भर की शासन व्यवस्था पंचायत प्रणाली पर आधारित थी। पंचायत की अवधारणा गाँव तक ही न सिमट कर गणराज्य तक चली गयी। वर्तमान समय में पंचायत प्रणाली गाँव से राष्ट्र तक समाप्त हो रही है।

3327. वैदिक साहित्य में वैदिक काल के समय तक तो राजा शब्द का प्रचलन ही नहीं हुआ था। समिति और सभा आदि शब्दों का ही प्रचलन दिखाई देता है। रामायण काल में पंचायत व्यवस्था भारतीय लोकतन्त्र की इकाई के रूप में सुविकसित थी। इसी के माध्यम से ही गांवों की स्वायत्तता, स्वावलम्बन एवं सत्ता का विकेन्द्रीकरण सम्भव बन पड़ता था। महाभारत में जिस संघ-राज्य का उल्लेख मिलता है उसमें गाँव से लेकर राष्ट्र तक की शासन व्यवस्था इसी पंचायत प्रणाली पर आधारित थी। थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ यह व्यवस्था कौटिल्य काल तक चलती आयी। आचार्य पाणिनि के समय में घर से लेकर गणराज्य तक का प्रशासनिक ढांचा पंचायती व्यवस्था पर ही आधारित था। उस समय पूरा गण और संघ आदि पंचायत के पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रचलित थे। बौद्धकाल में भी ग्रामसभा से लेकर गणराज्य की लोकतान्त्रिक व्यवस्था होने के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। अकेले लिच्छवी गणराज्य में 770 राज्य या गणराज्य होने का उल्लेख आता है। न सिर्फ प्रशासनिक, बल्कि

धार्मिक अनुष्ठानों में पंचायत प्रणाली ही व्यावहारिक मानी जाती थी। मौर्यकाल में शासन व्यवस्था का राष्ट्रीय स्वरूप राजतान्त्रिक होने पर भी स्थानीय शासन प्रबन्ध पंचायतों के माध्यम से ही किया जाता था। अंग्रेज शासकों ने ग्राम पंचायतों की इस प्राचीन परम्परा का ध्वंस कर हमारे देश के प्रति सर्वाधिक घातक कुकृत्य किया है।

3328. विनोबा जी ने कहा है कि "प्राचीन काल में देश भी आजाद था और गाँव भी आजाद थे। जब अरब और मुगल आए, तो देश गुलाम था, किन्तु गाँव आजाद थे। अंग्रेजों के समय में देश भी गुलाम था और गाँव भी गुलाम थे। अंग्रेजों के जाने के बाद देश तो आजाद हो गया, लेकिन गाँव गुलाम ही रह गये"।

3329. आज पंचायत इसलिए प्राणहीन है, क्योंकि उनके पास कुछ है ही नहीं। सरकारी अनुदानों की राहत पर चलने वाली इन पंचायतों से न तो लोक शक्ति निकल सकती है और न लोक योजनाएं। भारतीय संविधान के 73 वें संशोधन विधेयक में गांवों को स्वयं पूर्ण बनाने की लिखी गई बात, अब विस्मृत कर दी गयी है।

3330. जब पंचायत की अपनी योजना नहीं, अपना राजस्व नहीं, फिर स्वशासन कैसा? राज्य एवं केन्द्र सरकारों की भिक्षा की ओर टकटकी लगाकर देखती रहने वाली पंचायतों में तेजस्विता एवं लोक योजनाएं नहीं पनप सकतीं।

3331. आर्थिक लोकतंत्र के साथ-साथ सत्ता के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की दृष्टि से भी पंचायतें सबसे अधिक प्रभावशाली एवं शक्तिशाली इकाई नहीं बन सकीं, जिन पर राज्य और केन्द्र निर्भर करें। इस के विपरीत अभी तो पंचायतें लोकतांत्रिक सत्ता वृत के बाहर एक अत्यन्त कृत्रिम एवं ऐच्छिक संस्था बनी हुई हैं।

3332. हर देश की अपनी परम्परा होती है। हर संस्कृति का अपना स्वर होता है। भारत की संस्कृति का स्वर समन्वय है। यही कारण है कि पंचायत प्रणाली में भी पंच परमेश्वर यानि कि आम राय द्वारा निर्णय प्रक्रिया पर जोर दिया गया है। इस सम्पूर्ण प्रणाली में राजनेताओं या सरकार की कोई भूमिका या जानकारी तक का प्रावधान नहीं है।

3333. पंचायतीराज व्यवस्था सत्ता का विकेन्द्रीकरण है, अधिकारों का नहीं। यह समस्याओं के समाधान की ओर एक कदम है, परन्तु समाधान नहीं, क्योंकि वर्तमान पंचायतों को सिर्फ प्रशासनिक अधिकार ही दिये गये हैं, कोई विधायी अधिकार नहीं।

3334. आदर्श ग्राम और स्वराज्य ग्राम पृथक परिणाम वाले प्रयास हैं। स्वराज्य ग्राम, आदर्श ग्राम की ओर बढ़ने का एक आवश्यक कदम है। किन्तु बिना ग्राम स्वराज्य के आदर्श ग्राम अर्थात् ग्राम स्वावलम्बन स्वरोजगार कुरीति निवारण आदि के प्रयास, न सिर्फ मृगतृष्णा है, बल्कि ग्राम स्वराज्य में बाधक भी है। ग्राम स्वराज्य का अर्थ गांवों को निर्णय करने की स्वतंत्रता से था, न कि पंचायत की स्वतंत्रता से।

3335. यदि ग्राम सभाएं सक्रिय होकर वास्तव में सशक्त हो जायें, तो लोकतंत्र 'लोक नियंत्रित' हो सकता है। इस व्यवस्था को हम लोकस्वराज्य भी कह सकते हैं तथा यह नयी समाज व्यवस्था का भी रूप ले सकती है।

3336. ग्राम स्वराज्य की स्पष्ट अवधारणा है कि सरपंच के अधिकार गाँव की अमानत है, न कि उसका स्व-अर्जित अधिकार। सरपंच को कार्यपालिक अधिकार मात्र होते हैं, विधायी अधिकार नहीं।

विधायी अधिकार ग्रामसभा के होते हैं। हमारे तंत्र ने हमारी कमजोरियों का लाभ उठाकर स्वयंभू मालिक की भूमिका अपना ली, जो गलत है।

3337. कोई भी राजनीतिज्ञ सब समझते हुए भी विकेन्द्रीकरण की लाइन पर नहीं चलना चाहता। गांधी जी पंचायती राज व्यवस्था चाहते थे। ये नेता लोग ऐसा कभी नहीं चाहते, भले ही ये अपने नाम के सामने गांधी ही क्यों न लिखते हैं।

3338. सरपंच बेचारा सरकारी अफसरों का गुलाम हो गया है, और सरपंच गाँव के लोगों को गुलाम मानता है। सरपंच को गुलामी से मुक्ति चाहिए। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वह गाँव के लोगों को गुलाम बना ले।

3339. हम जिस प्रस्तावित संविधान की चर्चा कर रहे हैं, उसके अनुसार प्रत्येक सभा अपना अधिकार तय करेगी। उक्त सभा अपनी कार्य प्रणाली तय करने में पूर्ण स्वतंत्र होगी, किन्तु उसके अधिकार नीचे वाली सभा निश्चित करेगी।

334 ग्राम संसद

3340. ग्राम संसद का अर्थ प्रत्येक ग्रामसभा को अपना आंतरिक संविधान बनाने और क्रियान्वित करने की स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय संविधान निर्माण में सहभागिता का होना है।

335 व्यवस्था

3350. भारत की वर्तमान व्यवस्था पर बुद्धिजीवियों, पूंजीपतियों तथा धूर्तों का एक ऐसा त्रिगुट चक्र रूप में स्थापित है, जिसकी सारी योजनाएं श्रमजीवियों, धनहीनों तथा शरीफों के शोषण में सहायक होती है अथवा उन्हें धोखे में रखती है।

3351. यदि व्यवस्था दोषपूर्ण है तो चरित्र निर्माण तथा समाज निर्माण का लक्ष्य कभी आगे नहीं बढ़ सकता। व्यवस्था का समाज और चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। अब तक इस सत्य को छोड़कर चलने का प्रयास किया गया है।

3352. वर्तमान व्यवस्था पूरी तरह शरीफों, गरीबों तथा श्रमजीवियों के शोषण के उद्देश्य से अपराधियों, पूंजीपतियों तथा बुद्धिजीवियों का योजनाबद्ध षड्यंत्र है।

3353. जब कोई व्यक्ति व्यवस्था का निर्माता और संचालक साथ-साथ होता है, उसे तानाशाही कहते हैं। जब अलग-अलग व्यक्ति व्यवस्था के निर्माता और संचालक होते हैं, उसे लोकतंत्र कहते हैं। किन्तु जब किसी व्यवस्था से प्रभावित सभी लोग मिलकर व्यवस्था बनाते हैं और उस व्यवस्था के अनुसार सब लोग काम करते हैं, उस व्यवस्था को लोकस्वराज्य कहते हैं।

336 ग्रामसभा

3360. वर्तमान में प्रत्येक बालिग को मिलाकर ग्रामसभा बनी हुई है, जो अव्यावहारिक है। ग्रामसभा में प्रत्येक परिवार का एक सदस्य होना व्यावहारिक है और किसी मतदान की स्थिति में उसकी शक्ति परिवार की सदस्य संख्या के आधार पर हो।

3361. वर्तमान भारत में संविधान के अनुसार ग्रामसभा व्यवस्था की पहली इकाई है और ग्राम पंचायत दूसरी। किंतु पच्चीस वर्ष के बाद भी ग्राम सभाओं को एक भी विधायी अधिकार नहीं दिए गए। कुछ कार्यपालिक अधिकार दिए गए, जिनमें ग्राम पंचायत का भी हस्तक्षेप डाल दिया गया। भारत में ग्राम सभाएं सिर्फ मुखौटा मात्र हैं। कांग्रेस पार्टी की तुलना में भाजपा शासन में ग्राम सभाएं अधिक कमजोर हुई हैं।

3362. लोकस्वराज्य प्रणाली का प्रारम्भ, सम्प्रभुता संपन्न परिवार सभा के द्वारा होता है और उसके ऊपर ग्रामसभा होनी चाहिए, जिसकी दूर-दूर तक कोई संभावना दिखाई नहीं देती।

3363. ग्राम पंचायतें या ग्राम सभाएं अपने अधिकारों का अतिक्रमण कर देती हैं इसलिए उनके सारे अधिकार छीन लें, यह बिल्कुल उचित नहीं है। ग्राम सभाओं के उन्हीं अधिकारों पर नियंत्रण लग सकता है, जिनमें ग्रामसभा ने अतिक्रमण किया हो।

337 ग्रामसभा सशक्तिकरण

3370. ग्रामसभा सशक्तिकरण नई समाज रचना का आधार बन सकती है और नई समाज रचना से शराफत मजबूत होने लग जायेगी। भारत में व्याप्त अनेक समस्याओं के समाधान की शुरूआत ग्रामसभा सशक्तिकरण से ही सम्भव है। ग्रामसभा को मजबूत करना नई समाज रचना का सफल प्रयोग है। ग्रामसभा भी व्यक्ति के व्यक्तिगत और परिवार के परिवारिक मामलों में बिना उसकी सहमति के कोई कानून नहीं बना सकती।

3371. ग्रामसभा सशक्तिकरण के लिए एक सौ तीस गाँव रामानुजगंज विकास खंड के पास के चुनकर उनमें पाँच आधारों पर नयी समाज रचना का काम प्रारम्भ किया गया। ये पाँच आधार हैं—(1) लोक और तंत्र के बीच की दूरी कम करना अर्थात् संविधान में लिखे गये ग्राम सभाओं के 29 अधिकार ग्राम सभाओं को मिलना, (2) अहिंसक समाज रचना, (3) वर्ग-विद्वेष को वर्ग-समन्वय में बदलना, (4) भ्रष्टाचार मुक्त ग्राम पंचायत, (5) अपने स्वयं की भूमि के उत्पादन और उपयोग की वस्तुओं को कर मुक्त कराने का शासन से निवेदन। यह क्षेत्र भारत में अकेला वह स्थान है,

जहां ग्रामसभा सशक्तिकरण के अहिंसक गांधीवादी तरीके से नक्सलवाद लगातार पीछे हटने को मजबूर हुआ।

3372. लोकस्वराज्य के लिए ग्रामसभा सशक्तिकरण उचित मार्ग है, जिसका अर्थ है ग्राम संसद की स्थापना।

3373. ग्रामसभा सशक्तिकरण अभियान का आशय यह है कि चुना हुआ सरपंच ग्रामसभा से ऊपर न होकर नीचे होगा। लोकतंत्र में लोक मालिक और तंत्र मैनेजर होता है। ग्रामसभा लोक है और सरपंच तंत्र। ग्राम सभा के ऊपर सरपंच को लादना क्या स्वराज्य की भावना के विपरीत नहीं होगा?

3374. ग्राम संसद अभियान समस्याओं का समाधान नहीं है, बल्कि वर्तमान अव्यवस्था से एक समझौता मात्र है। आदर्श स्थिति यह है कि संविधान निर्माण और संशोधन में लोक की ही एकमात्र भूमिका होनी चाहिए, किन्तु ग्राम संसद अभियान इस मामूली से प्रयत्न के आधार पर जन-जागरण कर रहा है कि संविधान संशोधन के अंतिम अधिकार तंत्र तक सीमित न हो और उसमें लोक की भी कोई भूमिका हो।

3375. जब परिवार व गाँव को संवैधानिक अधिकार दिये जायेंगे तथा संविधान संशोधन के संसद के असीम अधिकारों में कटौती की जाएगी, तभी सत्ता का लोकतांत्रिक कदम कहा जा सकता है।

3376. ग्रामसभा कोई चुनी हुई प्रतिनिधि सभा न होकर स्वाभाविक रूप से बनती है, जिसमें गाँव का प्रत्येक मतदाता स्वाभाविक रूप से सदस्य होता है। ग्रामसभा की सदस्यता न कभी प्रारम्भ होती है और न कभी मृत्यु पूर्व समाप्त। इस तरह कभी ग्रामसभा समाप्त नहीं की जा सकती है।

3377. ग्राम पंचायत को ग्रामसभा नियुक्त करती है, किन्तु उस पर ग्रामसभा का नियंत्रण नहीं होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रामसभा को कुछ प्रशासनिक अधिकार दिये गये हैं, किन्तु कोई भी विधायी अधिकार नहीं दिया गया। ग्राम सभाओं को कार्यपालिक अधिकार के साथ-साथ यदि विधायी अधिकार भी दे दिये जायें, अर्थात् ग्रामसभा अपने गाँव में वे सारे नियम बना सकती है, लागू करा सकती है, बदल सकती है, संशोधन कर सकती है, जो उस गाँव तक सीमित हो, तो भारत में वास्तविक लोकस्वराज्य की शुरूआत हो सकती है।

3378. ग्राम स्वराज्य का अर्थ यह है कि किसी ग्रामसभा को अपने आंतरिक मामलों में निर्णय लेने तथा क्रियान्वित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए।

3379. ग्राम संसद का संक्षिप्त अर्थ होता है, प्रत्येक ग्राम/वार्ड सभा को अपना आंतरिक संविधान बनाने और कार्यांवित करने की स्वतंत्रता तथा राष्ट्रीय संविधान संशोधन में महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। यही ग्राम संसद अभियान का एकमात्र लक्ष्य है।

3380. किसानों के पसीने और क्रांतिकारियों के खून की बदौलत, आज़ादी की देवी अंग्रेजों की कैद से जैसे ही मुक्त हुई, हमारे नेताओं ने उसे संसद में बंद कर दिया, जबकि करोड़ो लोग अपने घरों पर उसका स्वागत करने के लिए आंखें गड़ाए खड़े थे। वे आज तक उससे महरूम हैं।

3381. गांधी, तिलक और सुभाष सरीखे स्वतंत्रता सेनानियों ने अंग्रेजों की कैद से आज़ादी की देवी को मुक्त तो करा दिया, लेकिन वे संसद में आकर उलझ गई। गांधी उसे गांव तक लाते, परिवारों तक

लाते, उससे पहले ही उनकी हत्या कर दी गई। जेपी ने कोशिश की, लेकिन वे सफल न हो सके, अन्ना के पीछे खड़े लोगों की नीयत में खोट निकला। जाहिर है कि जब तक हम सब स्वयं भगीरथ बन काम नहीं करेंगे, तब तक व्यक्ति, परिवार और गाँव को लोकतंत्र की धूरी बनाना मुश्किल होगा।

3382. गुलामी की कोख से पैदा हुआ ये लोकतंत्र साम्राज्यवाद की मानसिकता से निकलने के लिए छटपटा रहा है। वक्त आ गया है, उस आदर्श को छूने का, जिसमें हर व्यक्ति का वजूद तय हो।

3383. ये भी निष्कर्ष निकाला गया कि "कोई सरकार कितनी भी अच्छी क्यों न हो, मगर अपनी सरकार से अच्छी नहीं हो सकती"। इसलिए सवाल अच्छी सरकार का है ही नहीं, अपनी सरकार का है।

338 खाप पंचायत

3384. स्पष्ट है कि अपराधों को रोकने में समाज की भूमिका शासन से भी ज्यादा कारगर होती है। जब से सरकार ने समाज की भूमिका को नकार कर अपना हस्तक्षेप बढ़ाया है, तब से अपराधों की स्थिति ज्यादा से ज्यादा खराब ही हुई हैं। समाज को अपराधियों का बहिष्कार करने का पूरा अधिकार होना चाहिए, जो अभी प्रतिबंधित है।

3385. आठ सौ वर्षों की गुलामी के कारण खाप पंचायतों में भी कुछ विकृतियां स्वाभाविक है, जिन्हें या तो जन-जागरण के द्वारा ठीक किया जाना चाहिए या विशेष परिस्थितियों में कानूनी हस्तक्षेप द्वारा।

3386. सरकार और समाज की व्यवस्थायों को एक-दूसरे का सहयोगी होना चाहिए, न की छीना-झपटी वाला। खाप पंचायत व्यवस्था

की भूमिका, समाज की सहायक अधिक और समस्या विस्तार में कम रही। जस्टिस वर्मा आयोग ने अपनी टिप्पणी में इस तथ्य का ध्यान नहीं रखा। आयोग की अनुशंसाओं से स्पष्ट आभास होता है कि आयोग राजनैतिक व्यवस्था के पक्ष में ऐसी छीना-झपटी में सहायक बन रहा है, जो ठीक नहीं है।

339 पंचायती राज

3390. पंचायती राज सत्ता का विकेन्द्रीकरण है और ग्राम स्वराज्य अकेन्द्रीकरण।

3391. गांधी जी तथा जयप्रकाश जी ग्राम स्वराज्य का अर्थ समझते थे और सक्रिय भी थे, किंतु विनोबा जी समझते तो थे, परंतु सक्रिय नहीं थे। ग्राम स्वराज्य का अर्थ होता है स्वराज्य ग्राम। आदर्श ग्राम, स्वराज्य का परिणाम होता है कारण नहीं। विनोबा जी ने आदर्श ग्राम को ही स्वराज्य ग्राम समझने की भूल की। गांधी जी के मरते ही नेताओं ने वर्धा में बैठकर विनोबा जी को आदर्श ग्राम समझाया। विनोबा जी पूरी ईमानदारी और मेहनत से नेताओं का काम करने लगे। नेता लोगों ने सारा देश मनमाना लूटा, समाज को गुलाम बनाया और विनोबा जी समाज निर्माण करते रहे। भूदान आंदोलन का ग्राम स्वराज्य से कोई सम्बन्ध नहीं था।

3392. गांधी जी ने शासन मुक्ति तथा शोषण मुक्ति के लिए तीन प्राथमिकताएं बताई थी—(1) गाँव को अपने गाँव सम्बन्धी निर्णय की अधिकतम स्वतंत्रता। (2) ग्रामवासियों को ऐसी स्वतंत्रता के सदुपयोग का प्रशिक्षण। (3) समाज में शारीरिक श्रम के महत्व और सम्मान का अधिकतम विकास। स्वतंत्रता से अब तक भारत तीनों ही दिशाओं में उल्टा चल रहा है।

340 पूंजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद और नक्सलवाद

3400. दुनिया के अलग-अलग देशों में पूंजीवाद तथा लोकतंत्र, साम्यवाद तथा तानाशाही, धर्म तथा तानाशाही एक साथ जुड़कर काम करते हैं। लोकतंत्र की अपेक्षा तानाशाही अधिक सफल किन्तु अमानवीय व्यवस्था है। लोकतंत्र तथा पूंजीवाद असफल किन्तु मानवीय व्यवस्था मानी जाती है।

3401. भारत के सभी वामपंथी बिजली उत्पादन वृद्धि का पूरी ताकत से विरोध करते हैं। बिजली उत्पादन वृद्धि का डीजल, पेट्रोल खपत पर विपरीत प्रभाव होता है और तेल उत्पादक के हितों को नुकसान होता है।

3402. 'समाजवाद' राजनैतिक रूप से लोकतंत्र और आर्थिक रूप से तानाशाही का मिला-जुला रूप है। समाजवाद का वास्तविक अर्थ 'व्यवस्थाओं पर समाज की प्रभुता' से होता है। समाजवाद ही लोकस्वराज्य है। चालाक लोगों ने समाजवाद शब्द का दुरूपयोग किया। यह भी हो सकता है कि साम्यवाद की सफलता की तेज गति से बचने के लिए समाजवाद शब्द का उपयोग किया गया हो।

340 पूंजीवाद और लोकतंत्र

3403. पूंजीवाद और लोकतंत्र की संयुक्त व्यवस्था भले ही साम्यवाद और तानाशाही की संयुक्त व्यवस्था की तुलना में सर्वस्वीकृत दिखने लगी हो, किन्तु यह आदर्श व्यवस्था नहीं हो सकती।

341 पूंजीवाद और साम्यवाद

3410. साम्यवादी पूंजीवाद को और पूंजीवादी साम्यवाद को गाली देते रहते हैं, उद्देश्य दोनों का एक ही है। साम्यवाद और पूंजीवाद के

बीच तुलना करें, तो दोनों ही आदर्श नहीं हैं, किन्तु पूंजीवाद की अपेक्षा साम्यवाद अधिक खतरनाक है। जिस इकाई के पास सेना, पुलिस, न्याय सरीखे शक्तिशाली हथियार हो, उसे ही सारे वित्तीय अधिकार देना न्यायसंगत नहीं।

3411. साम्यवादी निजीकरण के सदा ही खिलाफ रहे हैं तथा अन्य राजनैतिक दल भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निजीकरण के विरुद्ध ही रहते हैं।

3412. पूंजीवाद एक गुलाम बनाने वाली व्यवस्था है, जिसमें धन-सम्पत्ति किसी भी मात्रा में इस सीमा तक इकट्ठी हो सकती है कि वह राज्य सत्ता तक को दबा दे और पूंजीवाद की अपेक्षा समाजवाद या साम्यवाद को भी अपने नियंत्रण में कर ले। दुनिया और विशेषकर भारत में भी आर्थिक और लोकतांत्रिक मामले में पूंजीवाद एकमात्र सफल व्यवस्था के रूप में आगे बढ़ रहा है। उसे कोई चुनौती नहीं है।

3413. पूंजीवाद भले ही इस्लाम और साम्यवाद के समान हिंसा का समर्थक नहीं होने से हमारा शत्रु घोषित न हो, किन्तु वह हमारा प्रतिद्वंदी तो है ही, यह बात हमें कभी नहीं भूलनी चाहिए।

3414. पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में साम्यवादी अर्थव्यवस्था की अपेक्षा, अमीर हवाई जहाज की गति से आगे बढ़ता है और गरीब चींटी की चाल से। साम्यवादी अर्थनीति में राष्ट्र भी आर्थिक दृष्टि से पिछड़ता है और समाज भी, किन्तु आर्थिक विषमता बहुत तेजी से बढ़ती है।

3415. खतरा दिखता है कि कहीं भारत फिर से पूंजीवाद की उसी दिशा में न चला जाए, जहां स्वतंत्रता के पूर्व था, सन इक्यान्नवे के बाद से उधर ही बढ़ रहा है। यदि पूंजीवाद का प्रभाव एक सीमा से अधिक

बढ़ा तो कहीं नक्सलवाद रूपी अतिवादी साम्यवाद की ओर देश फिर न बढ़ चले।

342 वामपंथ और साम्यवाद

3420. साम्यवाद में राज्य सर्वाधिक शक्ति सम्पन्न होता है तथा व्यक्ति, धर्म और समाज गौण।

3421. वामपंथ एकमात्र ऐसा राजनैतिक व्यक्ति समूह है, जिसमें सिर्फ बुद्धिजीवी ही टिक पाता है, भावना प्रधान व्यक्ति रह ही नहीं सकता। वामपंथ की प्रत्येक नीति दीर्घकालिक तथा सुविचारित होती है। इनका एकमात्र लक्ष्य होता है राजनैतिक सत्ता प्राप्त करना।

3422. वामपंथ में व्यक्तिगत कुछ होता ही नहीं। जो कुछ भी होता है, वह सब सामूहिक ही होता है। इसलिए कोई भी वामपंथी व्यक्तिगत आचरण में न कभी भ्रष्ट होता है, न ईमानदार। क्योंकि उसका आचरण कभी व्यक्तिगत होता ही नहीं। वामपंथ ने व्यक्तिगत जीवन में वाम मार्ग को सफलता का प्रमुख साधन माना है।

3423. सत्य को असत्य और असत्य को सत्य के समान स्थापित करने की जो क्षमता और कला वामपंथियों के पास है, वह अन्य किसी के पास नहीं। अब वामपंथी अपनी राह छोड़कर सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहना शुरू कर दे, तो उनकी असफलता तो निश्चित है ही। वर्तमान दुनिया में वामपंथ की कमजोरी का यह मुख्य कारण है।

3424. अब वह जमाना गया, जब वामपंथियों को समाजवाद और मानवाधिकार के नाम पर कुछ भी लिखने और करने की छूट थी। अब भारत में भी साम्यवाद राजनैतिक चर्चा से करीब-करीब बाहर हो चुका है।

3425. वामपंथ अकेला ऐसा मार्ग है, जहां आर्थिक उच्छृंखलता को छोड़कर अन्य किसी भी प्रकार की उच्छृंखलता की पूरी छूट है।

3426. नेहरू जी ने घोषित साम्यवाद और अघोषित साम्यवाद जैसे दो गुट बनाकर अघोषित साम्यवादियों को अपने साथ मिला लिया। वर्तमान समय में खतरा घोषित साम्यवादियों से कम और अघोषित साम्यवादियों से अधिक है।

342 अव्यवस्था

3427. अव्यवस्था और असंतोष एक-दूसरे के पूरक होते हैं। न्याय की अधिकाधिक मांग करने से अव्यवस्था पैदा होती है और अव्यवस्था से समाज में असंतोष बढ़ता है। इसलिए वामपंथी हमेशा न्याय की अधिकाधिक मांग करते रहते हैं।

3428. साम्यवाद में कुव्यवस्था होती है और समाजवाद में अव्यवस्था।

343 इस्लाम और साम्यवाद

3430. हिंसा की उपयोगिता को इस्लाम के बाद साम्यवाद ने ठीक से समझा। हिंसा और द्वेष की बैशाखी पर सवार होकर साम्यवाद भी बहुत फला-फूला। साम्यवाद में कोई भी व्यक्ति शान्तिप्रिय हो ही नहीं सकता, वह या तो उग्रवादी होगा या आतंकवादी।

3431. साम्यवाद को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए इस्लाम के कंधे का सहारा लेना ही स्पष्ट करता है कि वह अंतिम चरण में है। साम्यवाद के समापन के बाद संगठित इस्लाम दुनिया में शान्ति के विरुद्ध सबसे बड़ा खतरा है।

3432. पूरी दुनिया में साम्यवादी सर्वाधिक चालाक होते हैं और मुसलमान या संघ के लोग सर्वाधिक भावना प्रधान।

3433. सारी दुनिया अब तक साम्यवादी खतरे से निपटने में लगी थी। इसलिए इस्लाम का एकतरफा विस्तार होता रहा। अब साम्यवाद के समापन की शुरूआत भारत से हो चुकी है। इसलिए अब दुनिया की पहली प्राथमिकता इस्लामिक आतंकवाद को समाप्त करने की है, भले ही उसके लिए अनैतिक एवं अमानवीय तरीकों का उपयोग क्यों न करना पड़े। जल्दी ही दुनिया इस दिशा में चल पड़ेगी।

3434. भारत में धार्मिक इस्लाम और कट्टरवादी इस्लाम के बीच बहुत अन्तर किया जा रहा है। नरेन्द्र मोदी के बाद धार्मिक मुसलमानों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ रही है।

3435. साम्यवाद एक खतरनाक विचारधारा है और उसका समापन राजनैतिक दृष्टि से भी उचित है तथा सामाजिक दृष्टि से भी। साम्यवाद अपनी अंतिम सांस गिन रहा है और कट्टरपंथी इस्लाम भी चौराहे पर खड़ा है।

3436. मार्क्सवादी इस्लाम के समर्थन के लिए पूरे विश्व में विख्यात हैं, भारत में तो विख्यात के साथ-साथ कुख्यात भी हैं।

3437. जिस तरह साम्यवाद अपने आप समापन की ओर गया, इस्लाम अपने आप कट्टरवाद को छोड़ेगा या जायेगा। उसी तरह भारत की न्यायपालिका तथा संगठन प्रिय हिन्दुत्व को भी बदलना ही होगा।

3438. मरता हुआ भारत का साम्यवाद, संगठित इस्लाम को अपना संरक्षक समझकर उसके साथ मजबूती से खड़ा हुआ है। इन दोनों का तालमेल पूरा प्रयत्न कर रहा है कि येन-केन-प्रकारेण अन्य समुदायों को विभाजित करके, उन्हें टुकड़ों में बांट दिया जाए। वे अन्य समुदायों के बीच सवर्ण-अवर्ण, हिंदू-ईसाई-सिक्ख आदि के नाम पर मतभेद पैदा करके विभाजन के लिए दिन-रात सक्रिय रहते हैं।

3439. साम्यवाद और इस्लाम व्यक्ति के मूल अधिकारों को ही नहीं मानता। साम्यवाद और इस्लाम अपने विचारों में या तो संशोधन करें अथवा समाप्त हो जायें, तभी कोई सर्वस्वीकृत विश्व व्यवस्था बन सकती है।

3440. साम्यवाद को दुनिया की सबसे अधिक खतरनाक विचारधारा के रूप में मैं मानता रहा हूं। मैने कई जगह लिखा भी है कि दुनिया में हिन्दुत्व वैचारिक धरातल पर ब्राह्मण प्रवृत्ति का माना जाता है, तो इस्लाम और संघ परिवार क्षत्रिय प्रवृत्ति का। इसाईयत वैश्य प्रवृत्ति और वामपंथ अर्थात् साम्यवाद को शूद्र प्रवृत्ति का मानना चाहिए।

3441. मेरे विचार से मोदी जी को साम्यवाद मुक्त भारत का नारा देना चाहिए था। यद्यपि पूरी दुनिया में साम्यवाद कमजोर हो रहा है, किन्तु भारत में साम्यवाद कट्टरपंथी मुसलमानों के कंधे पर बन्दूक रखकर अपना अस्तित्व बचाए हुए है।

3442. सावरकरवाद, इस्लाम और साम्यवाद की कार्य प्रणाली में सिर्फ एक ही फर्क है कि इस्लाम भारत में अल्पमत में होने के कारण छिपकर गुप्त योजनाओं पर काम करता है, तो सावरकरवाद बहुमत के घमंड में खुलेआम।

3443. साम्यवाद ने तो इस्लाम से भी आगे जाकर हिंसा का पक्ष लिया। साम्यवाद ने संपूर्ण विश्व में जिस बेशर्मी से वर्ग-संघर्ष का नारा दिया, वैसी योजना तो इस्लाम भी नहीं दे सका। पूंजीवाद बनाम सर्वहारा का वर्ग-निर्माण करके वर्ग-संघर्ष का इसका नारा चल निकला और साम्यवाद का शेर दहाड़ता हुआ दुनिया की स्थापित व्यवस्था को रौंदता चला गया। साम्यवाद के विस्तार की गति इस्लाम से भी अधिक तेज थी। साम्यवाद का विस्तार इतना तेज

था कि अहिंसक गांधीवादी संस्थाएं भी पूरी तरह साम्यवाद के प्रभाव में आ गयीं। साम्यवादियों की सर्वोदय में इस सीमा तक घुसपैठ हुई कि सर्वोदय ने ग्राम स्वराज्य का अर्थ ही बदल दिया और स्वराज्य की जगह सुराज्य की माला जपने लगे।

344 माओवाद साम्यवाद

3444. साम्यवाद खुलकर वर्ग-संघर्ष का प्रयत्न करता है, समाजवाद अप्रत्यक्ष रूप से तथा पूंजीवाद आंशिक रूप से वर्ग-संघर्ष में सक्रिय रहता है। साम्यवाद हमेशा ही वर्ग-संघर्ष को विस्तार देता है। वर्ग-संघर्ष ही उसका मुख्य आधार है। साम्यवाद के पतन के बाद भी जब तक वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष से मुक्ति नहीं मिल जाती तब तक साम्यवाद का खतरा बना ही रहेगा। भारत की राजनीति अब भी वर्ग-संघर्ष का कोई अच्छा समाधान नहीं खोज पायी है।

3445. यदि हम इसाइयों मुसलमानों तथा साम्यवादियों के बीच तुलना करें, तो साम्यवादी सबसे अधिक खतरनाक होते हैं तो इसाई सबसे कम। साम्यवादी लगभग पूरी तरह भावना शून्य तथा बुद्धि प्रधान होते हैं तो मुसलमान पूरी तरह भावना प्रधान।

3446. हर साम्यवादी व्यक्तिगत आधार पर भी चालाक होता है जबकि मुसलमान स्वयं चालाक नहीं होता, हर साम्यवादी संचालक होता है और आमतौर पर मुसलमान संचालित।

3447. साम्यवादी, भेद का सहारा लेकर अपना अधिक विस्तार करते हैं तो मुसलमान सिर्फ दंड के बल पर। इसाई साम, दाम का प्रयोग करते हैं, दंड का नहीं करते। इसलिए हम उन्हें कम खतरनाक मानते हैं। हिन्दू चारों का परिस्थितिनुसार उपयोग करता है।

3448. साम्यवाद और लोकतंत्र के विवाद में लोकतंत्र इतना सशक्त नहीं

था कि वह विश्व समुदाय का प्रतिनिधित्व कर सके। साम्यवाद के पतन के बाद लोकतंत्र में शक्ति आई, किन्तु इराक युद्ध में अमेरिका लीबिया के जन विद्रोह की सहायता करने में भारत तटस्थ नहीं रह सका, वह कर्नल की तरफ झुका। लीबिया में जो काम भारत को करना था, वह अमेरिका ने किया। क्यों नहीं भारत जन विद्रोह की सहायता में विश्व समुदाय के साथ खड़ा हुआ। अमेरिका जितना खुलकर लोकतंत्र के साथ खड़ा हुआ उतना भारत नहीं हो सका।

3449. साम्यवादी व्यवस्था में भीड़ को ही सत्ता का आधार बनाया गया, इसने धन और बुद्धि को पूरी तरह अमान्य कर दिया। इसने भीड़तंत्र को शक्ति से समझौता करने की सलाह दी। साम्यवादियों ने धर्म और समाज को पूरी तरह अस्वीकार कर दिया। जब उनकी नजर में न धर्म का कोई अस्तित्व है, न समाज व्यवस्था का तो उनकी कोई प्रतिद्वंदिता किसी एक धर्म से न होकर अन्य सभी धर्मों के अस्तित्व से ही हो गई।

3450. साम्यवाद ने समाज व्यवस्था तथा परिवार व्यवस्था को तोड़ने की भरसक कोशिश की। इस कोशिश में उसने धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, उत्पादक, उपभोक्ता के सात माध्यमों का अप्रत्यक्ष उपयोग किया और आर्थिक असमानता को अप्रत्यक्ष आधार बनाया।

3451. साम्यवाद पूरी दुनिया में आज तक सर्वाधिक खतरनाक विचारधारा मानी जाती है। इनका लोकतंत्र से पूरा-पूरा छत्तीस का संबंध है। ये तानाशाही विचारों के पोषक हैं, सर्वाधिक चालाक हैं, लोकतंत्र को अच्छी तरह समझते हैं, लोकतंत्र को किस तरह परास्त किया जा सकता है, यह भी खूब जानते हैं। प्रारम्भ से ही ये भारत में

अपनी योजना में सफल रहे। लोकतंत्र को लोकतांत्रिक तरीके से असफल करने में सर्वाधिक भूमिका साम्यवाद की रही है।

3452. साम्यवादी देशों ने तो तानाशाही को ही लोकतंत्र कहना शुरू कर दिया है। मुस्लिम देश अलग-अलग दिशाओं में बंटे हैं, किन्तु एक बात पर एकमत हैं कि धर्म और तानाशाही का तालमेल आवश्यक है।

3453. वैसे साम्यवाद स्वतः ही पूरी दुनिया से परास्त हो रहा है किन्तु नक्सलवाद ने उस रही-सही कसर को भी पूरा कर दिया है। साम्यवाद परास्त होकर अब कटटरपंथी मुसलमानों के कन्धों पर बन्दूक रख चुका है।

3454. साम्यवादी दल तो सैद्धान्तिक रूप से विदेशी निवेश के विरोधी होते हैं। यदि यही निवेश रूस, चीन से होता तो साम्यवादियों का व्यवहार अलग होता है।

3455. साम्यवाद की एक ही संस्कृति है, येन-केन-प्रकारेण सत्ता प्राप्ति।

3456. कोई भी साम्यवादी कभी सहजीवन के सिद्धांत को नहीं मानता। जहां वह अल्पमत में होगा वहां स्वतंत्रता की मांग करेगा और जहां बहुमत में होगा वहां सबकी स्वतंत्रता छीन लेगा। भारत का हर साम्यवादी पग-पग पर अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करता दिखता है किन्तु कोई भी साम्यवादी चीन या रूस में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की वकालत नहीं करता।

3457. साम्यवादी देशों के पास कोई यथार्थवादी दृष्टिकोण कभी होता ही नहीं। वे तो सिर्फ परम्पराओं को तोड़कर उन्हें आधुनिकता की अंतिम सीमा तक विकारग्रस्त करने में प्रयत्नशील रहते हैं।

3458. साम्यवाद भी एक ग्रुप की तानाशाही माना जाता है। भले ही

साम्यवाद ने लोकतंत्र की बढ़ती प्रतिष्ठा को देखते हुए स्वयं को लोकतांत्रिक समाजवाद कहना शुरू कर दिया, किन्तु साम्यवादी व्यवस्था पूरी तरह तानाशाही ही होती है क्योंकि साम्यवाद में भी व्यक्ति को मौलिक अधिकार नहीं होते तथा व्यक्ति राज्य की सम्पत्ति माना जाता है।

3459. दुनिया में साम्यवादी सबसे अधिक चालाक और बुद्धिवादी माने जाते हैं, तो दूसरी ओर संघ परिवार सबसे अधिक शरीफ, नासमझ और भावना प्रधान। सर्वोदय भी लगभग शरीफ, नासमझ और भावना प्रधान ही माना जाता है।

3460. सर्वविदित है कि साम्यवादी लोग इन्दिरा जी की इमरजेन्सी के प्रशंसक थे।

3461. साम्यवाद की कुछ विशेष पहचान होती है -

(1) वह सिर्फ न्याय की बात करता है, व्यवस्था की बात नहीं करता। अधिकार की बात करता है, कर्तव्य की नहीं।

(2) वह आर्थिक और सामाजिक असामानता का खुला विरोध करता है, किन्तु राजनैतिक असमानता के विषय में चुप रहता है। बल्कि आमतौर पर वह सत्ता संघर्ष में सक्रिय तत्वों से तालमेल करता है।

(3) वह वर्ग-विद्वेष बढ़ाने के हर प्रयास में निरंतर सक्रिय रहता है। विशेष रूप से अमीरी और गरीबी के नाम पर वह दिन रात प्रयत्नशील रहता है। कुछ लोग तो अमीरी-गरीबी को एकमात्र मुद्दा मानकर सक्रिय रहते हैं।

(4) वह गरीब-अमीर के बीच की खाई को कभी कम नहीं होने देता, इसलिए वह डीजल, पेट्रोल की मूल्यवृद्धि का सबसे

अधिक विरोध करता है, क्योंकि यदि खाई घट गई तो उनका राजनैतिक जीवन ही अंधकार मय हो जायेगा।

(5) वह पूंजीवाद का खुलकर विरोध करता है किन्तु कोई विकल्प की चर्चा नहीं करता।

3462. साम्यवाद दुनिया का अकेला ऐसा संगठन है, जिसमें सबसे अधिक पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी, चालाक या धूर्त पाये जाते हैं। दूसरी ओर संघ परिवार या इस्लाम में ठीक इसके विपरीत भावना प्रधान लोगों की बहुलता रहती है।

3463. साम्यवादी शत-प्रतिशत सिर्फ लोकप्रिय मुद्दे ही आगे रखते हैं। उन्हें न लोकहित की कभी चिन्ता रहती है, न किसी प्रकार के चरित्र या आचरण का बंधन।

3464. साम्यवाद में व्यक्ति के वे ही अधिकार होते हैं, जो राज्य उन्हें देता है। राज्य को यह भी अधिकार होता है कि वह जब चाहे, वह अधिकार वापस ले ले।

3465. साम्यवाद में स्वतंत्रता की कल्पना करने वाले नासमझ हैं। साम्यवादी भी अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीति के दस नाटकों को प्रोत्साहित करते रहते हैं।

3466. फिलहाल राजनैतिक धरातल पर साम्यवाद से धीरे-धीरे मुक्ति मिल रही है, किन्तु वैचारिक धरातल पर अभी लम्बा समय लगेगा। शिक्षण संस्थान से लेकर न्यायपालिका तक, सब जगह इस विचारधारा के लोग बड़ी संख्या में स्थापित हैं।

3467. साम्यवाद हमेशा ही वर्ग-संघर्ष को विस्तार देता है, वर्ग-संघर्ष ही उसका मुख्य आधार है। साम्यवाद के पतन के बाद भी जब तक वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष से मुक्ति नहीं मिल जाती तब तक साम्यवाद

का खतरा बना ही रहेगा। भारत की राजनीति अब भी वर्ग-संघर्ष का कोई अच्छा समाधान नहीं खोज पाई है।

346 पूंजीवाद, साम्यवाद, समाजवाद

3468. दुनिया के अलग-अलग देशों में 1- पूंजीवाद तथा लोकतंत्र, 2- साम्यवाद तथा तानाशाही, 3- धर्म तथा तानाशाही, एक साथ जुड़कर काम करते हैं। लोकतंत्र की अपेक्षा तानाशाही अधिक सफल, किन्तु अमानवीय व्यवस्था है। लोकतंत्र तथा पूंजीवाद असफल किन्तु मानवीय व्यवस्था मानी जाती है।

347 साम्यवाद और गांधी

3472. गांधी जी लोकतंत्र को लोकस्वराज्य की दिशा में ले जाना चाहते थे, और साम्यवादी लोकस्वराज्य की अपेक्षा आर्थिक असमानता को आगे लाकर, लोकस्वराज्य के मुद्दे को पीछे करना चाहते थे।

3473. साम्यवादी गांधी विचारों से बिल्कुल विपरीत होते हैं, जबकि समाजवादी गांधी विचारों के निकट। साम्यवादी हिंसा के समर्थक होते हैं, और समाजवादी विरोधी। साम्यवादी तानाशाही के पक्षधर हैं, तो समाजवादी लोकतंत्र के। साम्यवादी केन्द्रित सत्ता चाहते हैं, तो समाजवादी विकेन्द्रित। साम्यवादी बहुत चालाक होते हैं, तो समाजवादी सीधे-साधे। गांधी हत्या के बाद साम्यवादियों ने योजनापूर्वक गांधीवादियों को पूरी तरह प्रभावित कर लिया, तो समाजवादी गांधीवादियों से बहस ही करते रह गये।

3474. साम्यवाद हिंसा का समर्थन करता है, यहां तक कि अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किसी भी प्रकार की हिंसा से परहेज नहीं करता। साम्यवाद अमेरिका की हर नीति का आंख मूंदकर विरोध करता है। साम्यवाद वर्ग-संघर्ष का प्रमुख समर्थक माना जाता है। सर्वोदय

के सामान्य कार्यकर्ता, अपने स्वाभाविक आचरण में साम्यवाद की ऊपरोक्त सभी नीतियों को न सिर्फ अस्वीकार करते हैं, बल्कि विरोध भी करते हैं, किन्तु सर्वोदय का उच्च नेतृत्व अपनी नीतियों तथा कार्यक्रमों में साम्यवाद की उपरोक्त सभी नीतियों का पूरा-पूरा पालन करते हैं।

3475. साम्यवाद श्रमजीवियों के नाम पर, बुद्धिजीवियों की तानाशाही के रूप में स्थापित होता है, किन्तु गांधीवाद ऐसे किसी भी वर्ग-भेद को अस्वीकार करके सबको व्यवस्था में अवसर की समानता प्रदान करता है। साम्यवाद में शासक और शासित के रूप में दो वर्ग अनिवार्य होते हैं, जबकि गांधीवाद में शासक और शासित की अवधारणा होती ही नहीं।

3476. साम्यवादी समय के अनुसार यू टर्न लेने में भी सिद्धहस्त होते हैं। इन्होंने गांधी की सफलता के पूर्व गांधी का विरोध किया और सफलता के बाद गांधी विचारों का विरोध किया। आज भी हिंसा के संबंध में उनकी सोच में कोई अन्तर्विरोध नहीं, किन्तु गांधी और जयप्रकाश की सफलता के बाद अपनी रणनीति बदलते उन्हें देर नहीं लगी। यदि आज की व्यवस्था के विरुद्ध कोई अहिंसक आंदोलन सफल होता है, तो अपनी रणनीति बदलने में वे पीछे नहीं रहेंगे।

3477. साम्यवादी मजबूत बुद्धिजीवी और योजनाकार तो होते ही हैं, नेहरू जी जैसा नेतृत्व और गांधी हत्या जैसा संघ परिवार के लिए ऐतिहासिक कलंक उनके लिए और अच्छे अवसर के रूप में लगा।

3478. साम्यवादी विचारों के जिन लोगों को हिंसा से घृणा हुई या सत्ता संघर्ष से विरक्ति हुई, वे सब गांधीवाद के साथ जुड़कर अहिंसा

या सत्ता से दूरी के पक्ष में तो ईमानदारी से हो गये। किन्तु आर्थिक सोच तो उनकी वही रही जैसी पहले थी। कुछ साम्यवादियों ने योजनापूर्वक भी गांधीवाद को सत्ता के केन्द्रीकरण के स्थान पर अर्थ के विकेन्द्रीकरण को तरजीही मुद्दा बनाने का गुरुमंत्र दिया और गांधीवादी धीरे-धीरे आर्थिक मुद्दों पर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगे।

348 साम्यवाद और श्रम-शोषण

3480. दुनिया में श्रम-शोषण के दो केन्द्र बने—(1) पूंजीवाद (2) साम्यवाद। पूंजीवाद में श्रम-शोषण प्रत्यक्ष था और साम्यवाद में धोखाधड़ी होता है। दुनिया का हर साम्यवादी अच्छी तरह से जानता है कि कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि से श्रम की मांग और मूल्य बढ़ जाएगा, लेकिन फिर भी कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि का विरोध करने में साम्यवादी ही सबसे आगे रहते हैं।

3481. वामपंथी अकेले ऐसे जीव हैं जो डीजल, पेट्रोल मूल्य वृद्धि का सैद्धान्तिक विरोध करते हैं और किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। दूसरा कोई दल ऐसा नहीं। वामपंथी पूरी ताकत लगाकर बिजली उत्पादन बढ़ाने का भी विरोध करते हैं, चाहे वह बिजली उत्पादन अमेरिका के सहयोग से हो या भारत में ही बड़े बांध बनाकर।

3482. साम्यवाद का उदे्श्य था बिजली उत्पादन में अड़ंगे डालकर डीजल, पेट्रोल की खपत को बढ़ने दिया जाये, जो साम्यवादियों के हितैषी खाड़ी देशों की एक खास आवश्यकता थी। मनमोहन सिंह सरकार जब बिजली उत्पादन बढ़ाने के लिए परमाणु ऊर्जा संयंत्रों का अमेरिका से आयात करना चाहती थी। तब उस आयात का साम्यवादियों ने खुला विरोध किया, किन्तु सब होते हुए भी

जब मनमोहन सिंह सरकार के खिलाफ धरना देने की बारी आई तो धरना देने में सर्वोदय नेतृत्व सबसे आगे रहा। यह घटना सर्वोदयी संस्थानों पर वामपंथी प्रभाव का उदाहरण ही है।

3483. यदि हम साम्यवादी देशों की नकल कर रहे हैं, तो हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि साम्यवाद में व्यक्ति राष्ट्रीय सम्पत्ति माना जाता है और भारत में स्वतंत्र जीव। साम्यवाद में व्यक्ति को मूल अधिकार नहीं होते और भारत में ऐसे अधिकार होते हैं। इसलिए साम्यवाद या पश्चिम के देशों की नकल करते हुए यदि भारत में श्रम-शोषण को न्याय संगत ठहराया जाता है तो यह अमानवीय है।

3484. साम्यवादी तो यहां तक नीचे उतर जाते हैं कि वे कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि का विरोध करते-करते बिजली उत्पादन यूनिटों का भी इसलिए विरोध करने लगते हैं, कि कहीं भारत में डीजल-पेट्रोल की बिक्री न घट जाये। साम्यवादी जान दे देगा लेकिन कृत्रिम ऊर्जा की मूल्यवृद्धि नहीं होने देगा।

349 पूंजीवाद, साम्यवाद, श्रम

3490. श्रम की लगातार लम्बे समय तक उपेक्षा की जाये तो समाज का संतुलन बिगड़ सकता है क्योंकि भारत में श्रम प्रधान लोगों की संख्या बुद्धि प्रधानों से कई गुना अधिक है। पूंजीवाद और साम्यवाद दोनों ही श्रमजीवियों के स्तर सुधार की वकालत करती है और योजनाएं भी बनाती है, किन्तु पिछले सत्तर वर्षों से भारत में तो लगातार श्रम और बुद्धि की आय क्षमता में असमानता बढ़ रही है। सन् सैंतालीस में समाज में श्रम का जो सम्मान था, वह कम हुआ है।

3491. बाजार मूल्य पर पूरी स्वतंत्रता से अधिक से अधिक काम लेना

और न्यूनतम मजदूरी देना पूंजीवाद का सिद्धांत है। पूंजीवाद ने हमेशा श्रम का शोषण किया है। उसने श्रमजीवियों को मनुष्य न मानकर वस्तु मान लिया, जो या तो उत्पादन सहायक वस्तु है या उनकी सुख सुविधा का सहायक। साम्यवाद से बहुत उम्मीदें थी कि वह श्रम सहायक होगा किन्तु साम्यवाद पूरी तरह ऐसी नीति पर चला, जिसका सम्पूर्ण लाभ छद्म श्रमजीवियों के खाते में चला गया। एक ओर तो साम्यवाद ने उद्योग धन्धों का उत्पादन गिराया दूसरी ओर वास्तविक श्रम-मूल्य को बढ़ने ही नहीं दिया। पूंजीवाद ने यदि श्रम-शोषण किया, तो साम्यवाद ने श्रम के साथ छल किया।

3492. साम्यवाद या समाजवाद के नाम पर पूंजीवाद के लाभ नकली श्रमजीवियों ने छीन लिया और दोनों ही स्थितियों में वास्तविक श्रमजीवी उपेक्षित ही रह गए। समाज में श्रम की मांग बढ़े बिना, श्रम-मूल्य बढ़ ही नहीं सकता। पूंजीवादी तो अपने स्वार्थ में अन्धे हैं किन्तु साम्यवादी या समाजवादी ठीक आंख रखकर भी इस सत्य को नहीं देख रहे।

3493. वास्तविक श्रम की मांग बढ़ेगी कुटीर उद्योग से और कुटीर उद्योग बढ़ेंगे आवागमन महंगा होने से। मशीनी उत्पादन महंगा होने से तथा कृत्रिम श्रम-मूल्य घटाने से। संगठित नकली श्रमजीवी, वास्तविक श्रमजीवियों के साथ निरंतर छल करते हैं।

3494. दुनिया के शक्ति संतुलन में पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच लम्बी प्रतिस्पर्धा चली। पूंजीवाद का नेतृत्व अमेरिका के पास था और साम्यवाद का रूस के पास। अमेरिका व्यावसायिक बुद्धि के आधार पर दुनिया भर के देशों का शोषण करता था और अपने देश के नागरिकों को सुख-सुविधा सम्पन्न बनाये रखता था। जबकि रूस

सैनिक बुद्धि के अंतर्गत अपने देश के लोगों का पेट काट-काटकर भी दूसरे देशों की सहायता में लगा रहता था।

3495. कांग्रेस ने शुरू से ही महसूस किया कि वामपंथी अर्थनीति जन-आक्रोश में तो पूरी तरह उपयोगी हो सकती है, किन्तु इससे न देश को समृद्ध बनाया जा सकता है न समाज को। देश और समाज को समृद्ध बनाये रखने के लिए, आर्थिक प्रतिस्पर्धा को खुला प्रोत्साहन देना ही होगा। यह जानते हुए भी राजनैतिक स्वार्थ के लिए कांग्रेस पार्टी वामपंथी मार्ग पर चलती रही। मनमोहन सिंह के आने के बाद अर्थनीति में कुछ बदलाव दिखा।

3496. साम्यवाद में एक वर्ग निर्मित संविधान के अंतर्गत शासन चलता है। ग्राम गणराज्य प्रणाली को समाप्त करने के लिए अनेक प्रकार से वर्ग-निर्माण करके वर्ग-संघर्ष को साम्यवाद ने अपना शस्त्र बनाया। साम्यवादी भारत की समाज व्यवस्था को कमजोर करते रहे और संघ परिवार, धर्म और राष्ट्र को मजबूत करता रहा।

3497. साम्यवादी भारतीय राजनीति में सर्वाधिक चालाक और संगठित जीव होता है। वह योजनापूर्वक अन्य संगठनों में प्रवेश करके उसे नेपथ्य से संचालित करने लगता है।

3498. साम्यवाद व समाजवाद किसी भी रूप में श्रम की समस्या का समाधान न होकर बुद्धिजीवियों की समस्याओं का समाधान है। अब तो रूस, चीन भी साम्यवाद की विफलता मान चुके हैं, बंगाल, केरल भी धीरे-धीरे साम्यवाद के विचार में संशोधन कर रहे हैं।

3499. साम्यवाद राज्य सत्ता का अधिकतम केन्द्रीकरण होता है और गांधीवाद राज्य सत्ता का अधिकतम अकेन्द्रीकरण। साम्यवाद

अपने परीक्षण में असफल होकर किसी नये संशोधित स्वरूप की प्रतीक्षा कर रहा है और गांधीवाद अब तक कहीं भी अपने वास्तविक स्वरूप में स्थापित ही नहीं हो पाया है।

3500. सरकार साम्यवादियों को नाराज नहीं करना चाहती और साम्यवादी खाड़ी देशों के हितों की भारत में लम्बे समय से देखभाल करते रहते हैं।

350 रामराज्य

3501. रामराज्य की सफलता का आकलन अपराध नियंत्रण की सफलता पर निर्भर रहता है। रामराज्य की एक ही परिकल्पना है 'अपराध मुक्त समाज'। मंदिरों या मस्जिदों की संख्या रामराज्य का आधार नहीं बन सकती है।

351 राजनैतिक दल

3510. भारतीय राजनीति में किसी भी राजनैतिक दल में आन्तरिक लोकतंत्र नहीं है। मरणासन्न साम्यवादियों में पच्चीस प्रतिशत कहा जा सकता है। जेडीयू में भी अब नाम मात्र ही बचा है। भाजपा में जब तक संघ-भाजपा की मिली-जुली सरकार है तब तक पचास प्रतिशत लोकतंत्र कहा जा सकता है।

3511. कांग्रेस पार्टी किसी भी उचित-अनुचित तरीके से सत्ता में बने रहना चाहती है। जनता दल जातीय, भाजपा साम्प्रदायिक, साम्यवादी आर्थिक ध्रुवीकरण कराकर सत्ता परिवर्तन का प्रयास कर रहे हैं। कई दल क्षेत्रीयता की भावना भड़का कर प्रांतीय सत्ता से ही संतोष करने को तैयार हैं। कोई भी दल शराफत के आधार पर ध्रुवीकरण का प्रयास नहीं कर रहा है।

3512. मनमोहन सिंह सबसे अधिक लोकतांत्रिक प्रधानमंत्री हुए हैं। उनके दूसरे कार्यकाल में सोनिया गांधी ने पुत्रमोह में पड़कर उनको कमजोर किया।

3513. वर्तमान भारत में संघ भाजपा की मिली-जुली सरकार पूरी तरह सफल है। मोदी जी के कार्यकाल में देश नया कीर्तिमान बना सकता है। मेरा अनुमान है कि मोदी जीवन भर प्रधानमंत्री रह सकते हैं। वर्तमान भारतीय राजनीति में मोदी जी के बाद नीतीश कुमार और अरविन्द केजरीवाल ही कुछ योग्यता रखते हैं। अखिलेश यादव का परीक्षण अभी बाकी है। राजनीति को गंदा करने में कुछ नाम महत्वपूर्ण हैंः- लालू प्रसाद, शिबू सोरेन, मुलायम सिंह, मायावती, रामविलास पासवान, ममता बनर्जी, जयललिता, करूणानिधि, अजित जोगी, येदुरप्पा, प्रकाश करात, विजयन, दिग्विजय सिंह आदि तो दूसरी ओर राजनीति को साफ रखने वालों में मनमोहन सिंह, नरेन्द्र मोदी, बाबूलाल मरांडी, शान्ता कुमार, अच्युतानन्दन, बुद्धदेव भट्टाचार्य, सोमनाथ चटर्जी, नीतीश कुमार, अरविन्द केजरीवाल, राहुल गांधी, नवीन पटनायक, ए.के. एन्टोनी, अखिलेश यादव आदि का नाम लिया जा सकता है। वर्तमान स्थिति में अरविन्द केजरीवाल संदेह के घेरे में आ गये हैं।

352 परिवारवाद

3520. जब किसी देश के समक्ष विशेष परिस्थिति होती है तब सामान्यकाल के विपरीत विरोधाभाषी विचारधाराओं के लोग एक-दूसरे से समझौता करके सभी एक लक्ष्य के लिए काम करने लगते हैं, तब यहीं से राजनैतिक पतन शुरू होता है। राजनैतिक पतन एक बीमारी है जिसका भारी प्रभाव समाज पर पड़ता है। उस बीमारी के ठीक

किए बिना सामाजिक पतन नहीं रूक सकता। यह बीमारी बहुत पुरानी हो गई है जो पण्डित नेहरू, अम्बेडकर ने हमारे ऊपर थोप दी है और आज तक हम उसे ढो रहे हैं।

3521. राजनीति में परिवारवाद एक बुराई है किन्तु परिवारवाद इन राजनीतिक राजनेताओं की स्वार्थपूर्ण नीतियों का परिणाम न होकर प्रदूषित लोकतंत्र का परिणाम होता है। जब से भारत स्वतंत्र हुआ तभी से भारत सरकार, कांग्रेस पार्टी और नेहरू परिवार एकाकार बनकर रहे। तीनों में कभी कोई भेद नहीं रहा, तीनों एक-दूसरे के पूरक रहे।

3522. स्वतंत्रता के तत्काल बाद भारत में परिवारवाद सोच समझकर नहीं लाया गया, किसी योजना के अंतर्गत नहीं आया, बल्कि भारत की परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था में लोकतंत्र के अभाव के परिणाम के रूप में विकसित हुआ। भारत में लम्बे समय से यह भावना फैलाई गई कि गुणों के आधार पर व्यक्ति का चयन नहीं होता है बल्कि चुने गये व्यक्ति में गुणों की उपस्थिति अनुभव की जाती है।

3523. लोकतंत्र में परिवारवाद एक भयंकर बीमारी है उस बीमारी का लाभ उठाकर जो भी व्यक्ति आगे बढ़ने में सफल हो जाता है वह उसे अपना राजनैतिक अधिकार समझकर उसे अपने हाथ में लम्बे समय तक बनाये रखने की तिकड़म करता रहता है। वह प्रयत्न करता है कि लोकतांत्रिक ढंग से चुनी गई विधायिका, कार्यपालिका तथा राजनैतिक दल के प्रमुख के रूप में भी उसके पारिवारिक लोग बैठें अथवा कम से कम ऐसे लोग ही बैठें जो उसके गुलाम सरीखे काम करने वाले हो। आम जनता भी उस

उम्मीदवार की योग्यता का आकलन करने की अपेक्षा व्यक्ति पूजा के समान उस दिशा में बह जाती है और इसका स्पष्ट कारण यह है कि भारत में परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र के स्थान पर राजशाही या तानाशाही के सारे अवगुण चल रहे हैं।

3524. परिवारवाद किसी एक पार्टी की देन नहीं है, व्यक्ति की देन नहीं है, बल्कि भारतीय परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था की देन है। भारतीय राजनीति में परिवारवाद के बढ़ने के प्रमुख कारणों में एक है परिवार व्यवस्था में लोकतंत्र का अभाव और दूसरा सत्ता का केन्द्रीकरण तथा व्यवसायीकरण। राजनीति में परिवारवाद को समाप्त करने के लिए दोनों तरफ से प्रयास करें। अर्थात् ऊपर से परिवारवाद की निन्दा आलोचना भी करते रहें तथा साथ-साथ परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था में भी लोकतंत्र स्थापित करने का प्रयास जारी रखें।

3525. जहां भी आदर्श लोकतंत्र होता है वहां राजनीति में परिवारवाद का कोई खतरा नहीं होता। भारत में अब तक विकृत लोकतंत्र रहने के कारण राजनीति में पूरी तरह परिवारवाद रहा है। दल-बदल कानून ने इस परिवारवाद को और अधिक मजबूत कर दिया।

353 कांग्रेस

3530. कांग्रेस जब विपक्ष में होती है तब गांवों को अधिक से अधिक अधिकार देने की बात करती है किन्तु सत्ता में आते ही उस बात को भूल कर अन्य मामलों में उलझ जाती है।

3531. कांग्रेस पार्टी में एक से बढ़कर एक कूटनीतिज्ञ भरे हुए हैं जो बहुत दूरगामी योजना बनाते हैं। वामपंथी तो वैसे ही कूटनीति के भंडार माने जाते हैं और यदि कांग्रेस को उनका साथ मिल जाये तो फिर

कहना ही क्या? कांग्रेस पार्टी तो एक चौकड़ी की गुलाम है, जिसे नेहरू गांधी परिवार हमेशा बनाता बिगाड़ता रहता है।

3532. कांग्रेस की नजर में योग्यता का अर्थ प्रधानमंत्री की कुर्सी मात्र है। गांधी नेहरू परिवार का अंतिम लक्ष्य ही प्रधानमंत्री की कुर्सी तक पहुंचना है।

3533. कुछ वर्ष पूर्व भारत के उस समय के गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे ने एक विलक्षण आदेश प्रसारित किया, जिसके अनुसार देशभर में निर्दोष अल्पसंख्यकों की गिरफ्तारी के पूर्व सतर्कता रखने की बात कही गई। राजनैतिक दृष्टि से तो यह आदेश ठीक है, क्योंकि कांग्रेस पार्टी के लिए अल्पसंख्यक ही वोट बैंक हैं, किन्तु धर्मनिरपेक्ष भारत में इस प्रकार का आदेश समझ के बाहर है। इसी भूमिका के अंतर्गत प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने भी कहा था कि देश के संसाधनों पर अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों का पहला अधिकार है। यदि कांग्रेस पार्टी ऐसा कहे तो वह अलग बात हो सकती है किन्तु किसी देश का प्रधानमंत्री या गृहमंत्री कहे तो ऐसा कहना कोई साधारण गलती नहीं है। आज यदि प्रधानमंत्री मोदी ऐसी ही बातें वोटों की लालच में हिन्दुओं के पक्ष में कहना शुरू कर दें तो धर्मनिरपेक्षता का क्या अर्थ रह जाएगा? भारत में यह कैसे उचित है कि दोषी या निर्दोष होने का आधार कोई धर्म या जाति हो सकती है?

3534. कांग्रेस पार्टी की स्थिति साँप-छुछुन्दर की हो गई है। उसे न निगलते बन रहा है, न उगलते बन रहा है। मुसलमानों को नाराज कर नहीं सकती और हिन्दू भारत में बहुमत में हैं।

3535. मेरे विचार में भूलकर भी कांग्रेस पार्टी को वोट देना परिवारवादी

गुलामी को स्वीकार करने के अतिरिक्त कुछ नहीं है। किसी भी परिस्थिति में कांग्रेस को कोई वोट देना अत्यन्त घातक है। मैं तो यहां तक चाहता था कि कांग्रेस पार्टी को एक भी सीट न मिले।

3536. कांग्रेस को जीवित रखने में पंडित नेहरू का सर्वाधिक स्वार्थ था। उनके परिवार ने एक गिरोह बनाकर तीन-चार पीढ़ियों तक सत्ता सुख भोगा। बड़ी मुश्किल से अब नरेन्द्र मोदी तथा संघ परिवार ने मिलकर ऐसे खानदानी आरक्षण से देश को मुक्त कराया है।

3537. कांग्रेस पार्टी की दुर्गति का एकमात्र कारण, सोनिया गांधी के पुत्र मोह में छिपी तिकड़म से जोड़कर देखना चाहिए। सोनिया के पुत्रमोह के कारण ही मनमोहन सिंह की लोकतांत्रिक और सफल सरकार पराजित हो गयी। आज भी सोनिया गांधी का पुत्र मोह नरेन्द्र मोदी के लिए संजीवनी का काम कर रहा है।

3538. मैं नहीं कह सकता कि कांग्रेस पार्टी के वर्तमान पतन में मेरे विचारों की कितनी भूमिका है और कितना समाज का मनोभाव। किन्तु इतना स्पष्ट है कि वर्तमान राजनैतिक वातावरण में राहुल गांधी का रसातल तक का पतन निश्चित है। कहीं ऐसा न हो जाए कि राहुल गांधी तो जाएंगे ही साथ ही साथ कांग्रेस पार्टी को भी डुबा जायें।

3539. कांग्रेस कोई विचारधाराओं का संगठन न होकर एक परिवार विशेष द्वारा कुछ सत्ता-लोलुप व्यक्तियों का बनाया हुआ संगठन है। मोदी और नीतीश जैसे विचारधारा के संगठनों के आगे आने के बाद कांग्रेस का स्वतः समापन निश्चित हो गया। कांग्रेस आर्थिक और सामाजिक मामलों में अधिकाधिक निजीकरण की समर्थक है तथा साम्प्रदायिक मामलों में अल्पसंख्यक तुष्टीकरण की पक्षधर। साम्यवादी आर्थिक मामलों में निजीकरण के अधिकाधिक विरोधी

है, और साम्प्रदायिकता के मामले में कांग्रेस के समान अल्पसंख्यक तुष्टीकरण के पक्षधर। संघ परिवार की एक स्पष्ट पहचान बनी है कि वह साम्प्रदायिकता के मामले में तो अधिकाधिक हिन्दू तुष्टीकरण के पक्ष में है और आर्थिक मामलों में अस्पष्ट। भाजपा की आर्थिक नीतियां पूरी तरह निजीकरण समर्थक अर्थात् कांग्रेस से मेल खाती है। साम्प्रदायिकता के मामले में भी भाजपा की नीतियां हिन्दू तुष्टीकरण के पक्ष में न होकर धर्म निरपेक्ष है।

354 भाजपा

3540. भारतीय जनता पार्टी जन्म काल से ही दो अलग-अलग विचारधाराओं में बंटकर जूझती रही। प्रारम्भ से ही इसकी विचारधारा में दो समूहों का समावेश था एक संघ विचारधारा जो अधिकतम तानाशाही की पक्षधर रही और दूसरी अटल बिहारी वाजपेयी की जो तानाशाही और लोकतंत्र का समन्वय चाहते थे। परिस्थितियों ने संघ की विचारधारा में संशोधन किया और आज संघ की विचारधारा ही निर्णायक हो गयी है। साम्यवादी और भाजपा को छोड़कर एक भी ऐसा दल नहीं है जिसने सत्ता लोलुपता से हटकर कभी विचारधारा को महत्व दिया हो। इस विचारधारा के टकराव में संघ परिवार विजयी होता दिख रहा है यह एक शुभ लक्षण है।

355 प्रतिनिधि, राजनेता, राजनैतिक कार्यकर्ता

3550. राजीव गांधी ने तो यहां तक समाज के साथ धोखा किया, कि दल-बदल कानून बनाकर हमारे बहुमत से चुने हुए सांसद को भी दलीय अनुशासन भंग करने के कारण संसद सदस्यता छोड़नी होगी ऐसा ऐक्ट बना दिया। चुना है सांसद को हमने और अनुशासन का कठोर

डंडा दल का? जनता जिसे सांसद चुनती है, उस पर नियंत्रण जनता का होना चाहिए। किन्तु उस पर नियंत्रण दल और अप्रत्यक्ष रूप से दल के नेता का होने लगा। दल-बदल कानून के कारण जन प्रतिनिधियों की स्थिति भेड़ बकरी के समान हो गयी है।

3551. पूरी दुनिया में राजनेता उस प्राणी को कहा जाता है जो समस्याएं पैदा करने में माहिर हो, और उस समस्या का समाधान इस प्रकार करे कि उससे कोई नयी समस्या पैदा हो जाये। हमारे राजनेता लगातार प्रयत्न करते रहते हैं कि किसी भी समस्या को कभी भी सुलझने नहीं देना है। समाज में ऐसा वातावरण बनाये रखना आवश्यक है कि समस्या के समाधान के लिए किसी निष्कर्ष तक सर्व सम्मति न बन सके। वे किसी समस्या का कोई निश्चित समाधान होने ही नहीं देते क्योंकि किसी समस्या का समाधान उनकी बेरोजगारी का आधार बन सकता है। जब तक राजनेताओं पर समाज का अंकुश नहीं होगा, तब तक विध्वंसकारी वर्ग-संघर्ष के प्रत्यनों पर नियंत्रण भी नहीं होगा।

3552. भारतीय राजनेताओं और पश्चिम के राजनेताओं में एक बहुत बड़ा फर्क यह है कि पाश्चात्य राजनीतिज्ञ बहुत सोच समझ कर कानून बनाते हैं। और भारत के राजनेताओं को कानून बनाने में मजा आता है।

3553. सभी राजनेता एक तरह का क्यों सोचते हैं? मेरे विचार में इसके पीछे उनका राजनैतिक स्वार्थ छिपा है। आठ आधारों पर वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष मजबूत करना इनकी मजबूरी है। बांटो और राज्य करो का सिद्धांत हमें पश्चिम से विरासत के रूप में मिला है। सभी राजनेता उसका लाभ उठा रहे हैं।

3554. कोई मंत्री मंत्रिमंडल में रहते हुए प्रधानमंत्री के विरुद्ध यदि कुछ कह दे तो अनुशासन भंग। मेरा लड़का परिवार में रहते हुए स्वतंत्र विवाह कर ले तो मेरा कोई अनुशासन नहीं। क्या कमाल का कानून है। कोई भी नेता या न्यायालय यह बताने के लिए तैयार नहीं कि परिवार, समाज और राज्य के अपने-अपने अधिकारों की सीमाएं क्या हैं ?

3555. भारत का हर व्यक्ति महसूस करता है कि भारत का हर राजनेता भ्रष्ट है, जिसे रोकने में हमारी संसदीय प्रणाली प्रभावहीन सिद्ध हो रही है। प्रधानमंत्री को हम अन्य राजनेताओं की तुलना में भले ही ईमानदार मान लेते हैं किन्तु सामाजिक तुलना में उन्हें ईमानदार नहीं कह सकते क्योंकि वे प्रधानमंत्री भी हैं। मैं तो पूरी तरह आश्वस्त हूं कि राजनीति में अपवाद को छोड़कर शत प्रतिशत भ्रष्टाचार व्याप्त है।

3556. हमारे देश के सभी नेता समाज में यह असत्य फैलाने में दिन रात सक्रिय रहते हैं कि संविधान सर्वोच्च है जबकि सच्चाई यह है कि तंत्र से जुड़े लोगों ने ही चुपके से उस संविधान नामधारी किताब में एक लाईन लिख दी है कि तंत्र जब भी आवश्यक समझे, संविधान में संशोधन भी कर सकता है तथा उसकी व्याख्या भी बदल सकता है। स्पष्ट है कि तंत्र सर्वोच्च हो गया।

3557. अब चूंकि सांसद एक व्यावसायिक कंपनी के सदस्य के रूप में बदल चुके हैं, और उन पर नियंत्रण का कोई प्रावधान नहीं है, ऐसी स्थिति में ये जितना वेतन बढ़ा रहे हैं उसके लिए भी उनकी प्रशंसा ही की जानी चाहिए कि सारे अधिकार अपने पास होते हुए भी अब तक उन्होंने सिर्फ इतना ही अन्याय किया है। तंत्र से जुड़ा हर

व्यक्ति मानता है कि अब जब उनका आचरण एक प्राइवेट कम्पनी के रूप में बदल ही गया है तो लुका छिपी क्यों? पेट को उस सीमा तक बढ़ने दिया जाय कि सारे भारत की धन दौलत समाने के बाद भी पेट का एक कोना खाली ही रह जाये, इसलिए चारों तरफ से आने दो, चाहे जरूरत हो या न हो, किन्तु यदि वेतन वृद्धि सम्भव है तो होनी ही चाहिए। इस वेतन वृद्धि से भ्रष्टाचार या कमीशन में तो कोई बाधा की शर्त है नहीं। यह वेतन वृद्धि तो निःशर्त है।

3558. हमारे राजनेता कन्या भ्रूण हत्या का प्रशासनिक समाधान खोज रहे हैं और नक्सली आतंकवाद का सामाजिक, आर्थिक? वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में हर राजनेता सफलतापूर्वक इस दिशा में कदम बढ़ा रहा है। धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, गरीब-अमीर, किसान मजदूर के नाम पर समाज व्यवस्था तो तोड़ी जा सकती है किन्तु परिवार व्यवस्था नहीं। महिला सशक्तिकरण परिवार व्यवस्था को भी छिन्न-भिन्न कर देगा।

3559. नेता हमें सरकार तब तक नहीं कहते हैं, जब तक हम स्वयं को सरकार नहीं समझते। यदि हम स्वयं को सरकार समझना शुरू कर दें, तो नेता इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते।

3560. राजनेताओं, बुद्धिजीवियों, अपराधियों तथा पूंजीपतियों में यह भूख इस सीमा तक बढ़ी हुई है कि वे सारे अधिकार अपने पास समेट कर रखने की तिकड़म में ही व्यस्त रहते हैं और सामान्य जनों, शरीफों, श्रमजीवियों तथा गरीबों को पूरी तरह राज्य पर निर्भर बनाकर रखना चाहते हैं। इन राजनेताओं ने मिल जुल कर समाज की आंखों में धूल झोंकने के लिए एक संविधान बना लिया है, जिसे वे मनमाने तरीके से संशोधित भी करते रहते हैं। उन्होंने

परिवार व्यवस्थाएं, गांव व्यवस्थाएं तथा समाज व्यवस्था को चलाने का ठेका लिया है। ठेका देने वाला संविधान, संविधान बनाने वाले नेता और ठेका लेने वाले नेता। यह चक्र कैसे टूटे ? इस मुद्दे पर गंभीर चर्चा आवश्यक है।

3561. सभी राजनेताओं की यह विशेषता होती है कि वे समाज को वर्गों में बांटकर वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष को बढ़ाते रहते हैं और खुद बिचौलिए बनकर उनके टकराव का लाभ उठाते हैं। सफल राजनेता के आवश्यक गुणों में यह माना जाता है कि वह समाज को हमेशा विभिन्न वर्गों में बांटकर रखे, तथा उन्हें कभी एकजुट न होने दे। यहां तक कि सफलता के चर्मोत्कर्ष के लिए परिवार तक को बांटकर रखना आवश्यक माना जाता है। राजनेता अपना दायित्व अर्थात् अपराध नियंत्रण तो ठीक से पूरा करने में असफल है और बिना मतलब लिंग अनुपात जैसे काम को हाथ में लेकर तथा अपने स्वार्थ के कारण समाज को महिला और पुरुष के बीच में बांटकर स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं।

3562. राजनीति में फैसले लेने व पूरे समाज का एजेंडा तय करने की पूरी ताकत सिर्फ राजनेताओं के पास निहित है। यदि राजनेताओं की नीयत ठीक है तो प्रशासनिक सेवा का मजबूत होना जनहित के विरुद्ध जायेगा। क्योंकि प्रशासनिक सेवा के लोग अपनी शक्तियों का दुरूपयोग करके किसी कार्य को आगे बढ़ने ही नहीं देंगे। किंतु यदि राजनेताओं की नीयत खराब है तो प्रशासनिक सेवा को अधिक से अधिक मजबूत होना चाहिए। वर्तमान समय में मजबूत प्रशासन की आवश्यकता है।

3563. सारी दुनिया के राजनेताओं में धन संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही

है। इस बढ़ती जा रही समस्या के समाधान के लिए हमें यह प्रयत्न करना चाहिए कि सम्मान, शक्ति, सुविधा कहीं भी एक जगह किसी भी रूप में इकट्ठी न हो जाये। जो व्यक्ति इच्छा और क्षमता रखता है, वह सम्मान शक्ति और सुविधा में से किसी एक का चयन कर ले किन्तु यह आवश्यक है कि उसे अन्य दो की इच्छा त्यागनी होगी।

3564. 'राजनेता' पूरी दुनिया और विशेषकर भारत के लिए सबसे अधिक खतरनाक जीव के रूप में स्थापित हो गया है। वह सेना, पुलिस, संविधान, कानून आदि के सहारे समाज को बांट कर उसे गुलाम बनाकर रखना चाहता है।

3565. स्वतंत्रता के बाद अब तक सभी राजनेताओ में परिवार के लिए सत्ता को सर्वाधिक महत्व प्राप्त था, तो अब परिवार केन्द्रित सत्ता का युग समाप्ति की ओर बढ़ता दिख रहा है।

3566. किसी भी दायित्व को पूरा करने के लिए प्रबंधक को कुछ शक्ति दी जाती है। यह शक्ति दाता की अमानत होती है, प्रबंधक का अधिकार नहीं। वर्तमान में राजनेता अमानत को अधिकार मानने लगे हैं।

3567. 'राज्य' प्राकृतिक या सामाजिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान करता है जो पूरी तरह गलत होता है। राजनीति से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति बाजारवाद का अधिक विरोध करता है। यदि गरीबी, बेरोजगारी, मुद्रा स्फीति, श्रमशोषण ही कम हो जायेंगे तो सरकारों के पास राजनीति का खेल खेलने के लिए कोई खुला मैदान ही नहीं मिलेगा। यदि सरकार इनसे बाहर हो जाये तो ये अपने आप सुलझ सकती हैं।

3568. राजनीति, धर्म, समाज सेवा आदि सभी क्षेत्रों का व्यवसायीकरण हुआ है। साथ ही सम्पूर्ण व्यवसाय का भी राजनीतिकरण हो गया है। राजनीति और व्यवसाय एक-दूसरे के पूरक बन गये हैं। राजनीति हर मामले में व्यवसाय को दोषी मानती है तो व्यवसाय राजनीति को। उचित तो यह होता कि दोनों अपनी-अपनी सीमाओं में रहते और किसी का उल्लंघन नहीं करते।

3569. व्यवस्था कई प्रकार की होती है—(1) सामाजिक, (2) संवैधानिक, (3) आर्थिक, (4) धार्मिक, (5) विश्वस्तरीय। भारत में राजनैतिक व्यवस्था ने अन्य सभी व्यवस्थाओं पर अपना एकाधिकार कर लिया है, जो ठीक नहीं।

3570. यदि दल-बदल कानून के अनुसार कोई अयोग्य व्यक्ति बाद में निर्दोष सिद्ध होता है, तो उसे बीच के कालखंड के लिए अयोग्य रहना उसके साथ अन्याय तो नहीं है यह प्रश्न बार-बार उठाया जा रहा है। प्रश्नकर्ता यह भूल जाते हैं कि जन प्रतिनिधित्व उनका कोई मौलिक अधिकार नहीं है। भारत में किसी भी व्यक्ति को जन प्रतिनिधि बनने की न स्वतंत्रता है न अधिकार। जन प्रतिनिधित्व तो जनता की अमानत है जिसे वे अपना अधिकार मान बैठे हैं। कुछ मतदाता उस व्यक्ति के नाम पर प्रस्ताव देते हैं जिस प्रस्ताव पर उस व्यक्ति की सहमति मात्र होती है। यदि कोई मतदाता प्रस्ताव न दे तो वह व्यक्ति प्रतिनिधि नहीं हो सकता। प्रतिनिधित्व किसी भी रूप से उसका अधिकार नहीं। राइट टू रिकॉल यदि कानून का रूप ले ले तो उसका अधिकार कहां जायेगा?

3571. भारत का हर राजनैतिक कार्यकर्ता स्वयं को मनुष्य समझता ही नहीं, सिर्फ नेता ही समझता है। जिसका अर्थ होता है अन्य सभी

मनुष्यों से सर्वाधिक श्रेष्ठ, समझदार तथा अन्य सभी मनुष्यों के विषय में उचित-अनुचित का निर्णय करने की सर्वाधिक योग्यता रखने वाला।

357 राजनीति

3572. भारत में यूं तो सम्पूर्ण समाज के ही चरित्र में गिरावट आई है किन्तु सर्वाधिक चरित्र पतन भारतीय राजनीति में दिख रहा है। राजनैतिक दलों में अब चरित्र तो खोजने से भी नहीं मिलता।

3573. हम तो सभी राजनैतिक दलों को एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मानते हैं। हम न तो किसी दल विशेष को अच्छा घोषित कर रहे हैं न बुरा। फिर भी साम्प्रदायिकता की तुलना में धर्म निरपेक्षता और निजीकरण अधिक अच्छा है।

3574. महिला और पुरुष को अलग-अलग वर्गों में स्थापित करना राजनैतिक षड्यंत्र होता है। भारत के सभी राजनैतिक दल इस षड्यंत्र के विस्तार में पूरी तरह शामिल रहते हैं।

3575. किसी भी राजनैतिक दल के पास समाज की प्रमुख समस्याओं का कोई समाधान नहीं है। फिर भी भारत में लगातार सत्ता का राजनीतिज्ञों के हाथों में केन्द्रीकरण हो रहा है। वर्तमान पंचायत व्यवस्था में, कुछ और व्यवस्था जनता के हाथ से निकलकर नए नेताओं के पास केन्द्रित हो जाएगी।

3576. भारत की संवैधानिक व्यवस्था में सबसे अधिक गिरावट राजनैतिक व्यवस्था में आई है, और सबसे कम न्यायपालिका में। भ्रष्टाचार के मामले में भी राजनैतिक व्यवस्था सबसे ऊपर है, और सत्ता के दुरूपयोग के मामले में भी। राजनीति में भ्रष्ट लोगों का प्रतिशत व्यापारियों या शासकीय कर्मचारियों से भी अधिक है। परन्तु हर नेता

दूसरे सभी वर्गों को भ्रष्ट या चोर कहकर स्वयं को ईमानदार कहता है। राजनैतिक व्यवस्था के पतन का मुख्य कारण यह है कि राजनैतिक व्यवस्था ही विधायिका भी है और कार्यपालिका भी। इसी व्यवस्था ने संविधान संशोधन तक का अधिकार अपने पास समेट लिया है। पिछले 30 वर्षों से जब से न्यायिक तानाशाही शुरू हुई है, तब से राजनीति की बुराइयां न्यायपालिका में बढ़ती जा रही है।

3577. भारत में राजनीति का स्वरूप संसद एक मंदिर, संविधान भगवान, नेता पुजारी, अच्छी दुकानदारी के आधार पर अवलंबित है।

3578. राजनीति बन गई तवायफ नेता हुए दलाल,
ऐसे में क्या होगा भईया इस समाज का हाल।
संसद को एक पलंग समझ कर उस पर शयन किया,
संविधान को मान के चादर खींचा ओढ़ लिया।
अब तक हमने बहुत सहा,
अब सहेंगे नहीं,
हम चुप रहेंगे नहीं।
चादर हटा देंगे हम,
सभी कुछ दिखा देंगे हम।
कचरा जला देंगे हम।

360 समस्याएं

3600. भारत में पाँच प्रकार की आन्तरिक समस्याएं हैं—(1) वास्तविक, (2) कृत्रिम, (3) प्राकृतिक, (4) भूमण्डलीय, (5) भ्रम।

3601. वास्तविक समस्याएं वे होती हैं, जिनका अस्तित्व है और जो मानवीय स्वभाव से पैदा होती हैं किंतु जिनका अब तक समाधान नहीं हो सका है। ये समस्याएं राज्य की निष्क्रियता के कारण

बढ़ती हैं। इनमें चोरी-डकैती-लूट, बलात्कार, मिलावट-कमतौल, जालसाजी, धोखाधड़ी, हिंसा, बल-प्रयोग, आतंकवाद आदि शामिल हैं।

3602. कृत्रिम समस्याएं वे होती हैं, जिनका अस्तित्व तो है किन्तु वे मानवीय स्वभाव से पैदा न होकर राज्य की अति सक्रियता के कारण पैदा होती हैं। ऐसी समस्याओं में चरित्र पतन, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, जातीय कटुता, आर्थिक असमानता, श्रम-शोषण आदि शामिल हैं।

3603. प्राकृतिक समस्याएं—भूकम्प, बाढ़, बीमारियाँ, तूफान आदि।

3604. भूमण्डलीय समस्याएं—पर्यावरण प्रदूषण, आबादी वृद्धि, जल का अभाव, अकाल, बीमारी, कोरोना, भूकम्प आदि।

3605. भ्रम-महंगाई, गरीबी, अशिक्षा, मुद्रा स्फीति का दुष्प्रभाव, शिक्षित बेरोजगारी, बालश्रम, महिला उत्पीड़न, भूख, दहेज, सतीप्रथा आदि। ये ऐसी समस्याएं हैं, जो या तो अस्तित्वहीन हैं या जिनका कम होना समाज सशक्तिकरण में सहयोगी है, किन्तु समस्या नहीं।

3606. वर्तमान भारत में राज्य सबसे ज्यादा अस्तित्वहीन समस्याओं के समाधान में शक्ति लगाता है और वास्तविक समस्याओं के समाधान में सबसे कम। जबकि राज्य की प्राथमिकताओं के क्रम में वास्तविक समस्याओं का स्थान सबसे ऊपर तथा अन्य का क्रमशः बाद में होना चाहिए। समस्याओं के समाधान में हमारी प्राथमिकताएं निम्न क्रम में होनी चाहिए—(1) वास्तविक, (2) कृत्रिम, (3) प्राकृतिक, (4) भूमण्डलीय। भ्रम को पूरी तरह दूर कर देना चाहिए। भारत में सरकार विपरीत क्रम से प्राथमिकतायें निर्धारित करती है।

3607. भारत में चार प्रकार की समस्याएं हैं—(1) व्यक्तिगत (2) सामाजिक (3) आर्थिक और (4) राजनैतिक। व्यक्तिगत समस्याओं का एकमात्र समाधान अपराध नियंत्रण की गारंटी से है, जो राज्य को देना चाहिए। सामाजिक समस्याओं का एकमात्र समाधान समान नागरिक संहिता है। इसी तरह राजनैतिक समस्याओं का एकमात्र समाधान लोकस्वराज्य प्रणाली से और आर्थिक समस्याओं का एकमात्र समाधान कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्य वृद्धि है।

3608. दुनिया की अनेक बड़ी समस्याएं धर्म, राष्ट्र, अर्थ आदि के माध्यम से वर्चस्व प्राप्त करने की छीना-झपटी का परिणाम है। इनमें भी राज्य की भूमिका सर्वाधिक है।

3609. मुस्लिम साम्प्रदायिकता से सुरक्षा के लिए यदि हिन्दू साम्प्रदायिकता का सहारा लेना पड़ रहा है तो यह हमारी अल्पकालिक मजबूरी तो हो सकती है किन्तु समाधान नहीं। क्योंकि हिन्दुत्व में संगठन निरपेक्षता और अहिंसा के संस्कार बचपन से ही डाल दिये जाते हैं। ऐसे संस्कारों को बदलना बहुत कठिन होता है।

3610. समाधान में तीन प्रकार के लोग सक्रिय होते हैं—(1) संगठन प्रधान, (2) आचरण प्रधान, (3) विचार प्रधान। यदि परिवार के किसी सदस्य का पैर टूट जाए और ठीक होने का कोई माध्यम न हो तो बैसाखी का सहारा लेना मजबूरी है। किन्तु यदि पैर ठीक होना सम्भव है तो बैसाखी की जरूरत नहीं। पैर को ठीक कराना चाहिए। जब किसी समस्या के समाधान के लिए आचरण प्रधान या विचार प्रधान मार्ग उपलब्ध न हो तब संगठन प्रधान मार्ग का सहारा लिया जा सकता है अन्यथा संगठन प्रधान मार्ग उचित नहीं है।

3611. समस्या का एक समाधान न होकर हमें कई दिशाओं में एक साथ काम करना होगा। पानी को इतना महंगा कर दिया जाये कि पानी का अनावश्यक उपयोग कम हो जाये। साथ ही पानी का इस तरह एकत्रीकरण भी हो कि जल स्तर बढ़े। इसके साथ ही सरकारों को अपना तरीका भी बदलना चाहिए सरकार सारे काम अपने जिम्मे लेने की अपेक्षा न्याय और सुरक्षा के अतिरिक्त सारे काम लोगों को स्वतः करने दे और सरकार उस कार्य में सहायक की भूमिका में हो, उत्तरदायी की भूमिका में नहीं।

3612. मूलतः सुरक्षा और न्याय राज्य का दायित्व होता है तथा अन्य सभी प्रकार के कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तव्य। भारत में धूर्त लोग सुरक्षा और न्याय की अपेक्षा शिक्षा, स्वास्थ्य, धार्मिक, जातीय असमानता, बेरोजगारी आदि को राज्य का दायित्व बताकर राज्य को विचलित होने के लिए प्रेरित करते हैं, यही नहीं राज्य को भी वैसे ही कार्यों में मजा आता है।

3613. समस्याएं चरित्र के अभाव में नहीं बढ़ी हैं, बल्कि सत्ता के केन्द्रीकरण के कारण चरित्र लगातार गिरता चला गया।

362 भारत की प्रमुख समस्याएं और राजनीति के दस नाटक

3620. भारत में कुल ग्यारह प्रमुख समस्याएं मानी जाती हैं—(1) चोरी, डकैती, लूट, (2) बलात्कार, (3) मिलावट कमतौल, (4) जालसाजी धोखा, (5) हिंसा, बल प्रयोग, आतंक, (6) चरित्र-पतन, (7) भ्रष्टाचार, (8) साम्प्रदायिकता, (9) जातीय कटुता, (10) आर्थिक असमानता, (11) श्रम-शोषण। ग्यारह समस्याओं में से प्रथम पांच प्राकृतिक समस्याएं हैं तो अन्य छः कृत्रिम। ग्यारह समस्याओं में से प्रत्येक समस्या व्यापक रूप से घातक हैं।

प्राथमिकता का क्रम बनाना सम्भव नहीं है। सभी ग्यारह समस्याएं स्वतंत्रता के बाद लगातार बढ़ रही हैं या बढ़ाई जा रही हैं।

3621. दुनिया के सभी लोकतांत्रिक राजनेता सामाजिक एकता से भयभीत रहने के कारण फूट डालने को प्रमुख आधार मानते हैं। भारत भी एक लोकतांत्रिक देश होने के कारण इसी नीति पर चलता है। लोकतांत्रिक तरीके से यह उद्देश्य पूरा करने के लिए हर राजनेता दस प्रकार के नाटकों का सहारा लेता है—(1) समाज को कभी एक जुट न होने देना। समाज में आठ आधारों पर वर्ग-निर्माण तथा वर्ग-विद्वेष फैलाकर वर्ग-संघर्ष की स्थिति निर्मित करना। ये आठ आधार हैं—धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, आर्थिक स्थिति और उत्पादक-उपभोक्ता। (2) समाज शब्द को कमजोर करके राष्ट्र शब्द और राष्ट्र भाव को मजबूत करना। (3) समाज में वैचारिक बहस को पीछे करके भावनात्मक मुद्दों पर बहस जारी रखना। (4) अधिक से अधिक कानून बनाना जिससे आम नागरिक अपराध भाव से ग्रसित रहें। (5) आम नागरिकों को अक्षम, अयोग्य और अनपढ़ कहकर उनमें हीन भाव भरना। (6) किसी समस्या का समाधान विपरीत तरीके से करना—(क) आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान करना। (ख) सामाजिक और प्रशासनिक समस्याओं का आर्थिक समाधान करना। (ग) प्रशासनिक और आर्थिक समस्याओं का सामाजिक समाधान करना। (7) समस्याओं का ऐसा समाधान करना कि उस समाधान से ही किसी नई समस्या का जन्म हो। (8) बिल्लियों के बीच बन्दर की ऐसी भूमिका बनाना कि क. बिल्लियों कि रोटी कभी बराबर न हो, ख. बन्दर हमेशा रोटियों

को बराबर करता हुआ दिखे, किन्तु करे नहीं। ग. छोटी रोटी वाली बिल्ली के मन में असंतोष की ज्वाला जलती रहे। (9) आर्थिक असमानता प्रजातांत्रिक तरीके से बढ़ती रहे इसके लिए:- क. जो वस्तु गरीब लोग अधिक और अमीर लोग कम मात्रा में प्रयोग करें उन पर अप्रत्यक्ष कर लगाना और प्रत्यक्ष सब्सिडी देना। ख. जो वस्तु अमीर लोग अधिक और गरीब लोग कम मात्रा में प्रयोग करें उन पर प्रत्यक्ष कर लगाना और अप्रत्यक्ष सब्सिडी देना। (10) विपरीत प्राथमिकताएं निर्धारित करना, वास्तविक समस्याओं को अंतिम तथा प्राथमिक और अस्तित्वहीन समस्याओं के समाधान को सर्वोच्च प्राथमिकता देना।

3622. भारत में इस समय असंख्य नियम और कानून हैं। कानूनों के ढेर में आवश्यक कानूनों का भी महत्व समाप्त हो गया है।

3623. पूरी दुनिया में समाज को गुलाम बनाकर रखने के लिए राजनीति आठ आधारों का उपयोग करती है-

(1) संचालक और संचालित के बीच दूरी लगातार बढ़ती रहे।
(2) निष्कर्ष निकालने में विचार-मंथन की जगह, विचार प्रसार का अधिक प्रभाव हो।
(3) वैचारिक मुद्दों की जगह भावनात्मक मुद्दों पर बहस बढ़े।
(4) मानव स्वभाव में स्वार्थ वृद्धि होती रहे।
(5) मानव स्वभाव में तापवृद्धि भी होती रहे।
(6) राजनीति और समाज सेवा का व्यवसायीकरण हो जाये।
(7) भौतिक पहचान कठिन हो जाये।
(8) समाज टूटकर वर्ग में बदल जाये।

363 निजीकरण

3630. राजनैतिक प्रशासनिक व्यवस्था का व्यापार व्यवस्था पर सम्पूर्ण अधिकार राष्ट्रीयकरण होता है। प्रशासन के हस्तक्षेप से मुक्त व्यापार निजीकरण है। अपनी आंतरिक सीमा में प्रशासनिक आर्थिक व्यवस्था की छूट तथा परिवार, गाँव, जिले को अपनी सीमा में प्रशासनिक आर्थिक स्वतंत्रता समाजीकरण है। राष्ट्रीयकरण बहुत घातक व्यवस्था है। किसी भी प्रकार का राष्ट्रीयकरण नहीं होना चाहिए। निजीकरण राष्ट्रीयकरण की तुलना में बहुत अच्छी व्यवस्था है। समाजीकरण सबसे अच्छी व्यवस्था है। भ्रष्टाचार दूर करने में निजीकरण बहुत सहायक होता है।

3631. साम्यवादी निजीकरण के सदा ही खिलाफ रहे हैं तथा अन्य राजनैतिक दल भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निजीकरण के विरुद्ध ही रहते हैं।

3632. निजीकरण से गरीब और अमीर के बीच की दूरी बढ़ती है क्योंकि स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में गरीब और श्रमजीवी पिछड़ेगा ही। इसलिए हम निजीकरण के साथ-साथ कृत्रिम ऊर्जा मूल्य वृद्धि भी आवश्यक मानते हैं।

364 केन्द्रीकरण

3640. तीन विषयों का केन्द्रीकरण घातक होता है—(1) राजनैतिक शक्ति का लोक से निकलकर तंत्र के पास इकट्ठा होना। (2) आर्थिक शक्ति का गरीबों के हाथ से निकलकर अमीरों के पास इकट्ठा होना। (3) रोजगार के लाभ का श्रम के हाथ से निकलकर बुद्धि के पास इकट्ठा होना। वर्तमान भारत में तीनों केन्द्रित हो रहे हैं। तीनों ही केन्द्रीकरण लोकतंत्र को लक्ष्य नहीं मानते बल्कि केन्द्रीकरण का

मार्ग मानते हैं। तीनों ही व्यक्ति के मौलिक अधिकारों को स्वीकार नहीं करते।

3641. सत्ता का अकेन्द्रीकरण या अधिकारों का विकेन्द्रीकरण ही व्यवस्था का एकमात्र मार्ग है।

3642. अधिकार और शक्ति बिल्कुल भिन्न अर्थ रखने वाले शब्द हैं। किसी व्यक्ति के अधिकारों का प्रयोग जब किसी अन्य को मिलता है तब वह अधिकार दूसरे व्यक्ति की शक्ति अर्थात् पावर बन जाता है। सत्ता अपनी शक्ति उसकी मूल इकाई को सौंप देती है उसे अधिकारों का विकेन्द्रीकरण कहते हैं किन्तु जब सत्ता अपनी शक्ति उसकी मूल इकाई को न सौंपकर अपने अधीन किसी अन्य इकाई को सौंपती है उसे सत्ता का विकेन्द्रीकरण कहते हैं।

3643. अधिकारों के विकेन्द्रीकरण से भ्रष्टाचार न्यूनतम हो जायेगा। इससे राजनीति पर समाज का नियंत्रण बढ़ेगा। इससे आम नागरिक मजबूत होगा और उसे राजनैतिक गुलामी से मुक्ति मिलेगी।

3644. व्यापारियों के हाथ में व्यापार और उसका लाभ केन्द्रित हो जाये यह भी तो ठीक नहीं। सत्ता का केन्द्रीकरण घातक है तो धन का केन्द्रीकरण भी तो घातक है। इसलिए आर्थिक और राजनैतिक सत्ता पूरी तरह परिवार और गाँव के पास दे देनी चाहिए।

3645. केन्द्रीकरण या तानाशाही कभी लोकतंत्र से अच्छी नहीं हो सकती। लोकतंत्र कभी लोकस्वराज्य से अच्छा नहीं हो सकता। लोकतंत्र में भी बल प्रयोग का समर्थन कभी विचार-मंथन से ऊपर नहीं हो सकता।

3646. यदि किसी देश में तानाशाही होती है तो राष्ट्रीयकरण से देश या राज्य तरक्की करता है और समाज गुलाम हो जाता है किन्तु यदि

किसी देश में लोकतंत्र है तो राष्ट्रीयकरण भ्रष्टाचार का केन्द्र बन जाता है। भारत ऐसे ही भ्रष्टाचार का केन्द्र बना है जहां की आर्थिक व्यवस्था में पूरी तरह सरकार का नियंत्रण है। यदि राष्ट्रीयकरण किसी मामले में नहीं भी है, तो भी सरकार का नियंत्रण इतना अधिक है कि भ्रष्टाचार होना ही है। किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार से मुक्ति के लिए सम्पूर्ण निजीकरण ही एकमात्र समाधान है।

3647. सारी दुनिया में व्यवस्था का केन्द्रीकरण हो रहा है। राजनीतिक सत्ता, सामाजिक तथा पारिवारिक व्यवस्था को अपने नियंत्रण में ले रही है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी संकुचित होती जा रही है।

3649. सत्ता का अकेन्द्रीकरण भ्रष्टाचार उन्मूलन का सबसे सरल उपाय है। शिक्षा व्यवस्था शासन के हाथ से हटकर समाज के हाथ में हो तो शिक्षा का स्तर ठीक हो जायेगा। सत्ता का अकेन्द्रीकरण भ्रष्ट और अपराधी राजनेता अफसर गठजोड़ का सफल इलाज है।

3650. सत्ता के अकेन्द्रीकरण के लिए तीन कार्य किये जा सकते हैं— (1) अधिकतम निजीकरण के पक्ष में जनमत जागरण, (2) ग्रामसभा सशक्तिकरण, (3) सत्ता का विकेन्द्रीकरण। जो व्यक्ति या संगठन अकेन्द्रीकरण या सत्ता के विकेन्द्रीकरण के विरुद्ध हैं तथा पंचायत व्यवस्था को बदनाम करते हों, उनका भी विरोध होना चाहिए।

3651. सत्ता के अकेन्द्रीकरण के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं है। सुशासन स्वशासन के बाद ही आ सकता है। सुशासन की अपेक्षा स्वशासन का मार्ग अधिक अच्छा है।

3652. अकेन्द्रीकरण के लिए कानून बनाना नहीं होता है, कानून हटाने होते हैं। जितने अनावश्यक कानून हटते जाएंगे उतना ही भ्रष्टाचार घटता जायेगा।

365 उदारीकरण

3653. उदारीकरण दो प्रकार का होता है—(1) राजनैतिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण (2) आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण।

3654. जब आर्थिक सत्ता विकेन्द्रित होती है किन्तु तंत्र की सत्ता विकेन्द्रित नहीं होती, तब उसके कुछ स्वाभाविक दुष्परिणाम भी होते हैं।

3655. भ्रष्टाचार आर्थिक उदारीकरण का स्वाभाविक परिणाम होता है। राजनैतिक शक्ति यदि केन्द्रित होगी और आर्थिक शक्ति विकेन्द्रित होगी तो इसके अतिरिक्त किसी अन्य परिणाम की आशा करना व्यर्थ है।

3656. अकेन्द्रीकरण ही इस समस्या का एकमात्र समाधान है, किन्तु यदि वह वर्तमान में सम्भव न हो, तो संपूर्ण उदारीकरण तो होनी ही चाहिए, जिसमें राज्य शक्ति और अर्थशक्ति का अधिकतम विकेन्द्रीकरण होना है।

366 समाजीकरण

3660. पूंजीवाद की अपेक्षा विकृत समाजवाद अधिक घातक है। इसलिए पूंजीवाद के स्थान पर समाजीकरण प्रणाली पर सोचा जाना उचित होगा।

3661. मैं समाज को सर्वोच्च मानता हूं और अर्थ व्यवस्था सहित सब प्रकार के निर्णय करने के अधिकार का अकेन्द्रीकरण चाहता हूं। इस अकेन्द्रीकरण का नाम आप समाजीकरण दे सकते हैं। आदर्श स्थिति तो सम्पूर्ण समाजीकरण ही है जिसमें अन्य मामलों के अतिरिक्त आर्थिक स्वतंत्रता से भी राज्य का हस्तक्षेप समाप्त हो कर समाज का नियंत्रण होना चाहिए।

3662. समाजीकरण का अर्थ होता है- पारिवारिक अर्थ व्यवस्था पर परिवार का नियंत्रण, ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गाँव का नियंत्रण। कुछ चुने हुए आर्थिक मुद्दों पर भी सरकार का नियंत्रण न होकर अर्थपालिका का नियंत्रण। सरकार आर्थिक मामलों में टैक्स लगाने और खर्च करने के लिए अर्थपालिका के समक्ष परतंत्र रहे।

3663. समाजीकरण में सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के संचालन में राज्य की जगह गांव को अपनी आंतरिक स्वतंत्रता होनी चाहिए। यह व्यवस्था आदर्श हो सकती है। इसे लोकस्वराज्य शब्द से भी जोड़कर देखा जा सकता है।

3664. समाजीकरण में राज्य किसी सामाजिक इकाई की आंतरिक स्वतंत्रता में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता बल्कि ऐसी स्वतंत्रता के सुरक्षा की गारंटी देता है।

3665. यदि समाजसेवी संस्थाओं या संगठनों में भ्रष्टाचार दो प्रतिशत से अधिक हो जाये तो उनका तत्काल निजीकरण कर देना चाहिए। अधिकांश भ्रष्ट लोग निजीकरण का सबसे अधिक विरोध करते हैं।

3666. यद्यपि सरकारीकरण का समाधान निजीकरण है किन्तु निजीकरण आदर्श व्यवस्था नहीं है। आदर्श व्यवस्था तो समाजीकरण है जिसका अर्थ होता है कि समाज की प्रत्येक इकाई को अपनी आर्थिक नीतियों के संबंध में निर्णय लेने की पूरी स्वतंत्रता हो।

3667. मेरा स्पष्ट मत है कि सबसे अच्छी व्यवस्था और आदर्श स्थिति तो समाजीकरण है और सबसे बुरी स्थिति राष्ट्रीयकरण है। बीच में निजीकरण है। वर्तमान में राष्ट्रीयकरण से छुटकारा पाने के लिए अल्पकाल में निजीकरण को भले ही प्रोत्साहित किया जाये किन्तु दीर्घकालीन नीति तो समाजीकरण ही है। सभी समस्याओं का यही समाधान है।

370 भारत विभाजन

3700. कांग्रेस पार्टी सत्ता लोलुप थी। नेहरू स्वयं गांधी की छवि का लाभ उठाना चाहते थे, किन्तु गांधी की विचारधारा से उनका जीवनभर विरोध रहा। इसलिए कांग्रेस पार्टी ने संघ के गांधी विरोधी प्रचार से अपने को किनारे कर लिया। गांधीवादी धीरे-धीरे साम्यवादियों के चंगुल में फंस गये, क्योंकि नेहरू ने साम्यवाद और इस्लाम के साथ भी समझौता कर लिया था। इसलिए वे संघ का विरोध करते रहे, किन्तु गांधी विचारों के समर्थन की जगह नेहरू विचारों का समर्थन करते रहे। संघ ने विभाजन का सारा दोष गांधी पर डालने में सारी ताकत लगा दी, और गांधीवादियों ने विभाजन के मामले में गांधी का कोई बचाव नहीं किया। क्योंकि गांधीवादी नेहरू और पटेल की छवि बचाने में लगे रहे।

3701. भारत के द्वारा पाकिस्तान और बंगलादेश मुसलमानों को दे देने के बाद भी, यहां मुस्लिम समस्या ज्यों की त्यों बनी हुई है। इस समस्या को बढ़ाने का काम उस विचारधारा ने किया, जो यह मानता था कि गांधी हत्या के बाद गृह युद्ध हो जाएगा, और भारत को हिन्दू राष्ट्र बना देंगे। ऐसे लोगों के सपने चूर करने के राजनैतिक प्रयत्नों में इस्लामिक साम्प्रदायिकता बढ़ती चली गयी, और इसका मुख्य कारण नेहरू परिवार, संघ परिवार और सावरकरवादी हिन्दू महासभा की साम्प्रदायिक राजनीति में खोजा जाना चाहिए।

3702. भारत विभाजन उचित नहीं था। गांधी विभाजन के विरुद्ध थे किन्तु साम्प्रदायिक शक्तियां और राजनीतिक स्वार्थ के एक-दूसरे से जुड़ जाने की स्थिति में गांधी विचार का परास्त होना निश्चित हो गया था। स्वतंत्रता के पूर्व भी यही हुआ और स्वतंत्रता के बाद भी।

इसलिए भारत विभाजन उस समय की मजबूरी थी। जिन्ना तथा सावरकर ने अंग्रेजों के साथ मिलकर ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि कोई उपाय नहीं था। गांधी भारत विभाजन के खिलाफ थे। भारत विभाजन कराने में सरदार पटेल की भूमिका सबसे अधिक रही। सरदार पटेल ने कहीं भी विभाजन का खुलकर विरोध नहीं किया। नेहरू और पटेल की सहमति के बाद गांधी मजबूर हो गए। गांधी हत्या के बाद सभी नेताओं ने उचित समझा, कि विभाजन का सारा दोष गांधी पर डाल दिया जाए। नेहरू को बचाना कांग्रेस की मजबूरी थी तो सावरकर और पटेल को बचाना संघ की।

3703. भारत की स्वतंत्रता में जिन्ना, संघ, अम्बेडकर और कम्युनिस्टों की कोई भूमिका नहीं थी। जहां गांधी सामाजिक स्वतंत्रता को लक्ष्य मानते थे और राष्ट्रीय स्वतंत्रता को मार्ग, वहीं ये लोग संगठन सशक्तिकरण को सर्वोच्च प्राथमिकता मानते थे और राष्ट्रीय स्वतंत्रता को मार्ग। सामाजिक स्वतंत्रता गांधी के अतिरिक्त किसी का लक्ष्य नहीं था। पटेल, नेहरू आदि सभी नेता राष्ट्रीय स्वतंत्रता को ही लक्ष्य मानते थे, देश के सभी नेता गांधी विचारों के पूरी तरह विरुद्ध थे। वे दिल से गांधी की एक भी बात नहीं मानते थे। किसी भी नेता का जनता में कोई प्रभाव नहीं था, इसलिए डरकर वे गांधी जी की हर बात मान जाते थे। किन्तु किसी भी आंदोलन की सफलता के लिए राजनेताओं को साथ लेना एक मजबूरी है, और राजनेता ही हमेशा धोखा देते हैं। इस विषय में गांधी, जयप्रकाश तथा अन्ना हजारे उदाहरण हैं।

371 कश्मीर समस्या और समाधान

3710. कश्मीर समस्या का समाधान न चर्चाओं से होना है, न विकास से

और न ही बन्दूक से। चर्चाएं कश्मीरी मुसलमानों के बढ़े मनोबल को नहीं तोड़ सकती। विकास के प्रयत्नों को भी वे हमारी मजबूरी मानते हैं और बन्दूक उसका समाधान इसलिए नहीं है कि मरने की उनको विशेष चिन्ता नहीं। इसलिए इस समस्या का कश्मीर में तो समाधान यही है कि हम न थकें, न परेशान हों। चर्चा, विकास, बंदूक का मिला-जुला प्रयास करते रहें और उन्हें थकने के लिए मजबूर कर दें।

3711. कश्मीर समस्या भारत और पाकिस्तान की राजनैतिक सत्ता के खेल का मैदान है, जब चाहा तब खेल लिया और जब चाहा तब शिमला में बैठकर आराम कर लिया। कश्मीर समस्या का समाधान करने में भारत और पाकिस्तान की सरकारों की रूचि नहीं है। दोनों देशों की जनता को चाहिए कि वह अपने-अपने देशों की सरकारों को कश्मीर समस्या का कोई हल निकालने के लिए मजबूर कर दे। भारत ने ऐसी प्रक्रिया शुरू कर दी है।

3712. कश्मीर समस्या के समाधान की पहली शर्त है कि वहां धर्म प्रधान मुसलमान और संगठन प्रधान मुसलमान के बीच वैसा ही विभाजन हो जैसा पाकिस्तान में है। यही कश्मीर समस्या का सबसे अच्छा समाधान है। दूसरी ओर पूरे भारत में साम्प्रदायिकता और धर्म निरपेक्षता के बीच ध्रुवीकरण हो जिसमें शान्ति प्रिय हिन्दू, मुसलमान, इसाई एक साथ हो तथा साम्प्रदायिक हिन्दू-मुसलमान-इसाई एक साथ।

3713. आज भी कट्टरपंथी हिन्दू कश्मीर के मुसलमानों में दो धाराएं बनाने में सबसे बड़े बाधक हैं। किसी तरह यदि प्रयत्न करके कुछ लोग तैयार भी होते हैं, तो इनका एक अभियान उन सबको पुनः एकजुट

कर देता है। मेरे विचार में कश्मीर समस्या के पहले समाधान के रूप में कट्टरपंथी हिन्दुओं को कश्मीर मुद्दे पर बोलने या अभियान चलाने से पूरी तरह रोक देना चाहिए।

3714. कश्मीर की समस्या कश्मीरी आतंकवादियों को संतुष्ट करके नहीं सुलझाई जा सकती किन्तु यह भी सत्य है कि कश्मीर में अंधाधुंध बलप्रयोग भी उचित नहीं है।

3715. कश्मीर समस्या को साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण के आधार पर निपटाने की बजाय, आतंकवाद और समाजवाद के बीच ध्रुवीकरण कराकर होना चाहिए। दोनों मार्गों के बीच चयन करने में जल्दबाजी करना कई बार नुकसानदायक भी होता है।

3716. मैं समझता हूं कि कश्मीर समस्या, मंदिर, साम्प्रदायिकता आदि का समाधान संघ की सोच से हटकर भी शान्तिपूर्वक करना सम्भव है।

3717. यदि अटल जी के समय कश्मीर समस्या का समाधान हो गया होता तो ज्यादा अच्छा होता। कश्मीर समस्या भारत और पाकिस्तान दोनों को बर्बाद कर रही है। यदि सम्मानपूर्ण तरीके से कुछ ले-देकर समझौता हो जाये तो हमें अपने नेताओं की नीयत पर भरोसा करना चाहिए।

3718. यदि किसी अन्यायी के साथ कोई अन्य अन्यायी अन्याय करता है, तो या तो हमें चुप रहना चाहिए या कमजोरों का साथ देना चाहिए। न्याय-अन्याय महत्वपूर्ण नहीं। कश्मीर समस्या के समाधान को न्याय-अन्याय के तराजू पर नहीं तौलना चाहिए।

372 कश्मीर की समस्या भारत और पाकिस्तान

3720. कश्मीर एक संवेदनशील मुद्दा है जिसे भाईचारा से निपटाया जाये, इस धैर्य के नाम पर कश्मीर के मुसलमान कब तक शेष भारत

को ब्लैकमेल करते रहेंगे। कश्मीर की समस्या भी पाकिस्तानी विस्तारवाद न होकर इस्लामिक विस्तारवाद के साथ जुड़ी है, जिसके साथ पाकिस्तान है। कश्मीर संबंधी भारत सरकार की नीति सामयिक दिखती है। कश्मीर की समस्या न दो देशों की समस्या है, न दो धर्मों की और न ही न्याय-अन्याय की। कश्मीर की समस्या शुद्ध रूप से इस्लामिक विस्तारवाद के विरुद्ध भारत की सुरक्षा का मामला है। दुनिया इस्लामिक विस्तारवाद के खतरे से जूझ रही है। इस विस्तारवाद ने आतंकवाद का मार्ग पकड़ लिया है।

3721. यह हमारी नासमझी है कि हम इस्लाम और पाकिस्तान को एक मानकर चल रहे हैं। इस्लाम में तीन प्रकार के लोग हैं— (1) कट्टरपंथी (2) मध्यमार्गी (3) नरमपंथी। पाकिस्तानी सेना में नरमपंथी अल्पमत में है और सरकार में बहुमत में। कट्टरपंथी मुसलमान नरमपंथी मुसलमानों को कमजोर करके सत्ता हथियाना चाहते हैं।

3722. कश्मीर विवाद मुस्लिम कट्टरवाद विस्तार योजना का परिणाम है, पाकिस्तान के विस्तारवाद का नहीं। पाकिस्तान एक राष्ट्र के रूप में इस समस्या से सिर्फ लाभ उठाना चाहता है। कश्मीर की लड़ाई दुनिया का कट्टरपंथी मुस्लिम समूह लड़ रहा है। कश्मीर का कट्टरपंथी समूह उसमें शामिल है। कश्मीर का मध्यम वर्ग भी उसमें शामिल हो गया है। कश्मीर के उदारवादी मुसलमान कम भी हैं और दब भी गये हैं। भारत के कट्टरवादी मुसलमान भी कश्मीर के कट्टरवादियों के पक्ष में हैं। उन्हें पाकिस्तान से मतलब नहीं। अब नयी परिस्थितियों में कुछ बदलाव की सम्भावना दिखने लगी है।

3723. कश्मीर की समस्या भारत और पाकिस्तान जैसे दो देशों के बीच की समस्या न होकर हिन्दू और मुसलमान जैसे दो धर्मों के बीच की समस्या है। कश्मीर समस्या दो देशों के बीच कोई बॉर्डर विवाद नहीं है बल्कि विश्व की दो संस्कृति दो विचारधाराओं के बीच का विवाद है। इस्लाम का मूल चरित्र संगठन प्रधान है और हिन्दुत्व का आचरण प्रधान।

3724. नरमपंथी धड़ा अल्पसंख्यक है और दुनिया के साथ तालमेल करके चलता है, वहीं उग्रवादी धड़ा मजबूत है और तालमेल को घातक मानता है। कश्मीर समस्या से पाकिस्तान पिण्ड छुड़ाना चाहता है किन्तु उसकी मजबूरी है, कि वह उग्रवादी बहुसंख्यकों को नाराज नहीं कर सकता। इस तरह वर्तमान में कश्मीर समस्या संगठन प्रधान मुसलमान और भारत सरकार के बीच है, न कि पाकिस्तान सरकार और भारत के बीच। स्पष्ट है कि पाकिस्तान सरकार पर अब तक उग्रवादियों का कब्जा नहीं हुआ है। हम जितना ही पाकिस्तान के प्रति भाईचारा बनायेंगे उतना ही उग्रवाद और पाकिस्तान के बीच टकराव बढ़ेगा।

3725. कश्मीर का आतंकवाद मुस्लिम आतंकवाद नहीं है, पाकिस्तानी आतंकवाद भी नहीं है, बल्कि आतंकवादी उग्रवादी मुसलमानों के विस्तारवाद का परिणाम है, जिससे भारत और पाकिस्तान दोनों एक साथ जूझ रहे हैं। पाकिस्तान विस्तारवाद के उद्देश्य से कश्मीर में हस्तक्षेप नहीं कर रहा, बल्कि वह तो अपने उग्रवादी तत्वों को संतुष्ट करने के लिए कश्मीर में कुछ सक्रियता का नाटक करता है।

3726. कश्मीर का मसला भारत के लिए न्याय का आधार नहीं हो सकता, बल्कि सुविधा का आधार हो सकता है, क्योंकि पाकिस्तान कभी

किसी मामले में न्याय की बात नहीं करता बल्कि हमेशा ताकत की बात करता है। सबसे बड़ा खतरा यह है कि टकराव का कारण न कश्मीर है, न पाकिस्तान, बल्कि टकराव का कारण है इस्लाम का व्यवहार एवं विस्तारवादी चरित्र।

3727. यह तो विचारणीय है कि कश्मीर पर जिस तरह भारत का दावा है, उस तरह पाकिस्तान का दावा नहीं हो सकता। क्योंकि न तो कश्मीर कभी पाकिस्तान का अंग रहा है, न कभी किसी रूप में कश्मीर का पाकिस्तान में विवादास्पद विलय भी हुआ है। सच्चाई यह है कि विवाद तो कश्मीर और भारत के बीच में हो सकता था जिसमें पाकिस्तान कोई पक्ष नहीं हो सकता। पता नहीं यू.एन.ओ. ने पाकिस्तान को किस आधार पर पक्षकार बना लिया।

3728. यदि व्यावहारिक धरातल पर आकलन करें, तो कश्मीर समस्या भावनात्मक नहीं बल्कि वास्तविक है। कश्मीर समस्या भारत और पाकिस्तान के बीच की कोई भूभाग तक सीमित समस्या नहीं है, जैसा कि आमतौर पर लोग मानते हैं। मेरे विचार में तो पाकिस्तान इसमें कोई पक्षकार है ही नहीं, बल्कि वह तो इस्लामिक देश होने के नाते तथा इस विवाद में लाभ उठाने तक सीमित है। यह भ्रम है कि कश्मीर विवाद तकनीकी कारणों से है। सच्चाई यह है कि कश्मीर विवाद इस्लामिक विस्तारवाद का एक युद्ध क्षेत्र है, और वह भारत के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है। यही कारण है कि कश्मीर मुददे पर मैं भारत पाकिस्तान के बीच अथवा न्याय-अन्याय के बीच कोई विचार नहीं करना चाहता। बल्कि मैं इस बात से सहमत हूं कि किसी भी स्थिति में कश्मीर को भारत में बनाये रखना चाहिए।

373 कश्मीर और 370

3730. धारा 370 कश्मीर का अधिकार नहीं था, बल्कि भारत के केन्द्र के साथ एक प्रदेश का आंतरिक समझौता था। कश्मीर में धारा 370 का मामला अब पूरी तरह समाप्त हो चुका है। धारा 370 हटाते समय नेहरू परिवार और सोनिया, राहुल की कांग्रेस ने जैसी हाय तौबा मचाई उससे स्पष्ट दिखने लगा कि कश्मीर समस्या जान-बूझकर नेहरू के द्वारा पैदा की गयी थी।

3731. कश्मीर का भारत में विलय किन्ही शर्तों के आधार पर नहीं हुआ था। बाद में नेहरू ने बुरी नीयत से विलय के साथ धारा 370 को जोड़ दिया जबकि दोनों का कालखण्ड अलग-अलग है।

373 कश्मीर के संबंध में भारतीय मुसलमान

3732. कश्मीर के संबंध में भारतीय मुसलमानों के बहुमत की निष्ठा या तो निष्क्रिय रही है या संदेहात्मक।

3733. भारत के मुसलमानों में भी बहुत बड़ा वर्ग, अब सहजीवन की आवश्यकताओं को भी समझने लगा है। वह मानने लगा है कि उसे भारत में ही रहना है और कश्मीर के नाम पर किसी प्रकार का विवाद न ही न्यायसंगत है, न ही उसके हित में है। ऐसे बदले वातावरण में अब कुछ सांप्रदायिक तत्व बातचीत से समाधान की वकालत करते दिखते हैं।

373 कश्मीर समस्या

3734. भारत और पाकिस्तान की प्रगति का बहुत बड़ा हिस्सा, कश्मीर समस्या की बलि चढ़ जाता है। स्वतंत्रता के पूर्व अंग्रेजों ने गृह युद्ध के उद्देश्य, से मुसलमानों और हिन्दुओं के दो अलग-अलग गुट खड़ा करके उन्हें 'शह' देनी शुरू कर दी थी। जब गांधीजी के

नेतृत्व में आम हिन्दू और मुसलमान स्वतंत्रता की लड़ाई में एकजुट था, तब ये लोग हिन्दू और मुसलमानों में नफरत के बीज बो रहे थे। वीर सावरकर को छोड़कर इनमें से किसी की उल्लेखनीय भूमिका स्वतंत्रता संघर्ष में नहीं रही। स्वतंत्रता के अंतिम काल तक मुसलमानों का बड़ा हिस्सा, अपने साम्प्रदायिक नेतृत्व के पीछे इकट्ठा हो गया, परन्तु हिन्दू नहीं हुआ। अतः भारत स्वतंत्र हो गया। यदि हिन्दू भी इकट्ठा हो जाता तो भारत गृह युद्ध में फँस जाता और अंग्रेजों की चाल सफल हो जाती।

3735. भारत का बंटवारा दो भाईयों के बीच का बंटवारा नहीं था, बल्कि एक संयुक्त परिवार से एक भाई का अलग हो जाना था।

3736. भारत के आम मुसलमानों से भारत या पाकिस्तान में से एक चुनने का जनमत संग्रह नहीं हुआ, बल्कि राजाओं से पूछा गया कि वे भारत में रहना चाहते हैं या पाकिस्तान में अथवा स्वतंत्र। हैदराबाद के निजाम और कश्मीर की रियासतें स्वतंत्र थी। स्वतंत्रता के बाद तक कश्मीर के राजा हिन्दू और बहुमत मुसलमान था जबकि हैदराबाद इसका ठीक उलटा। हैदराबाद पर भारत ने आक्रमण किया और कश्मीर पर पाकिस्तान ने। कश्मीरी मुस्लिम बहुमत हिन्दू राजा के साथ में था। अतः विलय के बाद भी जनमत संग्रह स्वीकार कर लिया गया। इसी समय साम्प्रदायिक हिन्दुओं ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी, जिससे कश्मीर सहित भारत के मुसलमानों में शंका पैदा हो गई। कांग्रेस ने साम्प्रदायिक हिन्दुओं को दबाने की जगह कट्टरवादी मुसलमानों को प्रोत्साहित करने की गलत नीति अपनाई। इससे हिन्दू मुसलमानों के बीच तो संतुलन बना, परन्तु कट्टरवादी तत्वों के हौसले बढ़ते चले गए। कांग्रेस पार्टी

निरंतर मुसलमानों को एकपक्षीय प्रश्रय देती रही, और कट्टरवादी हिन्दुओं को प्रतिक्रिया जागृत करने का सुअवसर मिलता रहा। कश्मीर के भारत में विलय के बाद भारत ने कुछ शर्ते स्वीकार की थी। दूसरी ओर जनमत संग्रह की स्वीकृति के बाद, हमारा पक्ष कश्मीर की जनता की इच्छा पर निर्भर था। ऐसे समय पर श्यामा प्रसाद मुखर्जी का शर्तों को समाप्त करने का आह्वान करते हुए कश्मीर में प्रवेश करना, गिरफ्तारी देना तथा शहीद हो जाना कितना उचित था? कितना प्रासंगिक और भारत की समस्याओं में कितना प्राथमिक, यह मैं आज तक नहीं समझ सका? श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कश्मीर में प्रवेश करके एक भूल की थी, जिसका दुष्परिणाम हम भुगतते रहे। भारत सरकार ने कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा देकर कोई भूल की है, तो भारत में रहकर भारत सरकार के विरुद्ध कोई आंदोलन किया जा सकता था, न कि कश्मीर में प्रवेश करके। मेरे विचार में तो कश्मीर समस्या का उलझाव श्री मुखर्जी की अनावश्यक जल्दबाजी से भी जुड़ा हो सकता है।

3737. अखंड भारत का नारा सिर्फ शब्दजाल है। यदि ऐसा होने की सम्भावना बनने लगे तो भाजपा सबसे अधिक विरोध करेगी, क्योंकि भारत में मुसलमानों का वोट (मत) चौदह प्रतिशत से बढ़कर बीस प्रतिशत हो जाएगा। कश्मीर समस्या किसी भी रूप से भारत पाकिस्तान का विवाद नहीं है। यह समस्या पूरी तरह इस्लामिक विस्तारवाद से जुड़ी हुई है। न्याय-अन्याय की समीक्षा आलोचक या विरोधी तक सीमित होती है, शत्रु के लिए नहीं होती। इस्लामिक विस्तारवाद वर्तमान समय में विरोधी नहीं, बल्कि शत्रुवत है। कश्मीर समस्या पर चर्चा करते समय न्याय

की बात को किनारे करके यथार्थ स्थिति पर सोचना चाहिए। इस विषय में मैं प्रशान्त भूषण से सहमत नहीं हूं। कश्मीर छोड़ने के बाद ऐसा ही कारण पंजाब में हो सकता है क्योंकि साम्प्रदायिक विस्तारवाद को सिर्फ कुचला ही जा सकता है, कभी भी संतुष्ट नहीं किया जा सकता। पण्डित नेहरू का मुसलमानों के प्रति विशेष झुकाव कश्मीर समस्या के उलझने का मुख्य कारण बना। पण्डित नेहरू ने पटेल की एकदम नहीं सुनी। कश्मीर के सम्बन्ध में नेहरू ने अम्बेडकर की भी अवहेलना की। कांग्रेस पार्टी सत्तर वर्षों से पण्डित नेहरू की ही नीतियों पर चलती रही है। अब मोदी ने कश्मीर समस्या का समाधान किया है।

3738. कश्मीर की समस्या भारत की राष्ट्रीय समस्या है, सामाजिक नहीं। कश्मीर भारत में रहे या पाकिस्तान में या स्वतंत्र यह समाज का विषय नहीं है क्योंकि यह सामाजिक समस्या नहीं है, किन्तु यह राष्ट्र और सरकार के लिए चिन्ता का विषय है। राजनीतिज्ञ समाज को धोखा देने के लिए ऐसी राष्ट्रीय या धार्मिक समस्याओं को आवश्यकता से अधिक तूल देते रहते हैं। राष्ट्रीय चिन्तन तो कश्मीर को अपने साथ रखने के पक्ष में दिखता है और मानवीय पक्ष कश्मीर पर झुककर भी समझौते के पक्ष में रहता है। यह तो कश्मीर का सैद्धांतिक पक्ष है इसका व्यावहारिक पक्ष इसके ठीक विपरीत है। कश्मीर का टकराव दो राष्ट्रों के बीच का टकराव न होकर इस्लामिक विस्तारवाद से भारत का टकराव है।

3739. कश्मीर समस्या दो न्याय प्रधानों के बीच का टकराव नहीं है। जो कट्टरपंथी मुसलमान समूह येन-केन-प्रकारेण अपनी विस्तारवादी नीति को बढ़ाना चाहता है, उसे येन-केन-प्रकारेण कश्मीर से किसी

हालत में आगे न बढ़ने दें। यदि कश्मीर में जरा भी कमजोरी हुई तो विस्तारवादी इस्लामिक शक्तियां तुरंत ही आगे बढ़कर मोर्चा संभाल लेंगी।

3740. वर्तमान समय में पश्चिमी जगत और इस्लामिक कट्टरवाद के बीच छत्तीस की दूरी बढ़ती ही जा रही है। कश्मीर मामले में चीन कभी हमारा विश्वसनीय साथी नहीं हो सकता। साम्यवादी, समाजवादी, संघ परिवार, इस्लामिक संगठित समूह यदि सब भिन्न-भिन्न भाषाओं में एक ही शब्द निकालते हैं जिसका अर्थ होता है येन-केन-प्रकारेण पश्चिम विरोध। वर्तमान समय में वैसे तो हर क्षेत्र में पश्चिम विरोध भारत के लिए घातक है, किन्तु कश्मीर मामले में ये विशेष रूप से हानिकारक है।

3741. भारत के 70 वर्षों के शासनकाल में अल्पसंख्यकों और सत्तारूढ़ों के बीच, अघोषित समझौता होने के कारण कश्मीर समस्या फलती-फूलती रही।

3742. सारी दुनिया के लिए कश्मीर एक लिटमस टेस्ट की तरह है। आज तक दुनिया में मुसलमानों ने कहीं भी हार नहीं मानी, भले ही कितना भी लम्बा युद्ध क्यों न चला हो। कश्मीर में उनके अस्तित्व की लड़ाई है। यहां का वातावरण उनके लिए परिस्थितियों के विपरीत है। दुनिया भर में उनकी विश्वसनीयता घट रही है। राजनैतिक समीकरण उनके विरुद्ध जा रहे हैं। मुस्लिम देश आम मुस्लिम धारणाओं के विपरीत आपस में ही बंटे हुए हैं। ऐसी स्थिति में उनके समक्ष कश्मीर में हारने पर विश्व समाज एक नए समीकरण को देखेगी।

3743. जो लोग बातचीत से कश्मीर समस्या का समाधान करने की बात

करते हैं, वे पूरी तरह गलत हैं और निराश भी हैं। कश्मीर समस्या भारत की बड़ी समस्या है, क्योंकि सारी दुनिया की शांति का भविष्य कश्मीर पर टिका है। जो लोग कश्मीर में अब भी भारत के विरुद्ध टकराव की उम्मीद लगाये बैठे हैं, ऐसे लोगों को न्याय-अन्याय की परवाह किए बिना नष्ट कर देने का प्रयत्न कर देना चाहिए। जो लोग कश्मीर में शांतिपूर्ण वार्ता की वकालत करते हैं, ऐसे लोगों का सामाजिक बहिष्कार होना चाहिए। साथ ही भारत के जो मुसलमान कश्मीर मामले में अब भी चुप हैं, उन्हें खुलकर भारत के साथ अपना पक्ष रखना चाहिए। कश्मीर तो भारत में ही रहेगा।

3744. जो लोग कश्मीर के संबंध में ढुलमुल हो, बांग्लादेशी मुस्लिम घुसपैठियों के प्रति सहानुभूति रखकर हिंदू शरणार्थियों को भी उन्हीं की श्रेणी में रखने की भाषा बोलते हों, म्यामार से आए मुस्लिम शरणार्थियों को मानवीय आधार पर भारत में रखे जाने की वकालत करते हों, भारत में समान नागरिक संहिता का विरोध करके अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक धारणा को मजबूत करते हों, या कश्मीर के संबंध में बातचीत की वकालत करते हों, इस प्रकार के लोगों से बहुत सावधान रहने की जरूरत है।

3745. यह धारणा निराधार है कि संघ परिवार नहीं चाहता कि कश्मीर समस्या कभी सुलझे। हिन्दू साम्प्रदायिकता कश्मीर समस्या को सुलझने नहीं देती, यह बात निराधार है और शायद इसे सिद्ध करने वाला आपके पास कोई साक्ष्य नहीं है। आप जिसे हिन्दू सम्प्रदायिकता कहते हैं वह वास्तव में हिन्दू संवेदनशीलता है जो कभी भी आक्रामकता में न बदल कर सहिष्णुता में विलीन हो जाती है।

3746. कश्मीर के लिए कुछ राजनेताओं के दलाल अथवा राष्ट्र भक्त देश भर में वातावरण बनाते हैं, वह भी बहुत हानिकारक है। उससे हमारी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्या से ध्यान बंट जाता है। हमने कश्मीर समस्या के सुलझाने के लिए सरकार को दायित्व दे दिया है। सरकार पर हमें विश्वास है कि उसकी नीयत ठीक है, तो हमें उस मामले में क्यों बार-बार चिन्ता व्यक्त करनी चाहिए।

3747. मैं समझता हूं कि कश्मीर समस्या इस्लामिक कट्टरवाद से जुड़ी हुई है, पाकिस्तान से नहीं। ऐसी स्थिति में यदि हम भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच आपसी संबंधों को शांतिपूर्ण बनाये रखने की मिसाल पेश कर सकें, तो वह मिसाल कश्मीर समस्या के मामले में भारत के लिए कवच का काम करेगी। जो लोग ऐसा समझते हैं कि हिन्दू मुस्लिम एकता हो ही नहीं सकती, वे भ्रम में है। वे ऐसा प्रयोग रामानुजगंज में जाकर देख सकते हैं जहां कटटरपंथी हिन्दू और मुसलमान सामाजिक एकता के समक्ष पूरी तरह दबे हुये हैं।

3748. मेरी यही सलाह है कि भारत के लोगों में किसी भी प्रकार की धार्मिक उत्तेजना हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए गलत है, देश के लिए गलत है और समाज के लिए भी। साथ ही हमारी यह उत्तेजना कश्मीर समस्या पर भी बुरा प्रभाव डालती है। भले ही हम भारत के मुसलमानों के खिलाफ नारे लगायें या कश्मीरी आंदोलन के खिलाफ। हम यदि अपनी स्थानीय सामाजिक व्यवस्था को ठीक से चला लें, और सरकार को राष्ट्रीय या कश्मीर समस्या से निपटने के लिए खुली छूट दे दें, तो भले ही हमारे अहम की तुष्टि न हो किन्तु हमारा भारत स्वर्ग बन सकता है, ऐसा मुझे दिखता है।

376 इस्लाम

3760. जब अल्पसंख्यक संगठित होकर बहुसंख्यक असंगठितों को अलग-अलग दबाते या ठगते हैं और कभी इन असंगठितों को संगठित के रूप में ऐसा आभास हो जाता है, तो संगठित अल्पसंख्यक लंबे समय के लिए अविश्वसनीय हो जाते हैं।

3761. असंगठित विश्व से संगठन की ताकत पर निरंतर लाभ उठाने वाला इस्लाम पूरी दुनिया में एक साथ अविश्वसनीय हो गया है।

3762. कोई भी व्यक्ति, व्यक्ति समूह या संगठन किसी विवाद के निपटारे के लिए सामाजिक न्याय या बल प्रयोग में से एक का ही सहारा ले सकता है, दोनों का नहीं।

3763. इस्लाम किसी भी स्थिति में धर्म नहीं है, वह एक संगठन मात्र है। इस्लाम को मानने वाले मुसलमान कहे जाते हैं। इसमें भी दो प्रकार के हैं—(1) धर्म प्रधान मुसलमान (2) संगठन प्रधान मुसलमान। धर्म प्रधान मुसलमान संख्या में कम है और संगठन प्रधान ज्यादा। भारत पाकिस्तान विभाजन के समय अधिकांश संगठन प्रधान मुसलमान पाकिस्तान चले गये और अधिकांश धर्म प्रधान भारत में रह गये। हिन्दुओं की स्थिति इससे ठीक विपरीत है। यहां धर्म प्रधान हिन्दू बहुमत में हैं और संगठन प्रधान अल्प संख्या में।

376 जेएनयू

3764. पंडित नेहरू के वामपंथी-साम्प्रदायिक चिन्तन को भारत की सामाजिक व्यवस्था तक पहुँचाने के उद्देश्य से जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी बनी जिसे शार्ट में जेएनयू कहते हैं। भारत की अन्य शिक्षण संस्थाओं की तुलना में जेएनयू को कई गुना अधिक

सुविधाएं भी दी गई और महत्व भी। जिससे योग्यता में जेएनयू सर्वोच्च हो तथा उच्च पदों पर भी ऐसे ही लोगों का वर्चस्व हो।

3765. राजनीति, न्यायपालिका तथा सर्वोच्च प्रशासनिक पदों पर जेएनयू प्रशिक्षित लोगों का ही वर्चस्व रहा। भाजपा सरकार आने के बाद इस वर्चस्व को पहली बार चुनौती मिली। अब विधायिका में तो ऐसे लोगों का वर्चस्व समाप्त हो गया है, किंतु न्यायपालिका तथा कार्यपालिका में अभी आंशिक रूप से ऐसे अनेक लोगों का हस्तक्षेप है, यद्यपि इनकी संख्या और हस्तक्षेप लगातार घट रहा है।

3766. जेएनयू नक्सलवादियों की विचारधारा का भी महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। नक्सलवादी गतिविधियां भले ही वहां से न संचालित होती हों किन्तु नक्सलवादी विचारधारा तो वहीं से फलती-फूलती रही। अधिकांश वामपंथी वहीं से निकले।

3767. जेएनयू वामपंथी विचारप्रधान केन्द्रीय विश्वविद्यालय है किन्तु जिस तरह वामपंथी नेता जेएनयू पर बोलते रहते हैं उससे तो ऐसा लग रहा है, मानों जेएनयू उनकी पार्टी की सरकार वाला कोई राज्य हो। यह जांचने के बजाये कि वहां आतंकी के समर्थन और महिमा मंडन में क्या और कैसे हुआ? वामपंथी नेता जेएनयू की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और योगदान पर भाषण दे रहे हैं। जैसे अपनी सरकार के अच्छे कार्यक्रमों का ब्योरा दे रहे हों। जेएनयू का छात्र संघ चुंकि लेफ्ट समर्थित है इसलिए देशद्रोह के मुकदमे में उनका बौखलाना स्वाभाविक तो है किन्तु जिम्मेदारी से पूरी तरह परे है।

3768. सर्व विदित है कि जेएनयू एक स्वच्छंद आचरण प्रधान संस्थान रहा है। यहां स्वतंत्रता के नाम पर स्वच्छंदता विस्तार पाती रही। जेएनयू में छत्तीसगढ़ के नक्सली हमले में मारे गये 76 सैनिकों की मृत्यु

पर खुशियां मनाई गई थी। यहां संसद भवन पर आक्रमण करने वाले आतंकवादियों को शहीद सिद्ध करने की योजनाएं भी बनती रहीं। गांधी हत्या के बाद जेएनयू की यह घटना पहला अवसर है, जिसने संघ परिवार के कलंक को कम करने और वामपंथी गठजोड़ को कलंकित करने का काम किया है। यह दाग गांधी हत्या से भी ज्यादा गंभीर कलंक के रूप में है। क्योंकि गांधी हत्या एक सामाजिक आक्रमण था और जेएनयू की घटना सामाजिकता के साथ राष्ट्रीयता पर भी आक्रमण है।

3769. जेएनयू सरीखे वामपंथी या अन्य दक्षिणपंथी संगठनों द्वारा संचालित विश्वविद्यालयों पर होने वाले सरकारी खर्च की भी समीक्षा होनी चाहिए। सिर्फ धर्मनिरपेक्ष विश्वविद्यालयों पर ही सरकार को खर्च करना चाहिए।

377 जेएनयू संस्कृति

3770. अव्यवस्था के रूपान्तरण में साम्यवादी विचार ही सबसे अधिक बाधक है। जेएनयू संस्कृति उच्छृंखलता को हमेशा प्रोत्साहित करती है, क्योंकि वर्ग-संघर्ष का विस्तार साम्यवाद का प्रमुख आधार है, और जेएनयू संस्कृति उसकी प्रमुख संवाहक है।

3771. भारत में कांग्रेस के शासन तक जेएनयू की विचारधारा एक संस्कृति के समान काम कर रही थी, किंतु अब वह एक बदनाम संस्था तक सीमित हो गई है। अगले कुछ वर्षों में जेएनयू संस्कृति एक कलंकित इतिहास तक ही रह जाएगी।

3772. भारत में हिंसा, चरित्रपतन, वर्ग-विद्वेष, अल्पसंख्यक तुष्टिकरण, सत्ता का केन्द्रीकरण, संगठनों का टकराव जैसी समस्याएं सत्ता और जेएनयू संस्कृति के तालमेल का ही परिणाम रहीं। इस विचारधारा

ने नेहरू की सोच से भी आगे बढ़कर लोक को संरक्षक की जगह शासक, वर्ग-विद्वेष की जगह वर्ग-संघर्ष , बुद्धिजीवी प्रोत्साहन की जगह श्रम-शोषण, अल्पसंख्यक प्रोत्साहन की जगह हिन्दू विरोध, कूटनीति की जगह धूर्तता, बल प्रयोग की जगह हिंसा जैसी बुराईयों को बढ़ाया। जेएनयू ने कोई ऐसा अवसर नहीं छोड़ा, जिसने गांधी विचारधारा को पराजित और अपमानित न किया हो।

3773. जेएनयू में खुलेआम नक्सलियों द्वारा भारतीय सैनिकों की हत्या को सम्मानित किया गया। यदि इसी तरह जेएनयू में कोई गोडसे को सम्मानित करे, तो वह कार्य जेएनयू संस्कृति के विरुद्ध मान लिया जायेगा।

3774. साम्यवाद धर्म को अफीम कहता है और राम, कृष्ण, देवी दुर्गा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता किन्तु हिन्दुत्व को अपमानित करने के लिए रावण, कुंभकरण और महिषासुर का अस्तित्व स्वीकार करता है।

3775. जेएनयू में सबसे पहले बालिग होते ही चरित्रहीनता का प्रशिक्षण दिया जाता है और उन्हें भावना विहीन बनाया जाता है। महिला और पुरुष के बीच की दूरी घटाने के प्रशिक्षण का पूरा नेतृत्व जेएनयू के पास है। यदि ठीक से सर्वेक्षण किया जाये तो जेएनयू प्रशिक्षित आंदोलनकारी महिलाओं का व्यक्तिगत जीवन परम्परागत महिलाओं की तुलना में अधिक परिवार तोड़क और दुष्चरित्र होना सम्भव है।

3776. मोदी के पूर्व तक भारत में जेएनयू संस्कृति का इतना प्रभाव था कि उसे सर्व सत्ता सम्पन्न तक माना जाता था और भारत में किसी की भी ऐसी स्थिति नहीं थी कि उनके गलत कार्यों पर प्रश्न उठा सके।

सत्ता, संसद, संविधान, साहित्य, कला आदि सब जगह चाहे पक्ष हो या विपक्ष, सब जगह जेएनयू संस्कृति के समर्थकों का एकछत्र साम्राज्य था।

3777. जेएनयू से प्रशिक्षण प्राप्त साहित्यकार, कलाकार, लेखक और कवि आदिवासी गैर आदिवासी, सवर्ण हरिजन, गरीब अमीर, श्रमजीवी पूंजीपति, महिला और पुरुष, युवा वृद्ध के आधार पर वर्ग-निर्माण कर एक वर्ग के पक्ष में वातावरण बनाते हैं, और उसी संस्कृति के पोषक शासकीय अधिकारी, न्यायाधीश, और नेता उस वातावरण को सर्वाधिक महत्व देकर अनुपालन में कानून बना देते हैं। यह कानून वर्ग-संघर्ष का आधार बन जाता है।

3778. वैसे भी जेएनयू संस्कृति की तुलना में संघ संस्कृति बहुत कम खतरनाक है, इसे सत्ता में भी वैसा स्थान प्राप्त नहीं है जैसा जेएनयू संस्कृति का पिछली सरकारों के समय रहा। अब धीरे-धीरे वातावरण बदल रहा है।

3779. नेहरू संस्कृति के विरुद्ध संघ संस्कृति का हम समर्थन सहयोग भले ही करें, किन्तु उसे अपनी संस्कृति मानने की भूल न करें। क्योंकि हमारी भारतीय संस्कृति तो वह आर्य संस्कृति है, जिसके अनुपालन में गांधी जी ने अपना सबकुछ लगाया। आर्य संस्कृति और संघ संस्कृति में बहुत फर्क होता है।

3780. मेरा अपने मित्रों से निवेदन है कि वे इस संक्रमण काल में सत्य के समान स्थापित असत्य को चुनौती देने का प्रयास करें और ऐसा प्रयास ही जेएनयू संस्कृति और संघ संस्कृति से सामूहिक मुकाबला कर सकता है।

378 प्रवृत्ति के आधार पर वर्ग-निर्माण

3781. प्रवृत्ति के अतिरिक्त किसी भी प्रकार का वर्ग-निर्माण समाज के विभाजन का आधार होता है। वर्ग-निर्माण से गुट बनते हैं, आपस में टकराते हैं और अंत में विभाजन होता है। किसी भी प्रकार की सत्ता हमेशा वर्ग-निर्माण और वर्ग-विद्वेष का प्रयत्न करती है। वर्ग-संघर्ष सत्ता के सशक्तिकरण का मुख्य आधार होता है। इसे ही 'बांटो और राज करो' कहा जाता है।

3782. विभाजन की नींव वर्ग-निर्माण से शुरू हुई थी, और यह वर्ग-निर्माण भारत में मुसलमानों के द्वारा प्रारम्भ किया गया। इसलिए विभाजन का सबसे बड़ा दोषी तो जिन्ना को ही माना जाना चाहिए। इसी तरह विभाजन का एकमात्र विरोधी सिर्फ गांधी को माना जाना चाहिए क्योंकि वे किसी भी रूप में विभाजन के विरोधी थे।

3783. कोई भी वर्ग कभी नहीं चाहता कि वर्ग-समन्वय की बात मजबूत हो। जब तक वह कमजोर होता है तब न्याय की बात करता है और जब मजबूत होता है तब व्यवस्था की बात करता है। इसलिए संघ ने गांधी के जीवित रहने से लेकर आज तक बेगुनाह गांधी को विभाजन का दोषी प्रमाणित करने में अपनी सारी ताकत लगा दी और विभाजन के प्रमुख दोषी सरदार पटेल को साफ-साफ बचा लिया।

3784. प्रवृति प्रधान वर्ग-संघर्ष ही सामाजिक क्रान्ति का आधार रहा है। समाजवादी लोग वर्ग-संघर्ष को पैदा नहीं करते और न वे उसे पसंद ही करते हैं। प्रवृत्ति ही वर्ग-निर्माण, वर्ग-संघर्ष का उपयुक्त आधार है। वर्ग-निर्माण और वर्ग-संघर्ष के अन्य सभी प्रयत्न प्रवृति प्रधान वर्ग-संघर्ष में बाधक होने से अनावश्यक भी हैं और हानिकरक भी।

समाज को चाहिए कि वह प्रवृत्ति के अतिरिक्त किसी भी प्रकार के वर्ग-निर्माण को तत्काल अवांछित घोषित कर दे। साथ ही वर्तमान समय में बन चुके वर्गों में भी वर्ग-समन्वय की भावना विकसित की जाये।

3785. वर्ग विभाजन एक सामान्य प्रक्रिया है। धीरे-धीरे वर्ग-निर्माण भी हो जाता है। चालाक लोग इस सामान्य प्रक्रिया का लाभ उठाकर वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष की दिशा में ले जाते हैं। इसलिए वर्ग-निर्माण से ही सतर्क रहकर विरोध करना चाहिए, क्योंकि वर्ग-निर्माण के बाद वर्ग-विद्वेष का विस्तार बहुत आसान हो जाता है और वर्ग-समन्वय बहुत कठिन। प्रवृत्ति के अतिरिक्त किसी भी अन्य आधार पर वर्ग बनते हैं तो अपराधियों के लिए ये वर्ग शरणस्थली का काम करते हैं। इसलिए राजनेता तथा अपराधी हमेशा वर्ग-निर्माण का प्रयत्न या समर्थन करते हैं।

3786. किसी भी वर्ग में सबकी प्रवृत्ति एक समान नहीं होती। कुछ लोग शरीफ होते हैं तो कुछ अपराधी या धूर्त।

3787. समाज टूटता है, वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष को प्रोत्साहन देने से।

3788. वर्ग-निर्माण सिर्फ प्रवृत्ति के आधार पर ही उपयोगी होता है। अन्य किसी आधार पर होने वाला वर्ग-निर्माण धुर्तता का सहायक होता है तथा शराफत को कमजोर करता है।

3789. प्रवृत्ति वर्ग-निर्माण का एकमात्र आधार होती है। प्रवृत्ति के आधार पर दो ही वर्ग बनाए जा सकते हैं—(1) अपराधी, (2) निरपराध। यदि प्रवृत्ति के अतिरिक्त किसी अन्य आधार पर वर्ग बनते हैं, और वर्ग को विशेष अधिकार दिए जाते हैं तो उस वर्ग के धूर्त लोग उस

विशेष अधिकार का लाभ उठाकर मजबूत होते हैं तथा दूसरे वर्ग के शरीफ लोगों का शोषण करते हैं। सम्पूर्ण दुनिया में धूर्तता के मजबूत होने का यह मुख्य कारण है। इसलिए गांधी वर्ग-समन्वय चाहते थे, और सभी नेता वर्ग-संघर्ष के पक्षधर थे। कमजोरों को उनके अधिकार के विषय में बताना वर्ग-संघर्ष का विस्तार करता है, और मजबूतों को कर्तव्य के लिए प्रेरित करना वर्ग-समन्वय का।

379 वर्ग-निर्माण और महिला

3790. समाज को महिला और पुरुष के बीच बांटने का प्रयत्न राजनेताओं के लिए लाभकारी हो सकता है, कुछ आधुनिक महिलाओं को भी हाईलाईट होने का अवसर दे सकता है, किन्तु सम्पूर्ण समाज के लिए घातक ही होगा।

3791. एक पूरा-पूरा षड्यंत्र है कि पुरुष और स्त्री को दो वर्गों में बाँट कर उनमें वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष को बढ़ाया जाये। इसके लिए आवश्यक है कि महिलाओं को पुरुषों के विरुद्ध प्रेरित किया जाये। ये महिलाएं सिर्फ इतना ही चाहती हैं कि स्त्री-पुरुष के बीच वर्ग-संघर्ष बढ़े और उस संघर्ष से इन आधुनिक महिलाओं को कुछ लाभ हो, भले ही समाज टूटे तो टूट जाये।

3792. महिला बाल विकास का सिर्फ एक ही काम है कि महिला और पुरुष के बीच वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष को वर्ग-संघर्ष की दिशा देना।

3793. धूर्त पुरुषों ने भी शरीफ पुरुषों के उत्पीड़न के उद्देश्य से महिला उत्पीड़न प्रावधानों का भरपूर दुरूपयोग किया। कुल मिलाकर वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष मजबूत हुआ और वर्ग-समन्वय टूटा। परिवार व्यवस्था में भी टूटन बढ़ने लगी। वर्तमान महिला आरक्षण विधेयक इस टूटन को और अधिक बढ़ाएगा।

380 वर्ग-संघर्ष

3800. लोकतंत्र में शासक लोक की एकता से भयभीत रहता है क्योंकि लोक की एकता शासक को मैनेजर बना सकती, इसलिए वह लोक को विभिन्न वर्गों में बांटकर वर्ग-संघर्ष बढ़ाता रहता है। अन्य सभी सरकारें अप्रत्यक्ष रूप से वर्ग-संघर्ष को बढ़ाती हैं और साम्यवादी प्रत्यक्ष तौर पर। वर्तमान भारत में वर्ग-संघर्ष बढ़ाने के आठ आधार हैं—(1) धर्म, (2) जाति, (3) भाषा, (4) क्षेत्रीयता, (5) उम्र, (6) लिंग, (7) गरीब-अमीर, (8) उत्पादक-उपभोक्ता। स्वतंत्रता के बाद सभी राजनैतिक दल पूरी सक्रियता से सभी आठ आधारों का उपयोग करते हैं। इन आधारों में से छः आधार समाज को तोड़ने के लिए उपयोग किए जाते हैं, तो दो उम्र और लिंग भेद परिवार व्यवस्था को तोड़ने के उद्देश्य से। 'फूट डालो और राज करो' की नीति को सफलतापूर्वक तथा लोकतांत्रिक तरीके से संचालित करने का एकमात्र आधार 'वर्ग-निर्माण' होता है। मैं यह महसूस करता हूं कि समाज को तोड़ने के लिए आठों आधार लागू करने में अम्बेडकर की मुख्य भूमिका थी। आज भारत में जो वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष फैलाया जा रहा है उन सबकी जड़ें, भारतीय संविधान में ही हैं जो अम्बेडकर की देन है।

3801. किसी भी व्यक्ति के अधिकार समान होते हैं। सुविधा अलग से दी जा सकती है किन्तु किसी को अधिकार अतिरिक्त नहीं दिए जा सकते। विशेष अधिकार की मांग और व्यवस्था गलत है। दुनिया में कोई ऐसा वर्ग नहीं है, जिसके सभी लोग अच्छे हों या सभी बुरे। इसलिए किसी वर्ग को विशेष अधिकार नहीं दिए जा सकते हैं।

3802. श्रमजीवी बुद्धिजीवी के बीच ध्रुवीकरण करके वर्ग-संघर्ष का हमारा कभी भी प्रयत्न न रहा है, न रहना चाहिए। गरीबों को प्रत्यक्ष रूप से आंदोलित करते रहना और अमीरों को अप्रत्यक्ष रूप से सहायता देना, वर्ग-संघर्ष की रणनीति है। गरीब हमेशा अमीर के विरुद्ध संघर्षरत रहे और अमीर चुपचाप और अधिक अमीर होता रहे यह सभी राजनेताओं की रणनीति है।

3803. वर्ग-संघर्ष के लिए आवश्यक है कि कमजोर वर्ग की आर्थिक स्थिति प्राकृतिक रूप से कभी न सुधरे तथा उसे संघर्ष के माध्यम से थोड़ा-थोड़ा लाभ मिलता रहे।

3804. वर्ग-संघर्ष के तीन चरण होते हैं—(1) वर्ग-निर्माण (2) वर्ग-विद्वेष (3) वर्ग-संघर्ष।

3805. यदि किसी भी वर्ग को विशेष अधिकार दिये जाते हैं, तो उस वर्ग के धूर्त शक्तिशाली होते हैं तथा विपरीत वर्ग के शरीफों का शोषण करते हैं। इस तरह से सम्पूर्ण समाज में शरीफ कमजोर और धूर्त मजबूत होते जाते हैं। शरीफ और बदमाश की लड़ाई में शरीफ कमजोरीकरण का वर्ग-संघर्ष एक मजबूत हथियार है।

3806. कमजोरों की मदद करना मजबूतों का कर्तव्य होता है, कमजोरों का अधिकार नहीं। हर अपराधी और राजनेता अपने स्वार्थ के लिए इसे कमजोरों का अधिकार घोषित करते रहते हैं। राज्य हमेशा मजबूत के करने योग्य व्यवहार को कमजोर का अधिकार बताकर वर्ग-संघर्ष की परिस्थितियां पैदा करता रहता है।

3807. दुनिया जानती है कि वर्ग-संघर्ष के विनाशकारी परिणाम हुए है। दुनिया में जितने अत्याचार और हत्याएं अपराधियों ने नहीं की हैं, उससे कई गुना अधिक धर्म और राष्ट्र के नाम पर हुई हैं।

3808. वर्ग-संघर्ष कराने वाले निरंतर कुछ मुद्दे उठाते रहते हैं—(1) समाज में जो लोग कमजोर वर्ग के हैं उन्हें कानूनी अधिकार मिलना चाहिए। (2) कमजोर वर्ग के लोगों को कानूनी संरक्षण मिलना चाहिए। (3) कमजोर व्यक्ति नहीं होता है बल्कि वर्ग होता है और वर्ग के आधार पर अधिकार दिया जाना चाहिए। (4) यदि व्यवस्था उनकी सुरक्षा न कर सके तो उन्हें दूसरे वर्ग से बलपूर्वक अपनी सुरक्षा करने का अधिकार है।

3809. योजनापूर्वक वर्ग-संघर्ष का विस्तार करने वालों को वर्ग-समन्वय की दिशा में मजबूर करना ही एकमात्र मार्ग है।

3810. सरकार का काम न वर्गहीन समाज बनाना है, न ही गरीबी दूर करना। सरकार यदि वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष के प्रयास बंद कर दे तो समाज वर्ग मुक्त हो सकता है।

3811. सामाजिक परिवेश को ही सामाजिक व्यवस्था का नाम दिया जाता है, जिसमें पारिवारिक व्यवस्था भी शामिल होती है। समाज व्यवस्था पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गई है। समाज का स्वरूप जानबूझकर इतना कमजोर कर दिया गया है, कि या तो राज्य ही समाज का प्रतिनिधित्व करता दिख रहा है, अथवा छोटे-छोटे समाज तोड़क संगठन। राज्य योजनापूर्वक समाज को धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, उम्र, लिंग, गरीब-अमीर, किसान-मजदूर, शहरी-ग्रामीण आदि वर्गों में बांटकर वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष बढ़ाने का प्रयास कर रहा है। राज्य समाज का प्रबंधक न होकर कस्टोडियन बन बैठा है।

3812. हर अपराधी वर्ग-निर्माण में अपनी सुरक्षा देखता है और हर राजनेता वर्ग-निर्माण के माध्यम से समाज को बांटकर अपना खतरा कम करते रहते हैं।

381 वर्ग-समन्वय, वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष

3813. तंत्र से जुड़े लोग समाज में युवा-वृद्ध या महिला-पुरुष के बीच वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष के लिए ज्यादा चिंतित रहते हैं और समाधान के लिए कम। तंत्र से जुड़े लोग परजीवी के समान होते हैं। परजीवी तो हमेशा मक्खी के समान घाव खोजते ही रहते हैं। ऐसी दुर्घटनाओं से लम्बे समय तक लाभ उठाते रहना उनका व्यवसाय है। सुभाषचन्द्र बोस या गांधी कब के चले गये, आज तक उस मामले की जांच जिन्दा रखने से कुछ लोगों की तो रोजी-रोटी चलती ही होगी।

3814. यदि वास्तव में कोई रेखा बननी है तो ऐसी बननी चाहिए, जिससे दोनों वर्ग संतुष्ट हों। पूरे भारत में लम्बे समय से एक अमीरी रेखा बनाने की मांग उठती रही है। यह मांग वर्ग-संघर्ष बढ़ाने के लिए ही उठती है। 'फूट डालो और राज करो' तक ही अमीरी रेखा का सीमित उद्देश्य है।

3815. वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष हमेशा समाज को तोड़ता है। पूरे विश्व में वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष की आंधी चल रही है। वर्ग-समन्वय लगातार टूट रहा है तथा वर्ग-विद्वेष बढ़ रहा है।

3816. वर्ग-निर्माण वर्ग सुरक्षा के नाम पर प्रांरभ होता है, और सशक्त होते ही शोषण की दिशा में बढ़ जाता है।

3817. समाज को तोड़कर रखने के लिए वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष का सहारा लिया जाता है उसके लिए आठ आधार निश्चित हैं—(1) धर्म, (2) जाति, (3) भाषा, (4) क्षेत्रीयता, (5) उम्र, (6) लिंग, (7) गरीब-अमीर, (8) किसान-मजदूर। अब तो कुछ और नये वर्ग खड़े करने की योजना है। वर्ग-निर्माण से वर्ग-संघर्ष तक भारत के लिए एक बहुत विनाशकारी खतरा है। अपराधियों और राजनेताओं

द्वारा इस समस्या को निरंतर बढ़ाया जा रहा है। क्योंकि वर्ग-निर्माण ही अपराधियों के लिए सुरक्षा कवच का काम करता है।

3818. भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न वर्ग हो सकते हैं। प्रवृत्ति के आधार पर दो वर्ग होते हैं—(1) दैवीय प्रवृत्ति वाले (2) आसुरी प्रवृत्ति वाले। धर्म के आधार पर भी दो वर्ग होते हैं—(1) गुण प्रधान, (2) पहचान प्रधान। सामाजिक कार्यों में संलग्न लोगों में भी दो वर्ग होते हैं—(1) संस्थागत कार्य करने वाले, (2) संगठनात्मक स्वरूप वाले। आर्थिक आधार पर भी दो वर्ग होते हैं—(1) बुद्धिप्रधान, (2) श्रमप्रधान। राजनैतिक आधार पर भी दो वर्ग होते हैं—(1) संचालक या शासक, (2) शासित या संचालित।

3819. जब से भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ, तब से ही उन्होंने भारत की बहुसंख्यक हिन्दू आबादी को वर्गों में बांटकर वर्ग-निर्माण के प्रयत्न शुरू कर दिये थे।

3820. शरीफ लोग अपनी व्यवस्था के लिए वर्ण, जाति, धर्म, आदि में आंतरिक विभाजन करते रहते हैं। दूसरी ओर बदमाश अपने को चोर, डाकू, बलात्कारी, हिंसक, आतंकवादी के नाम से मानते हैं। शरीफ लोगों के गुट को समूह कहते हैं और बदमाश लोगों के गुट को गिरोह कहते हैं।

3821. मैंने महसूस किया कि वर्गों का अस्तित्व, हमेशा अपराधियों के लिए एक ढाल या कवच के रूप में सुरक्षा का काम करता है। यह स्पष्ट है कि हमें वर्ग-निर्माण, वर्ग-विद्वेष, वर्ग-संघर्ष से मुक्ति पानी ही होगी। वर्ग-समन्वय को मजबूत करने के लिए हमें योजनापूर्वक काम करना होगा और इसके लिए ये दो मार्ग हो सकते हैं—(1) वर्ग-समन्वय का प्रचार करें। (2) वर्ग-संघर्ष वर्ग-निर्माण का विरोध करें।

3822. वर्ग-निर्माण का कार्य पंडित नेहरू तथा अम्बेडकर की देन है, जिन्होंने मुसलमानों, आदिवासियों, हरिजनों, महिलाओं, गरीबों आदि के नाम पर अलग-अलग वर्ग बनाये और वर्ग-संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया।

3823. वर्ग-समन्वय को किसी भी रूप में नुकसान पहुंचाने वालों तथा परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था को तोड़ने वाले किसी भी प्रयास का विरोध करना चाहिए, चाहे वह प्रयास भारत सरकार करे या कोई विदेशी सरकार या संस्था।

382 सामाजिक आरक्षण

3824. आरक्षण सदा ही योग्यता के उत्थान में असंतुलन पैदा करता है। जातीय आरक्षण ने जितना दलितों के साथ न्याय किया है, उससे कई गुना अधिक समाज में जातिवाद को मजबूत किया है या समाज में वर्ग-संघर्ष बढ़ाया है। सामाजिक आरक्षण ने जो समस्या समाज में पैदा की है, उसका समाधान न तो संवैधानिक आरक्षण था न है।

3825. सामाजिक आरक्षण व्यवस्था की शुरूआत सवर्णों ने ही की थी। हजारों वर्ष पूर्व जन्मना जाति और जाति अनुसार कर्म का विभाजन, सवर्णों की दादागिरी रही है, अवर्णों की नहीं। सामाजिक आरक्षण के विरुद्ध संवैधानिक आरक्षण आया। इस आरक्षण ने श्रम और बुद्धि के बीच की सीमा रेखा तोड़ दी और प्रतिबंध भी हटा लिए। न स्वतंत्रता के पूर्व का जातीय आरक्षण ठीक था, न स्वतंत्रता के बाद का आरक्षण ठीक है। जातीय आरक्षण किसी भी हालत में सवर्णों के साथ अन्याय नहीं है। यह तो सीधा-सीधा धूर्तों द्वारा शरीफों के साथ अन्याय है। मैं किसी भी प्रकार के आरक्षण

के पूरी तरह विरुद्ध हूं, चाहे वह आरक्षण स्वतंत्रता के हजारों वर्ष पूर्व का हो अथवा स्वतंत्रता के बाद के 75 वर्षों में है।

3826. हजारों वर्षों से बुद्धिजीवियों ने श्रमशोषण के उद्देश्य से योग्यता के आधार पर निर्धारित होने वाली वर्णव्यवस्था को जन्म के आधार पर शुरू कर दिया। यह बदलाव कब से हुआ इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। मनुस्मृति में जो मिलता है, वह मनु लिखित है या प्रक्षिप्त यह कहना भी सम्भव नहीं है। इस प्रकार के सामाजिक आरक्षण के कारण स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा में बाधा उत्पन्न हुई और समाज में अनेक विसंगतियां पैदा हुई।

3827. यदि हम नये प्रकार के आरक्षण के लाभ-हानि की चर्चा करें, तो इससे सामाजिक व्यवस्था में जाति-प्रथा कमजोर हुई है और संवैधानिक व्यवस्था में जाति-प्रथा मजबूत हुई है।

383 आरक्षण और श्रम-शोषण

3830. किसी भी प्रकार का आरक्षण घातक होता है, चाहे वह धर्म, जाति, महिला, गरीब, अपंग अथवा किसी भी अन्य आधार पर क्यों न हो। किसी भी प्रकार का आरक्षण 'श्रम-शोषण' का सिद्धांत होता है। सभी प्रकार के बुद्धिजीवी श्रम-शोषण के उद्देश्य से आरक्षण को हथियार के रूप में उपयोग करते हैं। स्वतंत्रता पूर्व के कालखण्ड में जन्म के अनुसार वर्ण व्यवस्था बनाकर, इस सामाजिक आरक्षण का उपयोग किया गया, वहीं स्वतंत्रता के बाद संवैधानिक आरक्षण लागू करके। किसी भी प्रकार का आरक्षण समाप्त होना चाहिए।

3831. मेरे विचार से समानता का व्यवहार हमारा कर्तव्य है, दूसरे का अधिकार नहीं। आरक्षण देकर दलितोत्थान का ढिंढोरा पीटा जाये, यह नीति दलित विरोधी है श्रम विरोधी है और आत्मघाती भी है।

3832. दुनिया जानती है कि स्वतंत्रता के पूर्व आरक्षण के कारण जो परिवार दबे रह गये थे, उनका 90-92% आज तक उन्हीं श्रम प्रधान कार्यों तक सीमित है। यदि ऐसा ही रहा तो हजारों वर्षों के बाद भी उनकी स्थिति नहीं सुधरेगी, जबकि समझौता करके सवर्णों से लाभ ले रहे, 7-8% बुद्धिजीवी अवर्णों के जीवन स्तर में भारी बदलाव आ चुका है। इन लोगों ने भी अपनी आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए आरक्षण के लाभ की व्यवस्था बना ली है। चाहे घुरहु राम की अगली पीढ़ी को श्रम का उचित मूल्य मिले या न मिले इसकी उन्हें चिन्ता नहीं, किन्तु आरक्षण का लाभ ले चुके आदिवासी-हरिजन की अगली पीढ़ी को भी आरक्षण का लाभ बन्द नहीं होना चाहिए।

3833. भारत का हर बुद्धिजीवी किसी न किसी आधार पर आरक्षण का समर्थन करता है। आरक्षण के नाम पर कमजोरों के शोषण का बुद्धिजीवियों को अप्रत्यक्ष लाभ भी होता है तथा कमजोरों की मदद करने से उनकी सहानुभूति का प्रत्यक्ष लाभ भी मिलता है।

3834. हजारों वर्षों से बुद्धिजीवियों तथा पूंजीपतियों द्वारा श्रमशोषण के अलग-अलग तरीके खोजे जाते रहे हैं। ऐसे तरीकों में सबसे प्रमुख तरीका आरक्षण रहा है। जातीय आरक्षण के माध्यम से स्वतंत्रता के पूर्व सफलतापूर्वक श्रम-शोषण किया जाता था। स्वतंत्रता के बाद अम्बेडकर जी ने सवर्ण-अवर्ण बुद्धिजीवियों का जातीय आरक्षण के माध्यम से समझौता कराकर श्रम-शोषण जारी रखने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। अम्बेडकर ने धूर्त सवर्णों के साथ समझौता करके शूद्र बुद्धिजीवियों और अवर्ण बुद्धिजीवियों को आरक्षण का लाभ दिला दिया और 95% श्रमजीवी शूद्र और अवर्णों को अपने हाल पर जीने को छोड़ दिया।

3835. स्वामी दयानंद, गांधी आदि जन्मना आरक्षण को समाप्त कर रहे थे, किन्तु स्वार्थी अम्बेडकर ने नेहरू के साथ मिलकर फिर से इस श्रम-शोषण के सिद्धांत को जीवित कर दिया। जिसके अनुसार शूद्र और अवर्ण ही पिछड़ा हुआ है, भले ही वह करोड़ो श्रमजीवियों से कितना ही आगे क्यों न निकल गया हो।

3836. मैं जहां आरक्षण को आदिवासियों, हरिजनों, महिलाओं के विरुद्ध एक सोचा-समझा सवर्ण षड्यंत्र मानता हूं, और यह समझता हूं, कि यह आरक्षण उनकी प्रगति में बाधक है। जब तक श्रम-मूल्य वृद्धि नहीं होगी तब तक आदिवासियों हरिजनों को कोई लाभ नहीं होगा। यदि सवर्णों की नीयत ठीक होती तो वे श्रम की मांग और मूल्य को बढ़ने से रोकने का षड्यंत्र नहीं करते, किन्तु उन्होंने किया, जिसका दुष्परिणाम है आज का अन्याय।

384 आरक्षण

3840. आरक्षण समाप्त करने की वर्तमान आवाज षड्यंत्र है। श्रम-मूल्य वृद्धि, महिलाओं को सम्पत्ति में समान अधिकार, असहायों का भरण-पोषण का दायित्व शासन को देकर, आरक्षण समाप्ति तथा समान नागरिक संहिता एक साथ लागू होनी चाहिए।

3841. धूर्त अवर्ण आरक्षण को एक अल्पकालिक समाधान न मानकर ऐसी शाश्वत व्यवस्था बनाना चाहते हैं, जो उसी तरह हजारों वर्षों तक सवर्णों से बदला लेती रहे, जिस तरह प्राचीन काल में सवर्णों ने अवर्णों को दबाकर रखा था। जब तक गाय की रोटी कुत्ता खाता रहेगा, तब तक कभी गाय मजबूत नहीं हो सकती। कुत्ता मोटा हो रहा है और गुर्रा भी रहा है। धूर्त अवर्ण कुत्ते के समान शरीफ सवर्ण

रूपी गाय को लगातार समझा रहा है, कि गाय और कुत्ता एक ही जाति के हैं क्योंकि दोनों की जाति पशु है।

3842. गांधी जी के ना रहने पर, नेहरू जी ने अवसर का लाभ उठाकर, जाति वा धर्म आधारित व्यवस्था को बढ़ावा दिया। प्रबल विरोध को देखते हुए ही सिर्फ दस वर्षों के लिए आरक्षण व्यवस्था को संविधान का भाग बनाया गया था। संविधान की मूल भावना आरक्षण के विरुद्ध थी। संविधान की मूल शब्दावली में धर्म, जाति, लिंग के आधार पर भेद-भाव न करके, समान नागरिक संहिता का ही उल्लेख है। हमारे राजनेताओं ने स्वार्थवश भविष्य में लगातार संशोधन करके संविधान की मूल भावना के विरुद्ध कार्य किया। यह उनके अधिकार क्षेत्र के बाहर था किन्तु राजनेताओं ने मनमाना किया और कर रहे हैं।

3843. आरक्षण चाहे किसी भी प्रकार का हो वह पूरी तरह गलत है। चाहे आर्थिक आधार पर हो अथवा जातिगत आधार पर, क्योंकि आरक्षण एक अधिकार बन जाता है, सुविधा नहीं। सुविधा में, सुविधा लेने वाला देने वाले के प्रति आभार व्यक्त करता है, किन्तु आरक्षण के लिए तो वह अधिकार समझकर विवाद करने पर उतर जाता है।

3844. आरक्षण सिर्फ एक आधार पर होना चाहिए, कि जो सामाजिक नियमों का पालन करते हैं, अच्छे लोग हैं, उन्हें हर प्रकार का आरक्षण दिया जा सकता है, तथा अपराधियों से छीना जा सकता है। इस तरह समाज में शरीफ और बदमाश का विभाजन करके व्यवस्था चलाई जा सकती है।

3845. मुट्ठी भर धूर्त लोगों ने जिस तरह ब्लैकमेल करके संगठन की

ताकत पर राजनैतिक दलों को आरक्षण बिल के पक्ष में मजबूर कर दिया, वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है, कि मुट्ठी भर संगठित समूह अपने से दस बीस गुना बड़ी असंगठित आबादी को ब्लैकमेल कर सकती है।

3846. यदि किसी जाति विशेष को विशेष अधिकार देंगे, तो जातीय संघर्ष उसका परिणाम होगा। यदि मुद्रा स्फीति बढ़ेंगी, तो वस्तुएं महंगी होंगी ही, यदि कृत्रिम ऊर्जा के मूल्य कम बढ़े तो श्रम-शोषण होगा ही। आज तक दुनिया में कोई ऐसा तरीका नहीं निकला, जिसमें विवाह की उम्र बढ़ाई जाय और बलात्कार घटे, घाटे का बजट बने और मूल्य वृद्धि न हो, समाज में हिंसा के प्रति प्रोत्साहन हो और आतंकवाद घटे या मशीनों का प्रयोग बढ़े और श्रम प्रभावित न हो।

3847. किसी भी प्रकार का आरक्षण वर्ग-विद्वेष का महत्वपूर्ण आधार बन जाता है। किसी भी प्रकार का आरक्षण हमेशा धूर्तता और अपराधों का विस्तार करता है। जिस वर्ग को आरक्षण प्राप्त होता है, उस वर्ग के धूर्त भिन्न वर्ग के शरीफों का शोषण करने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह शराफत कमजोर होती जाती है और धूर्तता मजबूत।

3848. मेरे विचार से सब प्रकार के आरक्षण समाप्त करके नयी व्यवस्था शुरू होनी चाहिए, जिसमें (1) समान नागरिक संहिता हो। व्यक्ति एक इकाई हो। धर्म, जाति, गरीब, अमीर, महिला, पुरुष का भेद न हो। (2) कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्य वृद्धि करके सब प्रकार के टैक्स तथा सब्सिडी समाप्त कर दी जाये। (3) परिवार की आर्थिक और पारिवारिक व्यवस्था परंपरागत की जगह लोकतांत्रिक हो। परिवार में व्यक्ति का सम्पत्ति अधिकार सामूहिक हो और सम्पूर्ण

सम्पत्ति में सिर्फ परिवार छोड़ते समय उसे बराबर का हिस्सा दिया जाये।

3849. यह कभी नहीं सोचा गया, कि आरक्षण समाधान नहीं बल्कि समस्या का विस्तार है। यह आरक्षण जातिवाद को स्थाई रूप देने का माध्यम है। इस आरक्षण ने समाज में वर्ग-समन्वय को वर्ग-विद्वेष और वर्ग-संघर्ष तक बढ़ाया।

3850. किसी वस्तु या सुविधा का उपयोग उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई न कर सके, उस व्यवस्था को आरक्षण कहते हैं। कोई भी सुविधा व्यक्ति को दी जा सकती है, समूह को नहीं। प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार समान होते हैं। किसी व्यक्ति को कोई सुविधा अधिकार के रूप में नहीं दी जा सकती, सुविधा के रूप में दी जा सकती है। भारत में आरक्षण अधिकार के रूप में दिया गया, जो गलत है। किसी भी प्रकार के आरक्षण को पूरी तरह समाप्त होना ही चाहिए, किन्तु आरक्षण को समाप्त करने के पूर्व श्रम बुद्धि और धन के बीच बढ़ते हुए अंतर को कम करने का प्रयास करना होगा।

3851. दो प्रकार की प्रणालियों का संयुक्त और समन्वित प्रयास ही आदर्श माना जाता है। पहला प्रतिस्पर्धा प्रणाली और दूसरा काफिला पद्धति। सम्पूर्ण आबादी को प्रतिस्पर्धा प्रणाली में डाल देना कमजोरों के साथ अन्याय है और सम्पूर्ण आबादी को काफिला पद्धति के समान चलाना, प्रगति में बाधक होगा। व्यवस्था को चाहिए कि वह एक सीमा रेखा बनाकर, उस सीमा से ऊपर के लोगों को प्रतिस्पर्धा प्रणाली से प्रगति करने की पूरी स्वतंत्रता दे और उस रेखा से नीचे वाले को जीवन जीने के सहायक अवसर प्रदान करें।

3852. सरकारी कार्मचारियों का तथा राजनेताओं का वेतन, सम्मान और शक्ति बढ़ाकर, उसमें कुछ पिछड़े लोगों को शामिल करना शेष पिछड़े लोगों के साथ अन्याय भी था, और धोखा भी। श्रमजीवियों की अपेक्षा बुद्धिजीवियों का वेतन, अधिकार और सुविधाएँ अधिक से अधिक बढ़ती रहे, और उन बढ़ी हुई सुविधाओं के लिए आपस में टकराव हो, यही तो आरक्षण का परिणाम है। जो हम 70 वर्षों से देख रहे हैं।

3853. आरक्षण स्वयं में एक समस्या है, समाधान नहीं। आरक्षण हमेशा अन्याय को जन्म देता है। आरक्षण रूपी हथियार यदा-कदा राजनैतिक युद्ध में भी बहुत उपयोगी होता है। क्योंकि वर्ग-विद्वेष बढ़ाने का आरक्षण सबसे सफल आधार है।

385 अल्पसंख्यक

3854. अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक की धारणा घातक है। समाज का धर्म के आधार पर विभाजन नहीं होना चाहिए था जो कि हुआ। इस धारणा के कारण भारत में वर्ग-संघर्ष बढ़ा, साम्प्रदायिकता बढ़ी, मुसलमानों का मनोबल बढ़ा तथा धार्मिक टकराव बढ़ा।

385 हरिजन-आदिवासी

3855. गांधी सवर्ण-अवर्ण का भेद मिटाना चाहते थे, वहीं अम्बेडकर इस भेदभाव से लाभ उठाना चाहते थे। आदिवासी, गैर-आदिवासी शब्द भी अंग्रेजों का बनाया हुआ है। अम्बेडकर ने आदिवासी शब्द को भी मजबूत किया। ये दोनों शब्द श्रमशोषण के उद्देश्य से प्रयोग किए जाते हैं। धूर्त लोग इन शब्दों का अधिक उपयोग करके स्वयं लाभ उठाते हैं।

385 क्षेत्रीयता

3856. क्षेत्रीयता का उपयोग वर्ग-संघर्ष के लिए होता है। सभी राजनैतिक दल क्षेत्रीयता का उपयोग करते हैं। क्षेत्रीय भावनाओं को भड़का कर सत्ता प्राप्त करने की कोशिश बढ़ती जा रही है। दक्षिण भारत के लोग उत्तर-दक्षिण के नाम पर यह टकराव बढ़ाते हैं। बिहार और महाराष्ट्र क्षेत्रीयता का लाभ उठाने में सबसे आगे रहते हैं।

385 सिक्ख दंगे

3857. संगठित मुगलों के अत्याचारों से सुरक्षा के लिए, कुछ क्षत्रिय गुण प्रधान हिन्दुओं ने संगठित होने का निर्णय किया। गुरु गोविन्द सिंह जी ने कुछ विशेष परिस्थिति में ऐसे लोगों को संगठित किया, और हिन्दुत्व की सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

3858. सिक्ख भी धर्म न होकर संगठन का स्वरूप है। सिक्खों में भी कुछ लोग मुसलमानों की तरह साम्प्रदायिक भाव विकसित करके उसका लाभ उठाना चाहते हैं। ये लोग मरने-मारने से नहीं डरते तथा कभी संतुष्ट नहीं होते। स्वयं को समाज से ऊपर मानते हैं।

3859. इन्दिरा गांधी ने अपने राजनैतिक स्वार्थ के लिए सिक्ख साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित किया। जब यह साम्प्रदायिकता खतरनाक हुई, तब इन्दिरा जी को मजबूर होकर सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। कुछ सिक्खों ने अपने स्वभाव के अनुकूल बदला लिया और इन्दिरा की हत्या कर दी। सिक्खों की साम्प्रदायिकता से परेशान भारत के लोगों ने सिक्खों पर निर्मम अत्याचार किए। कौन गलत और कौन सही यह कहना कठिन है किन्तु सिक्खों को भी अपनी नीतियों पर पुनर्विचार करना चाहिए।

386 स्वदेशी

3860. भारत के राजनैतिक संवैधानिक स्वरूप निर्माण में लगे अधिकांश व्यक्ति या संगठन बिकाऊ हैं। ये लोग पूंजीवादी, साम्यवादी एवं इस्लामिक देशों से गुप्त धन ले-लेकर, पहली प्रमुख पाँच समस्याओं को कम और दूसरी छः को अधिक महत्वपूर्ण प्रमाणित करते रहते हैं। कई व्यक्ति या संगठन पूंजीवादी देशों से धन लेकर, बाल विवाह, बालश्रम, बढ़ती आबादी, पर्यावरण प्रदूषण, नशा वृद्धि जैसी समस्याओं को ही समाज की सबसे बड़ी समस्या सिद्ध करते हैं। तो कुछ अन्य साम्यवादी देशों से धन ले लेकर महंगाई, बेरोजगारी, आर्थिक असमानता, सामाजिक असमानता, भूख, गरीबी जैसी समस्याओं को। कुछ अन्य लोग इस्लामिक देशों से धन ले लेकर उनकी ही चापलूसी करते रहते हैं, ये लोग भारत में अल्पसंख्यक सुरक्षा को ही सबसे बड़ी जरूरत बताते रहते हैं। भारत की सरकारें विदेशों से धन ले लेकर राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों में फेर बदल करती हैं। राजनैतिक दल भी विदेशों से गुप्त धन लेकर उनकी चापलूसी करते रहते हैं और कई राजनैतिक व्यक्ति भी विदेशी धन लेकर उनकी दलाली करते हैं। अब तो भारत की अनेक सामाजिक संस्थाएं भी विदेशों से धन लेकर असत्य या कम महत्व की समस्याओं को आगे करती हैं और महत्वपूर्ण समस्याओं को पीछे कर देती हैं। यह पहचानना ही कठिन है कि कौन व्यक्ति, दल या संस्था विदेशी दलाल हैं और कौन नहीं। ऐसा महसूस होता है कि भारत का हर महत्वपूर्ण विचार बिकाऊ हो गया है।

3861. भारत की सभी समस्याओं के समाधान के लिए एक स्वदेशी

चिन्तन आधारित संविधान की आवश्यकता है जो स्वदेशी व्यवस्था बना सके। दुर्भाग्य से हमारे अनेक विद्वान संवैधानिक मामलों में तो विदेशी संविधानों की आँख बंद करके नकल करते हैं, तो दूसरी ओर साबुन, वस्त्र और स्वदेशी शीतल पेय को ही स्वदेशी का प्रतीक प्रमाणित करने पर अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं। स्वदेशी आंदोलन स्वदेशी शब्द का अर्थ ही नहीं समझता है।

3862. भारत में वर्तमान समय में एक भी ऐसा राजनैतिक सामाजिक आंदोलन नहीं है जो राज्य के अधिकारों की समीक्षा की चिन्ता करे। सभी आंदोलन राज्य के गलत आदेशों के विरोध तक सीमित हैं। गांधी, विनोबा, जयप्रकाश, ने अपना सम्पूर्ण जीवन राज्य के अधिकारों की समीक्षा में लगा दिया। गांधीवादी, गांधी, विनोबा, जयप्रकाश के नाम पर उनकी विरासत के तो मालिक हैं किन्तु राज्य के अधिकारों की चिन्ता न करके आदेशों की समीक्षा और विरोध तक सीमित हो गए हैं।

3863. वर्तमान सभी समस्याओं का समाधान एक ऐसे स्वदेशी आंदोलन से सम्भव है—(क) जो राज्य के आदेशों के विरुद्ध नहीं, अधिकारों के विरुद्ध आंदोलन करे। (ख) विदेशी या भारतीय पूंजीपतियों के गुप्त धन से संचालित न हो। (ग) स्वदेशी को उसकी गलत परिभाषा से निकालकर स्वदेशी शासन व्यवस्था और स्वदेशी संविधान की ओर ले जाएं। (घ) चरित्र और विचार के अनुपात में विचार को चरित्र से कम महत्वपूर्ण न माने।

3864. स्वदेशी का प्रचार पूरी तरह अनावश्यक और भ्रामक है। हम विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करें, और विवाह करने के लिए विदेशी चुनें, यह ढोंग है। या तो स्वदेशी की जगह स्थानीयता पर

जोर दें या स्वदेशी-विदेशी के चक्कर में न पड़ें। स्वदेशी का अर्थ स्थानीय होना चाहिए, राष्ट्रीय नहीं।

390 नौकरशाही

3900. भारत में नौकरशाही बदनाम तो है, किन्तु गलत नहीं। सरकारी कर्मचारी राजनेताओं के गुलाम सरीखा कार्य करने के लिए मजबूर हैं। सरकारी कर्मचारी तंत्र के भाग नहीं होते बल्कि नौकर होते हैं, क्योंकि उन्हें कार्यपालिका का संवैधानिक पार्ट नहीं माना जाता। नौकरशाही की तुलना में विधायिका के लोग अधिक भ्रष्ट और अपराधी होते हैं, क्योंकि नेता जो भी भ्रष्टाचार करते हैं, वह कर्मचारियों के ही माध्यम से होता है। कर्मचारियों को नेताओं के लिए भी भ्रष्टाचार करना होता है और अपने लिए भी। कोई भी राजनेता, नेता की तुलना में कर्मचारी नहीं बनना चाहता किन्तु कर्मचारी नौकरी छोड़कर भी नेता बनना चाहता है। भारत की नौकरशाही हमेशा ही अपनी संगठन शक्ति के बल पर सरकार को ब्लैकमेल करती है। उसका मानना है कि राजनीति से जुड़े लोग नौकरशाही की सहायता से ही देश को लूटने में सफल हो रहे हैं, इसलिए लूट के माल में उनका हिस्सा स्वाभाविक है।

391 आधार कार्ड

3910. भारत के प्रत्येक व्यक्ति की पहचान के लिए आधार कार्ड होना उचित है। आधार कार्ड सुरक्षा की दृष्टि से भी उचित है और सुविधाओं के लिए भी। आधार कार्ड के साथ-साथ प्रत्येक परिवार का भी एक निश्चित कोड नम्बर होना चाहिए जो नौ अंकों का हो। पहले दो अंक लोक प्रदेश, दूसरे दो अंक लोक जिले, तीसरे दो अंक स्थानीय इकाई तथा अन्तिम तीन अंक उसके निवास के हों।

उसी अंक के आधार पर परिवार का बैंक एकाउन्ट, गाड़ी नम्बर, मोबाइल नम्बर, कोर्ट केस आदि के नम्बर हो। नौ अंको के साथ दो अंक जोड़कर आधार बना सकते हैं।

392 मीडिया

3920. मीडिया पूरी तरह स्वतंत्र व्यापार है। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहना गलत है। जबसे मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ मानकर उन्हें विशेष अधिकार दिए गए, तब से मीडिया में भ्रष्टाचार और ब्लैकमेलिंग भी बढ़ती गई। मीडिया में संगठन के भी दुर्गुण आए और मीडिया ने माना कि जब लोकतंत्र के तीन स्तंभ समाज को गुलाम बनाने में और लूटने में लगातार सक्रिय हैं, तो चौथा स्तंभ ही पीछे क्यों रहे? आदर्श लोकतंत्र में मीडिया को भी पूरी तरह स्वतंत्र होना चाहिए। मीडिया सहित किसी भी व्यापार की स्वतंत्रता में राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए।

3921. सोशल मीडिया बहुत उपयोगी माध्यम है। सोशल मीडिया का तेजी से विस्तार होना चाहिए। सोशल मीडिया में जानबूझकर अपमानजनक, अपराध प्रेरक या असत्य लेखन अपराध होना चाहिए, किन्तु सरकार का कोई अन्य हस्तक्षेप उचित नहीं है।

393 राष्ट्रीयता

3930. राष्ट्र विश्व व्यवस्था में सहायक होना चाहिए, बाधक नहीं। राष्ट्रीयता का भाव उचित है और राष्ट्रवाद घातक। राष्ट्रवादी लोग समाज की अपेक्षा राष्ट्र को ऊपर मानते हैं जो उचित नहीं है। आज दुनिया में अन्याय, अत्याचार या अपराध में अंध राष्ट्रवाद की भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

394 विदेश नीति

3940. दुनिया में—(1) पश्चिम की व्यवस्था लोकतांत्रिक-पूंजीवादी, (2) साम्यवाद की तानाशाही आर्थिक-सरकारीकरण तथा (3) इस्लामिक व्यवस्था तानाशाही-धार्मिक मानी जाती है। भारत में लोकतांत्रिक-पूंजीवाद है। उसे अपनी विदेश नीति का झुकाव पश्चिम के साथ अपनाना चाहिए। पश्चिम का अर्थ अमेरिका नहीं है बल्कि लोकतान्त्रिक पूंजीवाद की दिशा में चलने वाले देश हैं। भारत की विदेश नीति उच्च राष्ट्रवाद पर टिकी हुई है। इसे अनावश्यक टकरावों से बचना चाहिए। भारत अब तक साम्यवाद तथा इस्लामिक देशों की ओर अधिक झुका हुआ था। अब नरेन्द्र मोदी के बाद लोकतांत्रिक देशों की तरफ तेजी से बढ़ रहा है।

3941. पंजाब समस्या श्रीमती गांधी और श्रीलंका समस्या राजीव गांधी के अनावश्यक उलझाव का परिणाम थी कि दोनों को इसी से हानि उठानी पड़ी।

3942. विदेश नीति राष्ट्रवाद के ऊपर विश्व व्यवस्था की ओर झुकी हुई होनी चाहिए। संविधान में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, कि संयुक्त राष्ट्रसंघ या विश्व मंच के निर्णय को सरकार आसानी से अस्वीकार न कर सके। विदेशों से मजबूत सुरक्षा हेतु भारत के अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से 15 किमी का भारतीय क्षेत्र "सैनिक क्षेत्र" घोषित होना चाहिए। यहां या तो कोई निवास नहीं करेगा या करेगा तो सैनिक सत्ता की शर्तों के आधार पर। इस क्षेत्र में रहने वालों को मूल अधिकार प्राप्त नहीं होगा।

395 शरणार्थी

3950. जो व्यक्ति अत्याचार से बचने के लिए भारत आता है, वह शरणार्थी

और जो सुविधा के लिए आता है, वह घुसपैठिया है। जो सरकार की अनुमति से आता है वह शरणार्थी, और जो छिपकर आता है, वह घुसपैठिया है। पाकिस्तान, बंगलादेश, अफगानिस्तान से आने वाला हिन्दू शरणार्थी और मुसलमान घुसपैठिया है। भारत सरकार ने जो कानून बनाया है, वह अधूरा है। घुसपैठियों की पहचान होनी ही चाहिए। पहचान पूरी करने के बाद निर्णय करें कि क्या करना है। मुस्लिम मतों पर निर्भर राजनैतिक दल नहीं चाहते कि भारत में हिन्दू बढ़ें और मुसलमान घटें। इसलिए मुस्लिम मतों पर निर्भर राजनैतिक दल शरणार्थी घुसपैठियों की परिभाषा को उलझाकर रखना चाहते हैं।

❒